ओ३म्

अथर्ववेद

(प्रथम भाग)

काव्यार्थ

कवि

वीरेन्द्र कुमार राजपूत

प्रकाशक

वैदिक साधन आश्रम, तपोवन

देहरादून (उत्तराखड)

पिन-२४८००८

अथर्ववेद (प्रथम भाग) **काव्यार्थ**

कवि : **वीरेन्द्र कुमार राजपूत**
: ८ वसन्त कुंज
३६९/१ वसन्त विहार, फेज-१, देहरादून (उत्तराखण्ड)
पिन-२४८००६। मो० ९४१२६३५६९३

प्रकाशक : वैदिक साधना आश्रम, तपोवन, देहरादून
(उत्तराखण्ड) पिन-२४८००८

© सर्वाधिकार सुरक्षित

संस्करण : विसं० २०६९-सन् २०१३

मूल्य : १५० रुपये

टंकण : निखिल थापा

मुद्रक : VANI OFFSET PRINTERS printers
८० घोसी गली, देहरादून (उत्तराखण्ड)

दिशा निर्देश

			पृष्ठ संख्या
प्रकाशकीय			४
प्राक्कथन			७
प्ररोचना			११
कवि की ओर से			१६
काण्ड	सूक्त योग	मंत्र योग	
१	३५	१५३	१७
२	३६	२०७	७५
३	३१	२३०	१४३
४	४०	३२४	२२२
५	३१	३७६	३२५
	सम्पूर्ण मंत्र	**१२६०**	

प्रकाशकीय

कविवर श्री वीरेन्द्र कुमार राजपूत ने सृष्टि के आदि में परमात्मा प्रदत्त चारों वेदों का अर्थ सरल एवं सुललित काव्य में करने का शिव संकल्प लिया है, जिसे प्रभु की कृपा ही कहना चाहिये। वेदों की काव्यार्थ श्रृंखला में अथर्ववेदीय काव्यार्थ के प्रथम खण्ड का प्रकाशन इस विश्व प्रसिद्ध वेदाधारित 'वैदिक साधना आश्रम तपोवन' द्वारा किया जा रहा है।

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध सन्यासी महात्मा आनन्द स्वामी जी ने तपोवन की अपनी साधना स्थली में रहते हुए यह अनुभव किया कि उत्तराखण्ड की इस देवभूमि में साधकों हेतु एक सुव्यवस्थित आश्रम का निर्माण कराया जाय। एतदर्थ उन्होंने अमृतसर के पवित्र दानी, बाबा प्रद्युम्न सिंह धर्मार्थ ट्रस्ट के स्वामी, लाल गुरूमुख सिंह जी को यह भूमि दिखाकर आश्रम निर्माणार्थ प्रेरित किया।

प्रभु अपने भक्तों से सर्वकल्याणार्थ पवित्र कार्य करा ही लेते हैं। बाबा जी ने यहाँ एक विशाल भू खण्ड क्रय कर १५ दिसम्बर सन् १९४९ ई० को आश्रम निर्माण का शुभारम्भ करा दिया, जो आज विश्व प्रसिद्ध वैदिक धर्म प्रचार प्रसार का वट वृक्ष बना हुआ है। वैदिक धर्म के धर्म-धुरन्धर वीतराग स्वामी प्रभु आश्रित जी महाराज, योगिराज स्वामी योगेश्वरानन्द जी, महात्मा दयानन्द वानप्रस्थ आदि ने इसी आश्रम को अपनी तपःस्थली बनाकर अभीष्ट सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। आज भी यह आश्रम साधना हेतु साधकों का आह्वान करता रहता है।

अब कुछ विचार दिव्य प्रभु-काव्य वेद के विषय में, जिस की रचना प्रभु ने अपनी सर्वोत्तम रचना मनुष्य को सर्वोत्तम बनाये रखने के लिये की थी, जिसकी आवश्यकता सर्वोत्तम जीवन के लिये मनुष्य को हर काल में रहेगी।

यदि हम वर्तमान काल पर विचार करें, तो पाऐंगे कि वेद के पढ़ने-पढ़ाने, सुनने-सुनाने और वेद मार्ग पर चलने-चलाने से दूर रहने के कारण मनुष्य ने अपने जीवन, अपनी बुद्धि व कर्म को प्रदूषित बना लिया है। उसने स्वयं के जीवन को ही नहीं अपितु अपने परिवार, समुदाय, समाज, राष्ट्र तथा धरती तथा

सम्पूर्ण वायु-मण्डल को प्रदूषित बना दिया है। इस प्रदूषण को दूर करने के लिये इस वैदिक साधना आश्रम ने मुहिम छेड़ी हुई है। प्रस्तुत अथर्ववेद (प्रथम खण्ड) काव्यार्थ का प्रकाशन उसी मुहिम की एक कड़ी है।

हिन्दी के प्रख्यात कवियों में एक मात्र वीरेद्र कुमार राजपूत जी ही ऐसे कवि हैं, जिन्होंने इस मुहिम को आगे बढ़ाते हुए चारों वेदों का काव्यार्थ करने की प्रतिज्ञा की हुई है। अतः वह इस आश्रम के वन्दनीय तथा आदरणीय हैं। अब तक आप सम्पूर्ण यजुर्वेद तथा सम्पूर्ण सामवेद का काव्यार्थ पूरा कर चुके हैं। इन दोनों का प्रकाशन सरस्वती साहित्य संस्थान, दिल्ली ने किया है।

यजुर्वेद काव्यार्थ को ओ३म् प्रतिष्ठान, नई-दिल्ली ने वर्ष २०११ में तथा युवा समूह प्रकाशन, वर्धा (महाराष्ट्र) ने वर्ष २०१२ में पुरस्कृत किया। इस कृति की स्वामी विदेह योगी (कुरूक्षेत्र), प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु (अबोहर), प्रो० भवानी लाल भारतीय (जोधपुर), आचार्य प्रद्युम्न (खानपुर, हरियाणा), आचार्य प्रणव प्रकाश (दिल्ली) आदि विद्वानों ने भूरि भूरि प्रशंसा की है। इसी प्रकार सामवेद काव्यार्थ की स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती, स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती (वेद भिक्षु), प्रो० वेदप्रकाश शास्त्री (गुरूकुल काँगड़ी) आदि ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। इस ग्रंथ की प्रशंसा करते हुए प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु जी ने लिखा हैं- "किन शब्दों में बधाई दूँ। दिन में दो चार बार इसका रस-पान कर लेता हूँ। आप अमर हो गये। आपकी साधना को नमन।"

जून २०११ से कवि जी ने स्थायी रूप से देहरादून को अपनी काव्य साधना की तपः स्थली बना लिया है। यहाँ रहकर आप दिन-रात अथर्ववेद के मंत्रों का काव्यार्थ करने में लीन रहते हैं। चिन्ता का विषय है कि इस समय आपकी विदुषी धर्मपत्नी श्रीमती सुशीला जी लगभग डेढ़ वर्ष से, अपने दोनों पैरो से, तत्सम्बन्धी तंत्रिका तंत्र के क्षीण हो जाने व ठीक प्रकार से काम न कर पाने के कारण, चलने फिरने में असमर्थ हैं तथा अपना इलाज करा रही है। तथा अपना इलाज करा रही हैं। कवि जी वेद माता की सेवा करने के साथ ही साथ पूरे समय अपनी धर्म-पत्नी जी की सेवा-सुश्रुषा में भी लगे रहते हैं।

अथर्ववेद काव्यार्थ का प्रथम भाग पूरा कर चुकने के बाद कवि जी ने

देहरादून के इस वैदिक साधना आश्रम के वेद-प्रचार कार्यों को संज्ञान में लाते हुए, यहाँ के अधिकारियों से अपने ग्रन्थ के प्रकाशन की इच्छा प्रकट की। हम इसे अपना सौभाग्य समझते हुए उनके ग्रन्थ का प्रकाशन कर रहे हैं। प्रसिद्ध वैदिक विद्वान प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु जी इस ग्रन्थ के विषय में लिखते हैं-''धनवान समाजों को तथा श्रीमन्तों को इस ग्रन्थ की एक एक सौ प्रतियाँ लेकर उपयुक्त अवसरों पर, पर्वों पर सुपठित युवक-युवतियों और भक्तजनों को भेंट स्वरूप देनी चाहिये।'' ऐसी ही हमारी कामना है। सुधी पाठकों पर हमारा पूर्ण विश्वास है। प्रभु अपनी कृपा से, इसे पूर्ण करे।

विद्वानों का अनुचर

महात्मा उत्तम मुनि

प्राक्कथन

भारत के प्रसिद्ध वैज्ञानिक और हमारे पूर्व राष्ट्रपति डा० कलाम जी ने उत्तराखण्ड में वेदज्ञों के एक सम्मेलन में कहा था कि अथर्ववेद में ज्ञान-विज्ञान भरा पड़ा है। वैदिक विद्वानों को अथर्ववेद पर विशेष श्रम करके इसमें से विज्ञान के रहस्यों की खोज करके संसार का उपकार करना चाहिये। वेद के विषय में अब भी संसार के पढ़े-लिखे लोगों में बहुत भ्रान्तियाँ हैं, विशेष रूप से अथर्ववेद के बारे में। यह सुनियोजित भ्रम फैलाया गया कि इस वेद में जादू-टोने के मंत्र हैं। बहु देवतावाद, ईश्वरेतर जड़ पदार्थो की उपासना के दोष तो इस वेद पर विशेष रूप से थोपे गये।

हमारे माननीय बन्धु कविवर वीरेन्द्र कुमार जी राजपूत हम सबके द्वारा सम्मान तथा बधाई के पात्र हैं, जो गत कई वर्षो से चारों वेदों का हिन्दी पद्यानुवाद करने में लगे हुए हैं। आप दिन-रात इसी की साधना कर रहे हैं। विश्व के प्रथम विद्वान कवि आप ही हैं, जिन्होंने इससे पूर्व दो वेदों-सामवेद तथा यजुर्वेद का पद्यानुवाद पूरा करके प्रकाशित भी करवा दिया है। अब अथर्ववेद के पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे तथा पाँचवे काण्ड का हिन्दी पद्यानुवाद पाठकों के हाथों में है। कहना तो बड़ा सरल है, परन्तु करके दिखाना अति कठिन है।

धन्य हैं हमारे कवि जी जो निरन्तर लक्ष्य-सिद्धि की ओर पग आगे बढ़ा रहे हैं। इस कठिन परन्तु करणीय कार्य में आपको अपनी विदुषी जीवन संगिनी श्रीमती सुशीला जी का भी भरपूर सहयोग प्राप्त है। कवि जी का यह सत्प्रयास अथर्ववेद विषयक भ्रान्त धारणाओं का निराकरण करने में बड़ा सहायक सिद्ध होगा। भ्रम-मज्जन करना भी बहुत बड़ा पुण्य है।

अथर्ववेद में विज्ञान के गूढ़ रहस्य हैं। समाज-शास्त्र, राजनीति शास्त्र, मनोविज्ञान, दर्शन, धर्म, आध्यात्म, परिवार-निर्माण, विश्व-कल्याण, कृषि, व्यापार तथा विश्वशान्ति के सम्बन्ध में ऐसे ऐसे उपदेश, सन्देश दिये गये हैं, जो पुराने होने पर भी आज भी नये हैं। ये उपदेश सार्वभौमिक, नित्य सत्य हैं। ये घिसने, मिटने वाले नहीं है।

प्रथम काण्ड, सूक्त २१, २२ का पद्यानुवाद गुनगुनाकर कवि के सरस काव्य का रसास्वादन कीजिये। आयुर्वेद के गूढ़, परन्तु सर्वमान्य अटल नियमों का

बहुत सरल शब्दों में कवि जी ने बोध करवाया है।

२६वें सूक्त के मंत्र का भाव इस दोहे में दिया है-

"तुम सब आश्रय दो हमें करो हमें निर्द्वन्द्व।
तन को दो आरोग्य अरू सन्तति को आनन्द।।"

मानो कि इस दोहे में गृहस्थी के हृदय का चित्त चित्रण कर दिया गया है।

प्यार संसार का श्रृंगार व आधार है। परतु असुर, हिंसक तथा विघटनकारियों का क्या किया जावे? कवि जी प्रथम काण्ड के सूक्त २९ में वैदिक घोष इन पंक्तियों में करते हैं-

"सब शत्रुओं को दण्ड दें, वश में किया करो।।
जो द्वेष-भाव से भरे, शत्रु प्रहारते,
अरू जो हमारे अन्य वैरी वैर धारते;
करने को उनको पराभूत, नाश को उनके,
विषधर समान सर्वदा डसते जिया करो।।"

जीने के लिये क्षत्रिय वीरों की यही नीति अपनानी पड़ती है। अथर्ववेद के २-२-२ में एकेश्वरवाद का सुस्पष्ट उपदेश दिया गया है। प्रभु एक है और वही पूजनीय है-

"जगत् को धारता जो भुवनपति है, वही-
एक मात्र स्वामी भूमि आदिक भुवन का;
प्राप्ति से हट जातीं दैवी आपदायें सब,
अतएव वह पूजनीय जन-जन का।"

परिवारों में ऐसे दोहे, कवित्त गूँजते रहेंगे तो भाव प्रदूषण भी दूर होगा और सुख-शान्ति की वर्षा होती रहेगी। आदर्श नारी के लिये दूसरे काण्ड के सूक्त ३६ वें कवि जी वैदिक घुट्टी पिलाते हैं-

"अपने पति को पाकर, सौभाग्यवती होकर,
नाना प्रकार घर की शोभा सदा बढ़ाए।"

तीसरे काण्ड के ३०वें सूक्त के मंत्र दो के प्रचार से ही टूटते परिवार बच सकते हैं-

"पुत्र पिता का अनुव्रती हो कर्मों को बोय।
तथा मात संग एक मन होकर रहता होय।।

पत्नि, पति संग नित करे मधुर मधुसनी बात।
शान्तिपूर्ण वाणी रहे, करे नहीं आघात।।"

यहाँ पर 'कर्मो को बोय' कैसा सुन्दर प्रयोग है। यह स्वाभाविक सत्य है। यह कल्याणकारी अटल नियम है। अंग्रेजी में एक विद्वान् विचारक हमको ऐसे लिखता है-

"Let the son be obedient to his father and in accordance with the mind of his mother."

चौथे काण्ड के चौथे सूक्त में अमृत भरी वेद-वाणी का सन्देश देते हुए कवि का मधुर गान घर घर प्रचारित होने से मानव समाज रोग-मुक्त व निरोगी होगा-

"किरण सहस्रों से धरती पर सुख बरसाने वाला,
चन्दा उदय हुआ है नभ पर, मन हर्षाने वाला।-

दुर्भाग्य से मानव समाज आज शुद्ध वायु, जल, सूर्य-किरणें, चन्दा आदि सबसे कट चुका है। सब कुछ कृत्रिम ही कृत्रिम हैं।

चौथे काण्ड के सूक्त १६ के मंत्र ५ का काव्यार्थ "हर वक्त देखता है प्रभुवर, न ढील करता" बहुत महत्वपूर्ण रचना है। परमात्मा किसी विशेष दिन (Day of Judgement) न्याय करता है, इस भ्रान्त धारणा से संसार में बड़ा अनर्थ हुआ है व हो रहा है। प्रभु सजग है, सर्वद्रष्टा हैं, प्रतिपल-न्याय देता है। यह अटल सत्य इस ऋचा में समझाया गया है। हर्ष का विषय है कि अब डा० गुलाम जैलानी सरीखे मुस्लिम विचारक भी वैदिक दर्शन के इस मूलभूत सिद्धान्त का प्रकाश कर रहे हैं।

अथर्ववेद के सुप्रसिद्ध मंत्र ४.१६.२ पर कवि का सवैया छन्द में काव्यार्थ पढ़कर भक्त हृदय झूम उठता है-

"ठहरा हो कोई, चलता हो कोई,
ठगने को कोई निज नाम करे;
कोई काम करे खुलके, अथवा,
छिप के अपने घर काम करे।
कोई दो नर बैठके एक जगह,
करें गुप्त विचार, न आम करें;
एक तीसरा है प्रभु, जानता जो-
तत्काल सभी, न विराम करे।।"

प्रभु की सर्वज्ञता व सर्वव्यापकता का इससे अनूठा विचार और क्या हो सकता है?

पाँचवे काण्ड में विविध विषयों पर बहुत सुन्दर ऋचायें मिलती हैं। इस काण्ड के बीसवें तथा इक्कीस वें सूक्त में दुन्दुभि के स्वरूप तथा उसके कार्य का जो बड़ा ही सजीव, काव्यात्मक तथा हृदयग्राही वर्णन किया गया है, वह अपने आप में अनुपम है–

"वन बीच में जैसे कि हिरन, देख आदमी–
तेजी से भागते अतीव ही डरे डरे;
जैसे कि पक्षी श्येन से डर कर के भागते;
वैसे ही दुन्दुभी तू शत्रु पर गरत, डरा,
तत् चित्त हो भयभीत औ विमोह से भरे।"

तीसरे सूक्त के मंच ८ के काव्यार्थ की दो पंक्तियाँ हृदय को छू लेती हैं–

"शक्ति-विशाल ख्यात प्रभो! मम पुकार पर–
बहु अन्न युक्त घर प्रदान कर सुखी करो"

आशा है वेद-भक्त जनता कवि के परिश्रम को, सतत साधना व पुरूषार्थ को सार्थक करने के लिये वेद के इस पद्यानुवाद के प्रसार में उत्साह से, श्रद्धा-भक्ति से भरपूर सहयोग करेगी। धनवान समाजों को तथा श्रीमन्तों को इस ग्रन्थमाला की, इन काव्यार्थ की एक-एक सौ प्रतियाँ लेकर उपयुक्त अवसरों पर, पर्वों पर सुपठित युवक-युवतियों और भक्त जनों को भेंट स्वरूप देनी चाहियें।

विश्व में पहली बार चारों वेदों का पद्यानुवाद किसी भाषा में प्रकाशित हो रहा है, इसके लिये कवि जी तथा वेद-निष्ठ प्रकाशक दोनों ही बधाई के पात्र हैं।

अन्त में हम प्रभु से प्रार्थी हैं–

"ऐसी कृपा करो कि हम सब धर्मवीर हों,
वैदिक पवित्र धर्म का जग में प्रसार हो।"

आर्य जाति का विनम्र सेवक
सितम्बर १८-२०१२ राजेन्द्र जिज्ञासु
वेद सदन, नई सूरज नगरी,
अबोहर, पिन-१५२११६

प्ररोचना

कविवर वीरेन्द्र कुमार राजपूत ने आर्य जगत् को अनेक काव्य कृतियाँ उपहार स्वरूप प्रदान की हैं। इन काव्य-कृतियों में प्रमुख हैं-दयानन्द महिमा, दयानन्द सप्तक, दयानन्द शतक। इन रचनाओं में महर्षि दयानन्द सरस्वती के कार्यों का सशक्त वाणी में गायन किया गया है। श्री राजपूत ओज एवं तेजस्विता के धनी हैं। उनकी रचनाऐं-बाँध सिर कफ़न चलो, बन्दा बैरागी, शूरता की सप्त पदी, एक कर्मयोगी का जीवन संघर्ष वीर रस से ओतप्रोत कृतियाँ हैं। श्री राजपूत आर्य समाज के अनन्य सिपाही हैं। अतः उनकी लेखनी से शान्त रस को अभिव्यक्ति देने वाली तथा शिवसंकल्पों को जागृत करने वाली अनेक काव्यकृतियाँ, प्रणीत हुई हैं, यथा सामवेद शतक, प्रभु को नमन हमारा, प्रभु के गीत, मंगल सूत्र, वैदिक विनय पत्रिका तथा यजुर् गीत माला। कविवर के काव्य की प्रमुख विशेषता है-गेयता, छन्द विधान और सम्यक् शब्दों का चयन।

यह हम सभी का, आर्य समाज के सुधी कार्यकर्ताओं का तथा आर्य समाज एवं वेद के प्रति निष्ठा रखने वालों का सौभाग्य है कि श्री राजपूत परमपिता परमात्मा की कृपा एवं प्रेरणा से चारों वेदों का काव्यार्थ- करने के प्रति समर्पित हो गए हैं। हमें विश्वास है कि वे अपने इस कार्य में सफल अवश्य होंगे क्योंकि उनका यह सदुद्देश्यपूर्ण कार्य स्वान्तः सुखाय तथा जनहिताय है। उन्हें इस कार्य के सम्पादन में उनकी विदुषी धर्मपत्नी श्रीमती सुशीला जी भी सतत सहयोग कर रही है।

श्री राजपूत ने सामवेद (सम्पूर्ण) काव्यार्थ- तथा यजुर्वेद (चार भाग) काव्यार्थ- पूरा कर दिया है तथा प्रकाशक श्री मेहता रवीन्द्र आर्य, अध्यक्ष सरस्वती साहित्य संस्थान दिल्ली के सहयोग से आर्य जगत् को भेंट कर दिया है। आपको लाला चतुरसेन गुप्त आर्य साहित्य पुरस्कार २०११ से, ओ३म् प्रतिष्ठान ने सम्मानित किया है। वास्तव में ओ३म् प्रतिष्ठान स्वयं ही आपको सम्मानित करके गौरवान्वित हुआ है। आपका यह कार्य आर्य जगत् के लिए एक मूल्यवान धरोहर है। आपने वेद के प्रत्येक शब्द को काव्यानुवाद में गुम्फित करने

का प्रयास किया है। आप छन्द शास्त्र के अधिकारी विद्वान हैं, अलंकारों के प्रयोग में दक्ष हैं तथा रसाभिव्यक्ति के परिपाक् में आप सिद्ध हस्त हैं। आपके काव्य में लालित्य, माधुर्य तथा भक्तिपूर्ण रस है।

अब आपने अथर्ववेद (प्रथम भाग) काव्यार्थ- तैयार किया है। यह भी निश्चय ही पूर्ववत् आनन्द रस की वृष्टि करेगा तथा आधुनिकता की भागदौड़ के जीवन में, सत्संगी लोगों के लिये धार्मिक वातावरण की सृष्टि करेगा। अथर्ववेद में ज्ञान विज्ञान का भण्डार भरा है। चिकित्सा का सांगोपांग वर्णन इसमें परिपूर्ण है। परिवार की समृद्धि, ब्रह्म विज्ञान, प्रकृति विज्ञान, क्रिया योग, पुनर्जन्म, कर्म सिद्धान्त, न्याय, योग, मोक्ष, राष्ट्र धर्म आदि जीवनोपयोगी सभी विषयों पर परमपिता परमात्मा का मार्गदर्शन अथर्ववेद में स्पष्ट है। श्री राजपूत ने इस काव्यार्थ- में पं० क्षेमकरण दास त्रिवेदी जी कृत भाषा-भाष्य के शब्दार्थो की सहायता ली है। आपने यथाशक्ति सरल, स्पष्ट और प्रमाणिक भाष्य प्रस्तुत किया है।

श्री राजपूत जी द्वारा प्रस्तुत काव्यार्थ- के कुछ मनोहारी उद्धरण देना यहाँ अमीष्ट है-

ये त्रिषप्ता परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु में।।

(प्रथम काण्ड प्रथम सूक्त, मंत्र-१)

काव्यार्थ-

कवित्त

तीन काल भूत औ भविष्य वर्तमान तथा-
पृथिवी व द्यौ अन्तरिक्ष तीन लोक हैं;
तीन गुण सत्व, रज, तम हैं बताते विज्ञ,
ईश, जीव, प्रकृति ही तीन जग-नोक हैं।
तीन और सात योग दस हैं दिशाऐं बनीं,
तीन गुणा सात रहा इक्कीस को ठोक हैं;
दस इन्द्रियाँ व पाँच प्राण, पाँच महाभूत,
एक अंतःकरण इसका प्रयोग है।।

तिनके से प्रभु पर्यन्त जितने पदार्थ,
इन तीन सात की दशा के बीच रहते;
नाना रूप धारते हुए जो सब ओर व्याप्त,
जगत् की थिरता के कारण जो महते।
उनका शरीर बल अर्थात् तत्व ज्ञान्,
वेद-वाणी द्वारा प्रभु-देव सदा कहते;
वेद-वाणी के हैं वो, अकेले स्वामी, हमको भी-
आज वह ज्ञान करें दान, यही चहते।।

इस काव्यार्थ- में मूल भाव का स्पष्ट प्रकटीकरण सरल, प्रवाहपूर्ण, काव्यात्मक भाषा-शैली में हुआ है, जो हमें आनन्द की प्राप्ति कराता है। रसात्मकं वाक्यं काव्यम्। रसात्मक वाक्य ही काव्य है। एक अति गंभीर विषय को कविवर श्री राजपूत ने अत्यन्त सरल शब्दों में प्रस्तुत किया है। आपने मूल मंत्र के सभी शब्दों को अपने काव्यार्थ- में स्थान दिया है। संसार के सभी रूपों के घटकभूत इक्कीस तत्वों का ज्ञान हमें प्राप्त हो। इस ज्ञान के अनुष्ठान से हम स्वयं को शिक्षित करें।

इसी सूक्त के चौथे मंत्र को देखिये-

उपह्वूतो वाचस्पतिरूपास्मान्वाचस्पतिर्ह्वयताम्।
सं श्रुतेन गमेमहिमा श्रुतेन वि राधिषि।।

(प्रथम काण्ड, प्रथम सूक्त, मंत्र ४)

काव्यार्थ-

कवित्त

स्तुति, प्रार्थना, उपासनादि द्वारा पास-
हमने बुलाया, वाणिपति परमेश को;
वह भी बुलायें हमें अपने समीप, कभी-
दूर नही रहने दें, रंच लवलेश को।
वेद-विज्ञान द्वारा अलग न उनसे हों,
पास रहें दृढता, अतीव उन्मेष को;
नित्य-नित्य वेद अध्ययन वेद-ज्ञान द्वारा,
उनसे मिले रहें, है उनसा हितेश को।।

इस काव्यार्थ- में कविवर का शब्द चयन, भाषाभिव्यक्ति तथा अनुवाद क्षमता उल्लेखनीय है। यह कामना की गई है कि प्रीतिपूर्वक आचार्य की पढाई ब्रह्म विद्या ब्रह्मचारियों के हृदय में स्थिर हो तथा यथावत् उपयोगी हो।

अथर्ववेद में विभिन्न विषयों का सांगोपांग वर्णन उपलब्ध है। प्रथम काण्ड के आठवें सूक्त का दूसरा मंत्र द्रष्टव्य है-

अयं स्तुवानं आगमदिमं स्म प्रति हर्यत।
बृहस्पते वशे लब्ध्वाग्नीषोमा वि विध्यतम।।

(प्रथम काण्ड, अष्टमं सूक्त, मंत्र २)

इस वेद मंत्र में कहा गया है कि राजा का स्वभाव दण्ड देने में अग्नि सा प्रचण्ड और न्याय करने में चन्द्रमा सा शान्त होवे। कविवर द्वारा प्रस्तुत काव्यार्थ- में उपरोक्त भावों का पूर्ण निर्वाह हुआ है-

"हे अतुलित शक्ति से सम्पन्न राजा! शत्रु यह तेरा-
तेरा प्रभुत्व को स्वीकार कर स्तुति तेरी करता;
शरण आया है यह तेरी, अभय का दान दे इसको,
सभी के साथ स्वागत कर, जगा मन की मरी नरता।
हे तन, धन, ज्ञान से बलवानों के रक्षक बने राजा,
तू शम, दम आदि से आधीन कर निज अन्य बैरी जन,
निरीक्षण न्याय का कर चन्द्रमा सा शान्त होकर तू,
तथा दुष्टों को दण्ड देने में प्रचण्ड अग्नि बन।।"

अथर्ववेद में आयुर्वेद विषयक अनेक मंत्र हैं। यह मंत्र द्रष्टव्य है। इसमें पीपल की गुणवत्ता का वर्णन हुआ है-

पुमान्पुंसः परिजातोऽश्वत्थः खदिरादधि।
स हन्तु शत्रून्मामकान्यानहं द्वेष्मि ये च माम्।।

(तृतीय काण्ड, सूक्त ६, मंत्र-१)

काव्यार्थ-

कवित्त

जैसे खैर वृक्ष पर पीपल का वृक्ष उग-
बढ़ता है, होता अत्यन्त गुणवान है;

वैसें, वीर पुरूष से उत्पन्न सन्तान,
वीरों साथ बढ़ होती अति वीर्यवान है।
ऐसी वीर सन्तान उनका हनन करे,
मैंने जिन्हें अत्यन्त वैरी लिया मान है;
उनका भी कर दे हनन अविलम्ब, जो कि-
वैरी मानते हैं मुझे, द्वेष लिया ठान है।।

इसी प्रकार रोहिणी नामक औषधि का वर्णन भी उपलब्ध है, जो टूटी हड्डी जोड़ने वाली है-

रोहण्यसि रौहण्यस्थ्नश्छिन्नस्य रोहणी।
रोहयेद्मरून्धति।। (चतुर्थ काण्ड, सूक्त १२, मंत्र १)

काव्यार्थ-

रोहणी औषधि टूट के उपचार में नीक।
यह खण्डित अवयव बढ़ा कर देती है ठीक।।
टूटी हड्डी जोड़ती रोक न डाले रंच।
भर कर टूटे भाग को कर देती है टंच।।

इस प्रकार के अनेक विषयों के उदाहरण अथर्ववेद में उपलब्ध हैं।

कविवर श्री वीरेन्द्र राजपूत के द्वारा किया गया काव्यर्थ हमारी स्थायी धरोहर है। हमें विश्वास है कि इस काव्यार्थ- को पढ़ने और गाने से आर्य जन वेद का अध्ययन करने के लिए अग्रसर होंगे।

इस सुन्दर प्रस्तुति के लिए मैं कविवर श्री वीरेन्द्र जी राजपूत को बधाई देता हूँ और कामना करता हूँ कि वे शीघ्र ही चारों वेदो का काव्यार्थ- प्रस्तुत करने में सफल होंगे।

मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

डा. धर्मपाल आर्य
पूर्व कुलपति, गुरूकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

कवि की ओर से

वेद के प्रचारक महर्षि दयानन्द हैं,
उनका मैं भक्त, एक अनुयायी उनका;
उन ही ने मुझसे कहा कि मेरी भाँति बन,
हिन्दी में काव्यार्थ करने की धुन का
मुझमें न श्रेष्ठ कवियों सी कोई योग्यता है,
उन बीच मैं हूँ एक असमर्थ भुनगा;
करिये प्रभु जी आप मुझ पर कृपा, कि बनूँ,
उन भाँति काव्यार्थ करने के गुन का।।
मेरी कविता को कर दीजिये सरल आप,
उसमें प्रभू जी भर दीजिये सरसता;
शब्द-शब्द कुहके सदैव कोकिला समान,
पंक्ति-पंक्ति बीच वेद अर्थ हो विलसता।
पढ़कर इसको समस्त ही मुसलमान,
औ ईसाई धारें अज्ञान से विलगता;
कहने लगें कि ये गडरियों का गीत नहीं,
सब सत्य-ज्ञान मात्र वेद बीच बसता।।
सबसे प्रथम धन्यवाद है प्रभू को, जो कि-
मम तन, मन, बुद्धि नित्य स्वस्थ रखते;
राजेन्द्र जिज्ञासु जी को धन्यवाद, जो कि-
देने में बढ़ावा मुझे रंच नहीं थकते।
विद्वत् जनों को धन्यवाद मेरा, जो कि मुझे,
अपनी कृपालु दृष्टि से सदैव लखते,
दानियों को धन्यवाद, काव्यार्थ छापने को,
दान सदा देते रहते हैं, नहीं छकते।।

कवि-**वीरेन्द्र कुमार राजपूत**

प्रथम काण्ड

प्रथम सूक्त

मंत्र- ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

तीन काल भूत औं भविष्य, वर्तमान, तथा-
पृथिवी व द्यौ अन्तरिक्ष तीन लोक हैं,
तीन गुण सत्व, रज, तम हैं बताते विज्ञ,
ईश, जीव, प्रकृति ही तीन जग-नोक हैं।
तीन और सात योग दस हैं दिशाऐं बनीं,
तीन गुणा सात रहा इक्कीस को ठोक है;
दस इन्द्रियाँ व पाँच प्राण, पाँच महाभूत,
एक अंतःकरण इसका प्रयोग है।।
तिनके से प्रभु पर्यन्त जितने पदार्थ,
इन तीन सात की दशा के बीच रहते;
नाना रूप धारते हुए जो सब ओर व्याप्त,
जगत की थिरता के कारण जो महते।
उनका शरीर बल अर्थात् तत्व-ज्ञान,
वेद-वाणी द्वारा प्रभु-देव सदा कहते;
वेद-वाणी के हैं वो अकेले स्वामी, हमको भी,
आज वह ज्ञान करें दान, यही चहते।।

मंत्र- पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह। वसोष्पते
नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम्।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वाणी के हे स्वामी परमेश्वर! बार बार,
आप ही सदैव मेरे ध्यान में रहा करें;

श्रेष्ठ गुण-रक्षक हैं आप, रक्षियेगा मुझे,
वेद-ज्ञान द्वारा मन ज्योतियाँ गहा करे।
चाहना यही है रमणीय प्रभु! आप मुझे,
निज बीच रमण कराना ही चहा करे;
मेरा मन आनन्द से पूर्ण कर, मन बीच,
वेद-ज्ञान की सदैव थिरता महा करें।।

मंत्र- इहैवाभि वि तनूभे आर्त्नीइव ज्यया।
वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयिश्रुतम्।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

धनुष की द्वय कोटियों को जैसे शूरवीर,
डोरी में चढ़ा के हमें रक्षता है वाण से;
वैसे ही हे वाणी-पति! अपनी कृपाओं द्वारा,
रक्षिए हमें, न कभी हम हों पाषाण से।
सुखदायी ब्रह्मविद्या का हमें दान कर,
अज्ञान रूप शत्रुओं से हमें त्राण दें,
हम बीच थिरता सदैव वेद-ज्ञान गहे,
नित्य रखें साथ, नहीं रंच रहें छाँड़ते।।

मंत्र- उपहूतो वाचस्पतिरूपास्मान्वाचस्पतिर्ह्वयताम्।
सृंश्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

स्तुति, प्रार्थना, उपासनादि द्वारा पास-
हमने बुलाया वाणिपति परमेश को;
वह भी बुलायें हमें अपने समीप, कभी-
दूर नहीं रहने दें, रंच लवलेश को।
वेद-विज्ञान द्वारा अलग न उनसे हों,
पास रहें दृढ़ता, अतीव उन्मेष को;
नित्य-नित्य वेद अध्ययन, वेद-ज्ञान द्वारा,
उनसे मिले रहें, है उनसा हितेश को।।

द्वितीय सूक्त

मंत्र- विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम्।
विद्मो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम्।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जैसे हम वाणधारी शूर के पिता को, मेघ-
सम तत् रक्षक व पोषक प्रमानते;
नाना वस्तु युत, कर्म में कुशल, उपकारी-
तत् मात पृथिवी के रूप पहचानते।
वैसे विद्वान् पर-ब्रह्म को पिता समान,
जगत् का धारक व पोषक हैं जानते;
उसको वे मात सम नाना कर्म में कुशल,
नाना वस्तु युत, उपकारक बखानते।।

मंत्र- ज्या के परि णो नमाश्मानं तन्वं कृधि।
वीडुर्वरीयोऽरातीरप द्वेषांस्या कृधि।।२।।

काव्यार्थ- **गीत**

भूमि व मेघ कहलाते जो विजय के साधन,
इनको हमारी ओर, हे इन्द्र! तू झुका दे।।
हमको विजय के हेतु तैयार सर्वथा कर,
हम बीच आत्मिक बल अत्यन्त ही ठुका दे।।
तन को बना दे पत्थर अरू द्वेषों, विरोधों को-
पूरी तरह हटा कर, अति दूर तू रूका दे।।

मंत्र- वृक्षं यद् गावः परिषस्वजाना अनुस्फुरं
शरमर्चन्त्यृभुम्। शरूमस्मद्यावय दिद्युमिन्द्र।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जैसे वृक्ष से बँधी हुई दुधारू गायें, निज-
बछड़े को पाना चाहती हैं वेग धार कर;
वैसे ही हे ऐश्वर्यवान् परमेश! हम-
तेरे से बँधे रहें, तुझे हितू विचार कर।

अतुलित शक्ति धार, प्राण वायु साध, हरें-
शत्रु-उत्साह, उन्हें रख दें विदार कर;
सम्बल से आपके सदैव निर्भीक रहें,
नित्य रखें सुख औं समृद्धि को प्रसार कर।।

मंत्र- यथा द्यां च पृथिवीं चान्तस्तिष्ठति तेजनम्।
एवा रोगं चाप्नावं चान्तस्तिष्ठतु मुंज इत्।।४।।

काव्यार्थ- **गीत**

प्रभुवर हमारा साथी सुख का तथा दुखों का,
नित पास रहे, अपने मुख को कभी न मोड़े।।
इस पृथिवी लोक और उस सूर्य लोक बीच,
जैसे प्रकाश अपना नित ही निवास करता;
जैसे कि कष्ट-शोधक औषध सदा मनुज का,
अन्दर का और बाहर का रोग नाश करता।
हृदयस्थ ईश वैसे ही दुःख रहे मिटाता,
अन्दर के तथा बाहर के कष्ट नहीं छोड़े।।

तृतीय सूक्त

मंत्र- विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं शतवृष्ण्यम्। तेना
ते तन्वे ३ शंकरं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति।।१।।

काव्यार्थ- **गीत**

शर धार शत्रुओं का जो नाश किया करता,
उस शूर का पिता जो परमेश्वर कहाता;
मैं जानता उसे हूँ, रक्षक है वह सभी का,
रख मेघ जैसे शतशः सामर्थ्यों को सुहाता।।
उसने दिया है मुझको जो ज्ञान, मैं उसी से-
तुझको करूँ निरोगी अरू दीर्घ आयु वाला;
पृथिवी पर तेरा सेचन होवे अनेक विधि से,
तेरा नहीं कभी भी कष्टों से पड़े पाला।।
नाना विधि रहे तू अपना विकास करता,
धारे अतीव बल को, वन का कि जैसे नाहर;

बनकर जितेन्द्रिय तू बहु आत्म बल बढ़ाए,
हो जाँय तेरे तन के सब रोग शोक बाहर।।

मंत्र- विद्मा शरस्य पितरं मित्रं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे ३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति।।२।।

काव्यार्थ- **गीत**

शर धार शत्रुओं का जो नाश किया करता,
उस शूर का पिता जो परमेश्वर कहाता;
मैं जानता उसे हूँ, रक्षक है वह सभी का,
रख वायु रूप शतशः सामर्थ्यों को सुहाता।।
(शेष मंत्र एक की भाँति)

मंत्र- विद्मा शरस्य पितरं सूर्यं शतवृष्ण्यम्। तेना ते तन्वे ३ शंकरं
पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति।।३।।

काव्यार्थ- **गीत**

शर धार शत्रुओं का जो नाश किया करता,
उस शूर का पिता जो परमेश्वर कहाता;
मैं जानता उसे हूँ, रक्षक है वह सभी का,
रख व्योम रूप शतशः सामर्थ्यों को सुहाता।।
(शेष मंत्र एक की भाँति)

मंत्र- विद्मा शरस्य पितरं चन्द्रं शतवृष्ण्यम्। तेना ते तन्वे ३ शंकरं
पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति।।४।।

काव्यार्थ- **गीत**

शर धार शत्रुओं का जो नाश किया करता,
उस शूर का पिता जो परमेश्वर कहाता;
मैं जानता उसे हूँ, रक्षक है वह सभी का,
रख चन्द्र रूप शतशः सामर्थ्यों को सुहाता।।
(शेष मंत्र एक की भाँति)

मंत्र- विद्मा शरस्य पितरं सूर्यं शतवृष्ण्यम्। तेना ते तन्वे ३ शंकरं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति।।५।।

काव्यार्थ- **गीत**

शर धार शत्रुओं का जो नाश किया करता,
उस शूर का पिता जो परमेश्वर कहाता;
मैं जानता उसे हूँ, रक्षक है वह सभी का,
रख सूर्य्य रूप शतशः सामर्थ्यों को सुहाता।।
(शेष मंत्र एक की भाँति)

मंत्र- यदान्त्रेषु गवीन्योर्यद्वस्तावधि संश्रुतम्। एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम्।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

होता जो इकठ्ठा मल आँतो बीच और मूत्र-
मूत्र-वाहनियों मूत्र-कोश बीच रहता;
जैसे इस सबको निकाल दिया जाता जब,
तब ही मनुष्य आत्म-संतुष्टि लहता।
वैसे मूत्र रूप तन, मन, आत्मा के बीच,
औ समाज बीच शत्रु जो कि तुझे दहता;
इन सब ही के सब को निकाल तत्काल,
यदि प्राप्त करना अपार सुख चहता।।

मंत्र- प्र ते भिनद्मि मेहनं वर्त्रं वेशन्त्या इव। एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम्।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

खोल झील-जल-बन्ध जन, पानी देत बहाय।
जिससे हितकर झील की, हानि न होने पाय।।
मूत्र-द्वार तव खोल कर, मैं करता सदुपाय।
जिससे तेरा मूत्र सब, शीघ्र स्रवित हो जाय।।
हे नर! तेरे मूत्र सम, शत्रु न रहने पाँय।
उन सबको तू शीघ्र ही, बाहर दे पहुँचाय।।

मंत्र- विषितं ते वस्तिबिलं समुद्रस्योदधेरिव। एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम्।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

उदधि वा सागर नहि, बने हानि के जोग।
इस कारण जल-मार्ग को, खोला करते लोग।।
मूत्र-मार्ग तव खोल त्यों, करता मैं सदुपाय।
जिससे तेरा मूत्र सब, शीघ्र स्रवित हो जाय।।
हे नर! तेरे मूत्र सम, शत्रु न रहने पाँय।
उन सबको तू शीघ्र ही, बाहर दे पहुँचाय।।

मंत्र- यथेषुका परापतदवसृष्टाऽधि धन्वनः। एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम्।।९।।

काव्यार्थ- **दोहा**

धन्वा से छुट तीर ज्यों, चले दूरियाँ भूर।
वैस तेरा मूत्र सब, छुट जाये द्रुत दूर।।
हे नर! तेरे मूत्र सम, शत्रु न रहने पाँय।
उन सबको तू शीघ्र ही, बाहर दे पहुँचाय।।

चतुर्थ सूक्त

मंत्र- अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम्।पूंचतीर्मधुना पयः।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

रहते हैं हिंसा से दूर यज्ञकर्ता जो,
वो ही जानते हैं श्रेष्ठ उपयोग जल का;
उनके लिये है जल अत्यन्त हितकार,
शान्ति का प्रदाता एक लेप है विकल का।
माता और बहन समान शुभकार उन्हें,
उनके लिये है जल कारण सुफल का;
सरिताऐं निज मार्ग बहती हुई हैं उन्हें,
दूध में शहद ज्यों मिलाती चलें हलका।।

मंत्र- अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह। ता नो हिन्वन्त्वध्वरम्।।२।।

काव्यार्थ-

यह नदियाँ जो कि नित ही सूरज समक्ष रहतीं,
अरू जिनके साथ सूरज निज रश्मियों को भर दें;
उन शुद्ध किये जल की नदियों का सब समूह,
हिंसा रहित हमारे सब काम सिद्ध कर दे।

मंत्र- अपो देवी रूप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः। सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः।।३।।

काव्यार्थ- **गीत**

मैं उस हित से भरे जल का सदा गुणगान करता हूँ।।
हमारे अन्न उपजाने के हेतु जिस गुणी जल का,
रवि-किरणें समुद्रादि से नित ही पान करती हैं;
तथा जिसके जनित घासादि से गौ आदि की पंक्ति,
सुखी होती स्वयं, हमको सुखों का दान करती है।
मैं सुख के मूल उस जल का, सदा ही मान करता हूँ।।

मंत्र- अपस्व ग्न्तरमृतमप्सु भेषजम्। अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ वाजिनो गावो भवथ वाजिनीः।।४।।

काव्यार्थ- **गीत**

बनाया जल को गुण की खान।
इसका रोग निवारक अमृत, ऋषियों की पहचान।।
इसके श्लाघनीय गुण से जो घासादि होती है,
उससे अश्व सबल, गाय भी बलवान होती है;
इस जल से मिलता है नाना औषधियों का दान।।

पंचम सूक्त

मंत्र- आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे।।१।।

काव्यार्थ- **गीत**

जलों! अति सुखदायी हैं आप।
भली भाँति अतुलित पुष्टि से, हमको दीजे ढाप।।

आप कीजिये पुष्ट हमें, जिससे हम बलशाली हों,
जिससे हों रमणीय अत्यधिक, चेहरे पर लाली हो;
प्रभु-दर्शन कर सकें, आप वह हम पर छोड़ें छाप।।

मंत्र- यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः।।२।।

काव्यार्थ- **गीत**

जलों! कल्याणी रस की खान।
भागीदार करो हमको भी, रहते इसी जहान।।

अपने बालक से स्नेह करने वाली माता,
उसको दूध पिलाती अपना, होती पुष्टि प्रदाता;
वैसे ही निज रस का हमको, करवाऐं रसपान।।

मंत्र- तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः।।३।।

काव्यार्थ- **गीत**

जलों! तव रस का अतुल प्रताप।
ऐश्वर्य के लिये अनुग्रह उसका करते आप।।
जिस रस से अन्नादिक,गमनागमन स्रोत देते हैं,
उस रस को सम्पूर्ण लभेंगे, उससे सुख लेते हैं;
उससे वृद्धि करें, उस ही से दूर करें संताप।।

मंत्र- ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम्। अपो याचामि भेषजम्।।४।।

काव्यार्थ- **गीत**

इष्ट जल के स्वामी हे जलों!
आप प्राणियों के निवास के हेतू सिगरे पलों।।
कृपा दृष्टि रखिये सब पर, सुख सबमें रहे विचरता,
औषध-रस सबको ही देते रहें, याचना करता;
औषध-रस बहु मिले, रहे सुख ही सुख सिगरे थलों।।

षष्ठ सूक्त

मंत्र- शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्रवन्तु नः।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

दिव्य गुणों से युक्त जल, सुख को करे प्रदान।
हो अभीष्ट की सिद्धि को, अरू करने को पान।।

कल्याणी वर्षा करे, सब पर ही सब ओर।
दुःख निवारक, रोग की नाशक, सुख की कोर।।

मंत्र- अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा। अग्निं च विश्वशंभुवम्।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मुझे बताया सोम ने "जल में औषधि वास।
अरू अग्नि का वास जो कल्याणी सुख-रास।।"

नोट : सोम=परमेश्वर

मंत्र- आपः प्रणीत भेषजं वरूथं तन्वेऽमम। ज्योक्च सूर्यं दृशे।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जलों! मुझे औषध तथा संरक्षण दें आप।
जिससे दीर्घकाल लख सूर्य, मिटाऊँ पाप।।

मंत्र- शं नः आपो धन्वन्या ३ःशमु सन्त्वनूप्याः। शं नः
खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः शिवा नः सन्तु वार्षिकीः।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मरू भूमि का जल हमें, सुख को करे प्रदान।
अरू जलपूर्ण प्रदेश का, जल हो सुख प्रधान।।
खोदे कूप आदि का, जल भी सुख को बोय।
कुंभ भरा अरू वृष्टि का, जल दुःख दारिद धोय।।

सप्तम सूक्त

मंत्र- स्तुवानमग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम्।
त्वं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्बभूविथ।।१।।

काव्यार्थ- **गीत**

हे अग्नि से यशस्वी अरू तेजपूर्ण राजन्!
तू राज्य बीच शान्ति लाने में अति कुशल है;
नित ही प्रजा के द्वारा स्तुतियाँ प्राप्त तुझको,
दस्यु-हनन में तेरा प्रत्येक ही सुपल है।
इस हेतु चोर आदिक, प्रजा को कष्टदायी,
जो कहते "हो रहा है यह क्या?"सदैव सबसे;
इनको आधीन कर तू, यह दुष्ट सभी तेरी-
स्तुति करेंगे, जब यह आधीन होंगे, तब से।

मंत्र- आज्यस्य परमेष्ठिन्जातवेदस्तनूवशिन्।
अग्ने तौलस्य प्राशान यातुधानान्वि लापय।।२।।

काव्यार्थ- **गीत**

हे श्रेष्ठ स्थान वासी, ज्ञान और धन के दाता,
विख्यात अग्नि! तन का संयम तू किया करता;
तू तोल कर मिले शुभ घृत आदि को भोगा कर,
दुष्टो को रूलाता चल, उन सबके प्राण हरता।
अग्नि समान ऊँचे पद के प्रतापी राजा,
ज्ञान और धन के दाता, संयम को तू सखा कर;
लेता हुआ प्रजा से तोला हुआ कर, उससे,
दुष्टों को हन, प्रजा को आनन्द युत रखा कर।

मंत्र- वि लपन्तु यातुधाना अत्रिणो ये किमीदिनः।
अथेदमग्ने नो हविरिन्द्रश्च प्रति हर्यतम्।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे अग्नि तेजवान् और वायु वेगवान्!
आप दोनो यह होम स्वीकार करिये;
अरू दुर्गन्ध आदि दोष नष्ट करने को,
अपना अतीव ही प्रचण्ड रूप धरिये।
वैसे ही हे अग्नि और वायु के समान राजा,
आप निज में महा प्रचण्डताऐं भरिये;
राज्य बीच दुष्ट पापियों को दण्ड दे कठोर,
प्राण हरियेगा, सुख और शान्ति वरिये।।

मंत्र- अग्निः पूर्व आ रभतां प्रेन्द्रो नुदतु बाहुमान्।
ब्रवीतु सर्वो यातुमानयमस्मीत्येत्य।।४।।

काव्यार्थ- **गीत**

सबसे प्रथम प्रतापी शुभ अग्नि रूप राजा,
दुष्टों को नष्ट करने का काम करे जारी;
तद् बाद बाहुबल युत सेनापति ससैन्य,
गतिशील वायुरूप खेले स्वयं की पारी।
राजा के शत्रु-नाशन के काम में त्वरित ही,
धारे असंख्य गतियाँ, उद्दीप्त करे भारी;
राजा समक्ष आकर के, अपना नाम लेते,
'यह मै हूँ' कहते, शरणागत हों सभी कुचारी।।

मंत्र- पश्याम ते वीर्यं जातवेदः प्र णो ब्रूहि यातुधानान् नृचक्षः।
त्वया सर्वे परितप्ताः पुरस्तात्त आ यन्तु प्रब्रुवाणा उपदेम।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

धनदाता, ज्ञानी, मार्ग-दर्शक हे राजा, हम-
नित्य तेरे विक्रम को देखते रहा करें;

तुझसे प्रताड़ित हो राक्षस समस्त, निज
घुटने तेरे समक्ष टेकते रहा करें।
होकर आधीन, तेरी जय बोल, आकर के-
इस स्थान, तुझे रेखाते रहा करें;
हमको भी दुःखदायी राक्षसों का ज्ञान करा,
उनको मिटा के, दूर फेंकते रहा करें।।

मंत्र- आ रभस्व जातवेदोऽस्माकार्थाय जज्ञिषे।
दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान्वि लापय।।६।।

काव्यार्थ- हे राजा! हमें ज्ञान और धन प्रदानते,
हमारी रक्षा ही सदा स्वधर्म मानते;
हमारे लिये ही लिया है जन्म धरा पर,
हमारे सभी शत्रुओं को रख मरोड़ कर।
हमारी रक्षा के लिये, समृद्धि के लिये,
सदैव अग्नि के समान तेज को पिये;
तू अग्नि सा अतीव शीघ्रगामी दूत बन,
तू पापियों को दे विलाप, रख दे तोड़ कर।

मंत्र- त्वमग्ने यातुधानानुपबद्धाँ इहां वह।
अथैषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृश्चतु।।७।।

काव्यार्थ- हे अग्नि रूप राजा! ज्वलनशील तेज धर,
हमारे शत्रुओं को बाँध बीन बीन कर;
उन्हें कठोर दण्ड देने हेतु यहाँ ला,
तुरन्त कारागार डाल, अंगहीन कर।
तू वायु के समान आँधियों की चाल चल,
तथा अदम्य शक्ति धार शत्रु-भाल दल;
तू काट काट उनके मस्तकों को वज्र से,
हृदय में मोद धार चल, न रंच पाल कल।

अष्टम् सूक्त

मंत्र- इदं हविर्यातुधानान्नदी फेलामिव वहत्।
य इदं स्त्री पुमानकरिह स स्तुवतां जनः।।१।।

काव्यार्थ- अत्याचारी दुष्ट पापियों से रक्षार्थ, हम-
प्रार्थनाऐं जब भी करें हे भूप! टेर कर;
तब तब पापियों को तू पकड़ लाये द्रुत,
जैसे नदी फेन लिये आती उन्हें घेर कर।
तब यह नर-नारी अपराध स्वीकार,
तेरे आधीन रहें, अपने को चेर कर;
अरू तुझ कीर्तिवान राजा को प्रसन्न करें,
वाणी से अनेक बार स्तुतियाँ फेर कर।।

मंत्र- अयं स्तुवान आगमदिमं स्म प्रति हर्यत।
बृहस्पते वशे लब्ध्वाग्नीषोमा वि विध्यतम।।२।।

काव्यार्थ- हे अतुलित शक्ति से सम्पन्न राजा! शत्रु यह तेरा-
तेरे प्रभुत्व को स्वीकार कर स्तुति तेरा करता;
शरण आया है यह तेरी, अभय का दान दे इसको,
सभी के साथ स्वागत कर, जगा मन की मरी नरता।
हे तन, धन, ज्ञान में बलवानों के रक्षक बने राजा।
तू शम, दम आदि से आधीन कर निज अन्य बैरी जन;
निरीक्षण न्याय का कर चन्द्रमा सा शान्त होकर तू,
तथा दुष्टों को दण्ड देने में प्रचण्ड अग्नि बन।

मंत्र- यातुधानस्य सोमप जहि प्रजां नयस्व च। नि
स्तुवानस्य पातय परमक्ष्युतावरम्।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सोमपायी, अत्यन्त शान्त हे यशस्वी राजा!
निज राज्य बीच शत्रुओं को तू मरोड़ दे;
नष्ट कर पाप-लिप्त, उसको पकड़ के ला,
देकर कठोरतम दण्ड, रीढ़ तोड़ दे।

अपस्तुति में लगा, मिथ्याचारी शत्रु, कर-
पूर्ण रूप नष्ट, ऐसा शक्ति को निचोड़ दें;
जिससे कि वह पापी, मन बीच कुविचार,
बाहरी कुचेष्टा व पाप कर्म छोड़ दे।।

मंत्र- यत्रैषामग्ने जनिमानि वेत्थ गुहा सतामत्रिणां जातवेदः।
तांस्त्वं ब्रह्मणा वावृधानों जह्येऽषां शततर्हमग्ने।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

अग्नि रूप राजन् गुफ़ाओं बीच रहते हुए,
पथ भ्रष्ट दुष्ट जो बने न कभी आप्त नर;
तद् जन्मों को खोज खोज कर जान, तथा-
दण्ड दे कड़ा, मनों में भय पर्याप्त भर।
वेद-ज्ञान द्वारा छुड़ा उनका कुमार्ग, दिखा-
उनको सुमार्ग, सद्-भावनाऐं व्याप्त कर;
नष्ट कर हिंसक प्रवृत्ति पूर्ण रूप से तू,
अपनी प्रजा के दुःख-दारिद समाप्त कर।।

नवम् सूक्त

मंत्र- अस्मिन्वसु वसवो धारयन्त्विन्द्रः पूषा वरूणो मित्रो अग्निः।
इममादित्या उत विश्वे च देवा उत्तरस्मिंज्योतिषि धारयन्तु।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

इस पुरूषार्थी मनुष्य हेतु सब लोग,
इसके सहायक हों, निज को सखा करें,
सब प्राणियों के वास-दाता परमेश्वर,
देकर वरद हस्त इसको ढका करें।
ज्योतिमान सूर्य, पृथिवी व मेघ, वायु तथा-
अग्नि देव आदि इसे धन से ढका करें;
सब विद्वान, शूरवीर औ, महात्मादि,
उत्तम प्रकाश बीच इसको रखा करें।।

मंत्र- अस्य देवाः प्रदिशि ज्योतिरस्तु सूर्यो अग्निरूत वा हिरण्यम्।
सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम्।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

व्यवहार-ज्ञान में समृद्ध देवजन आप-
इस पुरुषार्थी को ज्ञान से मढ़ाइये;
ज्योतिमान सूर्य, अग्नि औ सुवर्ण आदिक के-
ज्ञान-विज्ञान में प्रवीणता बढ़ाइये।
सूर्य, अग्नि और सुवर्ण जैसे नर पुंगवों पर,
पूर्ण अधिकार आप इसका जड़ाइये;
नीचे रहें हमसे समस्त वैरी, इस हेतु,
उत्तम सुखों से इसे ऊपर चढ़ाइये।।

मंत्र- येनेन्द्राय समभरः पयांस्युत्तमेनब्रह्मणा जातवेदः।
तेन त्वमग्न इह वर्धयेमं सजातानां श्रेष्ठ्य आ धेह्येनम्।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

विज्ञान युक्त प्रभु! कर्मशील हेतु आप-
वेद द्वारा निज पुष्टि-व्रत को निभा रहे;
तद् हेतु आपने भरा है दुग्ध आदि रस,
जिससे कि सर्वत्र इसकी विभा रहे।
अग्नि रूप परमेश! तद् ज्ञान द्वारा यहाँ,
इसकी सुवृद्धि करें, उन्नत शिखा रहे;
आप इसे तुल्य जन्म वाले पुरूषों के बीच,
श्रेष्ठ स्थान रखें, जग में दिवा रहे।।

मंत्र- ऐषां यज्ञमुत वर्चो ददेऽहं रायस्पोषमुत चित्तान्यग्ने।
सपत्ना अस्मदधरे भवन्तुत्तमं नाकमधि रोहयेमम्।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

अग्नि रूप परमेश! इन मम पक्ष वालों-
ने किया जो मेरा अत्यन्त सम्मान है;
स्वीकार करता हूँ मानसिक बल वृद्धि,

धन वृद्धि, तेज का दिया जो अवदान है।
प्रभुवर! अपने विपक्षी और वैरी लोग,
अधोगति को हों प्राप्त, जैसे शमशान है;
सुख, सम्मान मेरा नित्य तू बढ़ाता रहे,
पुरूषार्थी पर रहा तू दयावान है।।

दशम् सूक्त

मंत्र- अयं देवानामसुरो वि राजति वशा हि सत्या वरूणस्य राज्ञः।
ततस्परि ब्रह्मणा शासदान उग्रस्य मन्योरुदिमं नयामि।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सूर्य आदि देवों का भी जीवन प्रदाता बना,
सर्वोपरि राजा प्रभु सबमें विचरता;
उस अति श्रेष्ठ राजा परमेश की ही इच्छा,
सर्वदा है सत्य, उसे जन जन सरता।
इस हेतु वेद द्वारा सत्य मार्ग जानने में,
तीक्ष्ण हुआ, मैं न कभी पाप-कर्म करता;
इस विधि रूद्र प्रभु के प्रचण्ड क्रोध से मैं-
इस अपने को छुड़ा, जग में विहरता।।

मंत्र- नमस्ते राजान्वरूणास्तु मन्यवे विश्वं ह्रुऽग्र निचिकेषि द्रुग्धम्।
सहस्रमन्यान्प्र सुवामि साकं शतं जीवाति शरदस्तवायम्।।२।।

काव्यार्थ- प्रभो! हे रूद्र रुप! तेरे क्रोध को नमन।।
समस्त ही खड़े हुए अबोध सामने,
झुकाए मस्तकों को तेरे क्रोध सामने;
हमारे पापों को तू ठीक-ठीक जानता,
छिपाऐं कहाँ, तू महा विरोध सामने।
कहीं भी छिपके कोई भी करे जो पाप तो-
तू जानता तुरन्त ही, प्रबोध को नमन।।
प्रभो! अतीव क्रोध धारी! इसी बात की,

किये हुए हूँ घोषणा हजारों सामने;
तेरा ही बनके जी सकूँगा शत वर्ष तक,
बचाए कौन? हैं यहाँ सभी तो बामने।
प्रभो! न करूँ पाप, मुझे शक्ति दीजिये,
सदैव ही प्रकोप के प्रबोध को नमन।।

मंत्र- यदुवक्यानृतं जिह्म्या वृजिनं बहु। राज्ञस्त्वा
सत्यधर्मणो मुंचामि वरूणादहम्।।३।।

काव्यार्थ- हे पाप-लिप्त नर! जू जिह्व से बोलता है,
नित पाप के वचन अरू नाना असत्य बातें;
इस पाप से तुझे अब कोई न बचा सकता,
तू कर रहा है वाणी द्वारा असंख्य घातें।
मैं तुझको सच्चे न्यायी उस वरूण देव ईश्वर-
की शरण लिये चलता, जो नाशता है रोगा;
जो सर्व दुःख पाशों से सबको छुड़ाता है,
उसकी ही कृपा द्वारा तेरा बचाव होगा।

मंत्र- मुंचामि त्वा वैश्वानरादर्णवान्महतस्परि।
सजातानुग्रेहा वद ब्रह्म चाप चिकीहि नः।।४।।

काव्यार्थ- हे पाप-लिप्त, कष्टों को भोग रहे, तुझको-
मैं पाप-कर्म तजने के ज्ञान से जुड़ाता;
इस भाँति महासागर जैसे अति गंभीर,
विश्वेश्वर जगत्-पति के क्रोध से छुड़ाता।
प्रभुवर अतीव उग्र, मम तुल्य जन्म वाले-
सब प्राणियों को इसका उपदेश किया करता;
लख भक्ति को हमारी, स्वीकार हमें करता,
हर कष्ट सभी, सुख का उन्मेष किया करता।

एकादशं सूक्त

मंत्र- वषट् ते पूषन्नस्मिन्त्सूतावर्यमा होता कृणोतु
वेधाः। सिसृतां नार्यृतप्रजाता वि पर्वाणि जिहतां सूतवा उ।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

पोषक प्रभू हमारे, नारी के प्रसव काल,
यज्ञ आपको है, आप शक्ति प्रसन्न हो;
जग-निर्माता, हे विधाता दाता, इस काल,
हूजिये सहायक, अतीव अर्हन्न हो।
यह प्रसूता सन्तान उत्पन्न करने को,
दक्षता दिखाती रहे अति ही प्रसन्न हो;
श्वास-प्रश्वास द्वारा कोमल बनाए अंग,
बालक अतीव सुख साथ उत्पन्न हो।।

मंत्र- चतस्रो दिवः प्रदिशश्चतस्रो भूम्या उत। देवा
गर्भं समैरयन्तां व्यूर्णुवन्तु सूतवे।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

नभ, भू की चारों दिशाएं, सूर्यादि देव।
इन सबने इस गर्भ को मिल कर रचाना स्वमेव।।
उसकी सुखद प्रसूति का करते हुए उपाय।
गर्भ-थान से अब यही बाहर को ले आय।।

मंत्र- सूषा व्यूर्णोतु वि योनिं हापयामसि।
श्रथया सूषणे त्वमव त्वं बिष्कले सृज।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

नारि प्रसूता अंग निज कोमल रखे बनाय।
तत् योनि को खोलकर बने सहायक धाय।
नारि प्रसूता हो तेरा अंतःप्रेरण पाथ।
वीर नारि संतान जन तू अति सुख के साथ।।

मंत्र- नेव मांसे न पीवसि नेव मज्जस्वाहृतम्। अवैतु
पृश्नि शेवलं शुने जराय्वत्तनेऽव जरायु पद्यताम्।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

माँस, चर्बी, मज्जा, बँधा नहीं जरायु होय।
लिपटा जेली से रहे जो सिवार सम होय।।
यह सब जेली एक दम बाहर को गिर जाय।
नाल सहित उस जेली को लेकर कुत्ता खाय।।

मंत्र- वि ते भिनद्मि मेहनं वि योनिं वि गवीनिके।
वि मातरं च पुत्रं च वि कुमारं जरायुणाव जरायु पद्यताम्।।५।।

काव्यार्थ-

दोहा

गर्भ-मार्ग, योनि तथा द्वय, नाड़ी पार्श्वस्थ।
ढीला करती हूँ तेरी, हर्षित कर अंतस्थ।
अलग किया शिशु मात से, अरू जरायु से बाल।
पूर्ण रूप बाहर गिरे, अब जरायु अरू नाल।।

मंत्र- यथा वातो यथा मनो यथा पतन्ति पक्षिणः।
एवा त्वां दशमासस्य साकं जरायुणा पातव जरायु पद्यताम्।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

यथा वायु, मन और खग चलते अपनी चाल।
वैसे चल दस माह के गर्भस्थल के बाल।।
बाहर आ तू शीघ्रता से जरायु के साथ।
तुझको तजे जरायु द्रुत, बाहर करे निपात।।

द्वादशं सूक्त

मंत्र- जरायुजः प्रथम उस्रियो वृषा वातभ्रजा स्तनयन्नेति वृष्ट्या।
स नो मृणाति तन्वऽऋजुगो रूजन्य एकमोजस्त्रेधा विचक्रमे।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जग को जो वायु साथ तेज करता प्रदान,
जो कि पहले से ही गगन बीच छा रहा;
ऐसा सूर्य मेघ-आवरण से निकल कर,
वृष्टि और मेघ-गर्जना के साथ आ रहा।
सरल गति से वह दोष को मिटाता, अरु
तन में निरोगता बढ़ाता सुख ला रहा;
अरु अपने अकेले तेज से जहान बीच,
तीन विधि अपने प्रकाश को भरा रहा।।

मंत्र- अंगे-अंगे शोचिषा शिश्रियाणं नमस्यन्तस्त्वा हविषा विधेम।
अंकान्तसमंकान्हविषा विधेम यो अग्रभीत्पर्वास्या ग्रभीता।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

तुझको नमन करते हैं, ज्योति तेज द्वारा-
तेरा मम अंग-अंग बीच में ठिया हुआ;
पृथक्-पृथक् चिन्ह पूजते हैं, हवि द्वारा-
सेवा करने का व्रत हमने लिया हुआ।
पूजते हवि से तेरे मिले हुए चिन्ह सभी,
तूने हमें भरपूर सुख है दिया हुआ;
तुझसा ग्रहणकर्ता न कोई जगती में,
रोम-रोम तूने परिपूरण किया हुआ।।

मंत्र- मुन्च शीर्षक्त्या उत कास एनं परूष्परूराविवेशा यो अस्य।
यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतीन्त्सचतां पर्वतांश्च।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

इस व्यक्ति को छुड़ा तू सिर दर्द की व्यथा से,
खाँसी की व्यथा को अति शीघ्रता से दूर कर;
दूर कर जोड़ जोड़ में घुसा जो रोग, तथा,
इससे तू मेघ-वृष्टि जन्य रोग दूर धर।

वात से हुआ जो उत्पन्न रोग, दूर हटा,
अरू उष्णता से हुए रोग को काफूर कर;
इस हेतु वृक्ष, लता आदि वनस्पतियों तथा-
पर्वतों के साथ सम्बन्ध तू जरूर कर।।

मंत्र- शं मे परस्मै गात्राय शमस्त्ववराय मे।
शं मे चतुर्भ्यो अंगेभ्यः शमस्तु तन्वे ३ मम ।।४।।

काव्यार्थ- मम ऊर्ध्व तन सदा ही पूरी तरह सुखी हो,
अरु अधः तन में नाना सुख राशियाँ ठुकी हों;
मम चारों अंग हाथ अरु पैर सुखी होवें,
सब ही शरीर सुख को भोगे, नहीं दुःखी हो।

त्रयोदशं सूक्त

मंत्र- नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे। येना दूडाशे अस्यसि।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

अति ही विशेष ज्योतिमान बिजली समान,
प्रभुवर! तुझको हमारा नमस्कार है;
बादल समान गड़गड़ाते नमन तुझे,
उपल समान तुझको नमस्कार है।
तू अधर्मी पापियों को देता है कठोर दण्ड,
डालता विपत्तियों में रखता प्रजार है,
अरु भक्तों को रक्षता तू सर्वशक्तिमान,
तुझको नमस्कार अनगिन बार है।।

मंत्र- नमस्ते प्रवतो नपाद्यतस्तपः समूहसि।
मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

निज भक्त को नहीं गिराने वाले प्रभुदेव,
तेरे लिये हम सब का नमस्कार है;

अति ही उदार, हे अतीव ही दयालु दाता,
तुझको नमन बार-बार शत बार है।
तू तपोमय जीवन हमारे में इकठ्ठा कर,
तपः शक्ति को बढ़ाता हमरे मंझार है;
ऐसे है हमारे प्रभु, हमको तथा हमारी-
सन्तानों को सुखी बना दें, विनती हमार है।।

मंत्र- प्रवतो नपान्नम एवास्तु तुभ्यं नमस्ते हेतये तपुषे च कृण्मः।
क्षिप्र ते धाम परमं गुहा यत्समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

भक्त अपने को न गिराने वाले, प्रभुदेव!
तुझको ही यह अपना नमस्कार है;
वज्र के समान, तपा देने वाले तेज सम,
एक तू अपार महाबल का आगार है।
हम जानते हैं, हृदय रूपी श्रेष्ठ गुफा बीच,
निज़ को सदैव ही तू रखता बिठार है;
वहाँ के रहे आकाश वा समुद्र अन्दर तू,
मध्य अवलम्ब रूप करता विहार है।।

मंत्र- यां त्वा देवा असृजन्त विश्व इषुं कृण्वाना असनाय धृष्णुम्।
सा नो मृड विदथे गृणाना तस्यै ते नमो अस्तु देवि।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

देवि ईश्वरी! तुझे समस्त विज्ञ, शत्रु-नाश-
हेतु बनी बरछी सुदृढ़ सम मानते;
तेरे लिये हम सबका नमस्कार, तुझे-
युद्धों में अतीव ख्याति-प्राप्त हम जानते।
हमको अतीव सुख कर तू प्रदान, वाह्य-
शत्रु कर नाश, दिन दिखला विहान के;
दोष रूप अंतः के शत्रु कर नाश, हम-
जन बीच मान का बितान रहें तानते।।

चतुर्दशं सूक्त

मंत्र- भगमस्या वर्च आदिष्यधि वृक्षादिव स्रजम्।
महाबुध्नइव पर्वतो ज्योक्पितृस्वास्ताम्।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जैसे लोग वृक्ष से ग्रहण करते हैं फूल,
फूल-माला बना, गले धार कर सजते;
वैसे इस वधू को ग्रहण कर, इससे ही,
निज ऐश्वर्य, तेज मानता हूँ अज से।
वास करे बड़ी-जड़-पर्वत समान, मम-
मात पिता साथ सर्व भय भीत तजते;
सुख-शान्ति साथ यह दीर्घ आयु भोग करे,
इससे समस्त दुःख-द्वन्द्व रहें छटते।।

मंत्र- एषा ते राजन्कन्याऽवधूर्नि धूयतां यम।
सा मातुर्बध्यतां गृहेऽथो भ्रातुरथो पितुः।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

नियमों में चलने चलाने वाले वर राजा,
कन्या हमारी तव वधू, तव सहचरी,
नियमों में चल व्यवहार करती हो सदा,
सुन्दर प्रबन्ध में सदैव ही रहे खरी।
वह तेरे माता-पिता, भ्राता औ कुटुम्बियों के-
साथ रहती रहे सदैव ही हरी-भरी;
सर्व सुख भोग करे, सबको प्रसन्न रखे,
बाधाऐं समस्त रहें उससे डरी-डरी।।

मंत्र- एषा ते कुलपा राजन्तामु ते परि दद्मसि।
ज्योक्पितृष्वासाता आ शीर्ष्णः समोप्यात्।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

स्वामी वर राजा! यह कन्या हमारी, तव-
कुल-रक्षिका हो, कुल शोभित किया करे;

आदर के साथ इसे करते हैं दान, यह-
अपने गुणों से तुझे मोहित किया करे।
यह बहु काल तक तव मात पिता घर-
रहती किसी को नहीं क्रोधित किया करे;
सम्पूर्ण जीवन में बुद्धि की पहुँच तक,
वंश-वृद्धि रूप बीज रोपित किया करे।।

मंत्र- असितस्य ते ब्रह्मणा कश्यपस्य गयस्य च।
अन्तःकोशमिव जामयोऽपि नह्यामि ते भगम्।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वर राजा! बन्धन रहित, दृष्टा व प्राण-
साधक सुज्ञान-स्वाद तव बुद्धि चखती;
इन साथ इस शुभ कन्या को बाँध कर,
मम बुद्धि सुखद भविष्य को निरखती।
जैसे कुल-महिलाएँ निज गहने व धन,
एक मंजूषा मध्य बन्द रखा करतीं;
वैसे तव साथ बँध रक्षित रहेगी यह,
विधि ने कहा है लिख भाग्य रूप तखती।।

पंचदशं सूक्त

मंत्र सं सं स्रवन्तु सिन्धवः सं वाता सं पतत्रिणः।
इमं यज्ञं प्रदिवो मे जुषन्तां संस्राव्येऽण हविषा जुहोमि।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सागर समस्त अत्यन्त अनुकूल हुए,
मिल-जुल बहने के मार्ग को लिया करे;
पवन भी मिल अत्यन्त अनुकूल चलें,
पक्षी मिल अनुकूल उड़ते जिया करें।
तद् रीति मम सत्कार-यज्ञ दिव्य जन,
स्वीकार अति अनुकूल हो किया करें;
अरू मम बीच प्रीति श्रद्धा विलोक कर,
नित्य मुझे शुभता की प्रेरणा दिया करे।।

मंत्र- इहैव हवमा यात म इह संस्रवणा उतेमं वर्धयता गिरः।
इहैतु सर्वो यः पशुरस्मिन्तिष्ठतु या रयिः।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

स्तुति के योग्य, अति कोमल स्वभाव विज्ञ,
मेरी प्रार्थना पर, यहाँ, यहाँ पर आइये;
मैं तुम्हारा नित्य सत्कार करता ही रहूँ,
मम सेवा सुश्रुषा विलोक हर्षाइये।
कर इस पुरूष का सत्संग से विकास,
नाना विधि वृद्धियों का धारक बनाइये;
सकल ही उपकारी जीव-जन्तु पास रहें,
धन की उपार्जन क्षमता बढ़ाइये।।

मंत्र- ये नदीनां संस्रवन्त्युत्सासः सदमक्षिताः।
तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

पर्वतीय जल स्रोतों द्वारा जल प्राप्त कर,
जल-भण्डार सरिताऐं बहा करतीं,
ग्रीष्म-ऋतु में भी जो कभी न सूखती हैं, तथा-
सागर की ओर निज़ पंथ गहा करतीं।
जैसे वह सरिताऐं शुद्ध जल धार कर,
जल दे सभी को, उपकार महा करतीं;
वैसे हम शुभ कर्मों में धन व्यय हेतु,
शुभ रीति उत्तम धनों की करें भरती।।

मंत्र- ये सर्पिषः संस्रवन्ति क्षीरस्य चोदकस्य च।
तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हमरे चारों ओर घृत, दूध और जलधार।
बूँद-बूँद मिल बह रही, करती पर उपकार।।

वैसे ही शुभ रीति हम, शुभ धन लेत बनाय।
अरु शुभ कर्मो बीच उस, धन को देत लगाय।।

षोडशं सूक्त

मंत्र- ये ऽ मावास्यां ३ रात्रिमुदस्थुर्व्राजमत्रिणः।
अग्निस्तुरीयो यातुहा सो अस्मभ्यमधि ब्रवत्।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जब कोई अत्यचारी राक्षस समूह, जो कि-
लूटपाट आदिक के कर्म को किया करे;
अमावस रात्रि में हमारी गऊशाला चढ़,
हमको सताए, नष्ट हमरा ठिया करे।
तब शत्रु हंता अग्नि सम तेजवान राजा,
जो कि जन-रक्षण के हेतु ही जिया करे;
अविलम्ब हम सबके हितार्थ राक्षसों का,
करके विनाश हमें सूचना दिया करे।।

मंत्र- सीसायाध्याह वरूणः सीसायाग्निरूपावति।
सीसं म इन्द्रः प्रायच्छत्तदंग यातुचातनम्।।२।।

काव्यार्थ-

आततताइयों को त्रास दो

हे मानवों! धन और जन की रक्षा के लिये,
सीसे की गोलियाँ बनाओ शत्रु नाश को।।
सीसे की गोलियों के ज्ञान विज्ञान का,
रक्षक वरूण ने मुझको पूर्ण ज्ञान दिया है;
सीसा ही सभी शत्रुओं से रक्षता तुझे,
अग्नि ने मुझको यह हितू व्याख्यान दिया है।
अति शूर इन्द्र ने तो मुझे दे, कहा स्वयं,
"इन गोलियों से आततताइयों को त्रास दो।।"

मंत्र- इदं विष्कन्धं सहत इदं बाधते अत्रिणः।
अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाच्याः।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

यह सीसा बाधक बने पापी देता चीर।
अरू पर-पीड़क डाकुओं को पहुंचाता पीर।।
माँसाहारी जातियाँ, करें रक्त का पान।
मैं उनको इससे हटा, करता उन्हें विरान।।

मंत्र- यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पुरूषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽ सो अवीरहा।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

यदि मम गौ, यदि अश्व को हन, देता तू त्रास।
तथा हमारे वीरों का करता है तू नाश।
तब हम तुझको सीसे से बेध करेंगे नष्ट।
जिससे हमरे वीरों को पहुँचा सके न कष्ट।।

सप्तदशं सूक्त

मंत्र- अमूर्या यन्ति योषितो हिरा लोहितवाससः।
अभ्रातरइव जामयस्तिष्ठन्तु हतवर्चसः।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वैद्य जिस काल खास रोग के इलाज हेतु,
नाड़ी छेदने के काम को शुरू किया करे;
तब इस काम से प्रथम तन बीच बसी,
धमनियाँ जो लाल वर्ण खून को लिया करें।
जो हैं लाल वस्त्र धारी सेवालीन नारियों सी,
वह रुक जाँय औ अकर्म में हिया करें,
वह उस काल बिना भाइयों की बहनों सी,
क्षीण अरू निस्तेज होकर जिया करें।।

मंत्र- तिष्ठावरे तिष्ठ पर उत त्वं तिष्ठ मध्यमे।
कनिष्ठिका च तिष्ठति तिष्ठादिद्धमनिर्महीं।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अवर, प्रवर द्वय नाड़ि से रक्त न बहने पाय।
छोटी, बड़ी व बीच की नाड़ी भी रूक जाय।।
नोट-घाव लगे जब गात पर, होने लगे प्रदाह।
रोको उस थल नाड़ियों का सब रक्त प्रवाह।।

मंत्र- शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणाम्।
अस्थुरिन्मध्यमा इमाः साकमन्ता अरंसत।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

शतशः इन धमनियों औं सहस्र नाड़ियों बीच।
ठहरा मध्यम नाड़ियाँ, अन्त भाग दियें भींच।।
काम कर रहीं नाड़ियाँ, अब पहले के समान।
बिन बाधा के रक्त का, होने लगा र वान।।

मंत्र- परि वः सिकतावती धनूर्बृहत्य ऽ क्रमीत्। तिष्ठतेलयता सु कम्।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

बृहत् धनू से शत्रु ने तुझको दिया प्रदाह।
फटीं नाड़ियां रक्त का होने लगा प्रवाह।।
राल आदि औषधि कि जो सूक्ष्म बालू सम होय।
उसकी पट्टी बाँध तू त्वरित घाव को धोय।।
इस विधि से रुक जायगा, शीघ्र रक्त का स्राव।
तुझको सुख मिल जाएगा, भर जायेगा घाव।।

अष्टादशं सूक्त

मंत्र- निर्लक्ष्म्यं ललाम्यं ग्निररातिं सुवामसि।
अथ या भद्रा तानि नः प्रजाया अरातिं नयामसि।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

धर्म से हटाते जो कृपणता, दरिद्रतादि,
ऐसे बुरे लक्षण निःशेषता से हनिये;
ईष्यालु शत्रुओं को दण्ड दे कठोर, उन्हें-

राज्य से निकालियेगा, रुद्र सम बनिये।
सुखदायी, कल्याणकारक सुलक्षणें को,
अपनी प्रजा हितार्थ राज्य बीच जनिये,
अरू सर्वदा ही अति ही महान् सैन्य शक्ति,
साथ लिये आप प्रजा रक्षार्थ तनिये।।

मंत्र- निररणिं सविता साविषक्य दोर्निर्हस्तयोर्वरूणो मित्रो अर्यमा।
निरस्मभ्यमनुमती रराणा प्रेमां देवा असाविषुः सौभगाय।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

श्रेष्ठों का मानकर्ता न्यायकारी राजा, जो कि-
सूर्य, जल, वायु के समान गुणवान हो;
वह दोनो पाँवों, दोनो हाथों से प्रजा की पीर-
सतत निकाल कर पाता सम्मान हो।
देवों द्वारा दत्त बुद्धि, अनुकूल, दानशीला,
इससे महत् ऐश्वर्य की उठान हो;
यह पूर्ण रूप से निकाल दे समस्त पीर,
दुःख हो न शेष, सर्व सुख की सुतान हो।।

मंत्र- यत्त आत्मानि तन्वां घोरमस्ति यद्वा केशेषु प्रतिचक्षणे वा।
सर्वं तद्वाचाप हन्मो वयं देवस्त्वा सविता सूदयतु।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

अत्यन्त ही विकारग्रस्त हे मनुष्य, तेरी
आत्मा पतन की दिशा की ओर जा रही;
तेरा ये शरीर, केश, अथवा ये दृष्टि तेरी,
निन्दनीय जिन भी कुलक्षणों को पा रही।
उनको हटाते हम सद्-उपदेश द्वारा,
तेरी कुप्रवृत्ति तेरे जीवन को खा रही;
तज तू कुटेव, तुझे अपनाएं जगदीश,
उनकी दया समस्त प्राणियों को भा रही।।

मंत्र- रिश्यपदीं वृषदतीं गोषेधां विधमामुत।
विलीढ्यं लालभ्यं१ ता अस्मन्नाशयामसि।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हिरन समान बिना पैर को जमाए हुए,
पैर को उठाना, गाय के समान चाल हैं;
बैल सम दाँत को चबाना, औ चटोरापन,
बोलना कटुक शब्द जैसे कि श्रृगाल है।
यह सब है बुरी प्रवृत्ति, इन्हें त्यागिएगा,
देती यह प्रवृत्ति महा दुःख में बिठाल है;
सुन्दर स्वभाव को बनाओ सत्संग द्वारा,
सज्जनों के साथ प्रभुदेव प्रतिपाल है।।

सूक्त १६

मंत्र- मा नो विदन्विव्याधिनो मो आभिव्याधिनो
विदन्। आराच्छख्याऽअस्मद्विषूचीरिन्द्र पातय।।१।।

काव्यार्थ- सैनिक हमारे होवें साहसी, पराक्रमी,
वह युद्ध-कला में अतीव ही प्रवीण हों।।
परमैश्वर्यवान राजा रणक्षेत्र बीच,
शस्त्रधारी सेना इस भाँति से खड़ा करे;
जिससे कि अत्यन्त बेध देने वालें शत्रु,
आ न सकें पास वह, सदैव ही रहें परे।
चहुँ ओर मारकाट करते जो शत्रु, वह-
कितना प्रयत्न करें, पास पहुँचे नहीं;
उनके समस्त शस्त्र भी सदैव दूर रहें,
दूर हो अतीव अरि-सैन्य-शिविर ठही।
उनके जो वाण सब और फैलते हों, वह-
अति दूर गिरते हों, नही करते विदीर्ण हों।।

मंत्र- विष्वंचो अस्मच्छरवः पतन्तु ये अस्ता ये चास्याः।
दैवीर्मनुष्येषवो ममामित्रान्वि विध्यत।।२।।

काव्यार्थ- हमारी सेना पर, जो शत्रुओं ने शस्त्र, वाणादि -
चलाये आज हैं किंवा चलाने को कभी लायें;
वह चारों ओर फैले वाण आदि शस्त्र सब उनके,
हमारी सेना के वर सैनिकों को छू नहीं पायें।
हमारी सेना के वाणादि अति ही दिव्य हे शस्त्रों,
तुम्हें अरि सैन्य पर जिस काल छोड़े देश की सेना;
त्वरित ही छूट कर तुम, पीर-दाता शत्रु सेना को-
निरन्तर छेदते रह कर, सभी के प्राण हर लेना।

मंत्र- यो नः स्वो यो अरणः सजात उत निष्ट्यो यो अस्माँ
अभिदासति। रूद्रः शख्य यैतान्ममामित्रान्वि विध्यतु।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

कोई हो मारा मित्र, अथवा हो शत्रु, या कि-
परकीय, सजातीय, या कि घर का रहे;
किवां हो समान उच्च्व जाति का कुलीन, या कि-
जाति वर्ण संकर का हीन, पर का रहे।
इनमें से कोई भी, कभी भी चढ़ आये, हमें-
दास बना नासने का नीच काम वरता रहे;
मेरे इन शत्रुओं पे रूद्र बन सेनापति,
वाणों द्वारा वध कर नष्ट करता रहे।।

मंत्र- यः सपन्तो योऽसपन्तो यश्च द्विषंछपाति नः।
दैवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम्।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जो हमारा प्रकट विरोधी प्रतिपक्षी हमें-
नष्ट करने का काम करता घना रहे;
अथवा विरोधी जो कि दिखता नहीं है हमें,
या कि द्वेष भरा व्यक्ति, शापता सना रहे।

इन सब ही को शूरवीर व्यक्ति रूद्र बन,
नष्ट करने के शुभ कर्म में तना रहे;
वह सर्व-रक्षक प्रभू मेरा, कवच रूप-
मुझमें विराज मेरा रक्षक बना रहे।।

सूक्त २०

मंत्र- अदारसृद्भवतु देव सोमास्मिन्यज्ञे मरूतोमृडता नः।
मा नो विददाभिभा मो अशस्तिमी नो विदद् वृजिना द्वेष्या या।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सोमदेव प्रभु! हम भूल कर भी न करें,
आपस की फूट को बढ़ाने वाले काम को;
करिये कृपा मरूत देव, सत्कर्म यज्ञ-
चलता रहे, न कभी लेता हो विराम को।
होवे सब अपना अभीष्ट निर्विघ्न सिद्ध,
खींचिये प्रभु जी पराभव की लगाम को;
बुद्धि हो पवित्र, अपकीर्ति हमको न मिले,
द्वेष-खल देख करें दूर से प्रणाम को।।

मंत्र- यो अद्य सेन्यो वधो घायूनामुदीरते। युवं तं मित्रावरूणावस्मद्यावयतं परि।।२।।

काव्यार्थ- ग्रहणीय शिष्ट लोगों द्वारा रहे सदा से,
प्रभु देव! शिष्ट जन को स्वीकार आप करते;
वह लोग और आप है मित्र परस्पर के,
भजनीय आप सबके, सब नित्य जाप करते।
प्रभुदेव! वीर सेना के आज पापियों का,
वध करके इस धरा से जो पाप को घटाये;
ऐसे वधों का प्रसंग भी हमारे मन से,
प्रभुदेव! कृपा करके पूरी तरह हटायें।।

मंत्र- इतश्च यदमुतश्च यद्वधं वरूण यावय।
वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम्।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सर्वश्रेष्ठ प्रभुदेव! अपने हृदय में यहाँ,
जो घ्रणा का, वध करने का भाव रहता;
इस ही प्रकार जो घ्रणा व वध भाव वहाँ,
अपर मनुष्यों के हृदय के ठाँव रहता।
प्रार्थना है अग्नि रूप प्रभु! शीघ्र राख करें,
हम बीच हिंसा घ्रणा का चाव महता;
अरु अपना महत् आश्रय प्रदानें हमें,
तव भक्त नित ही उसी की छाँव गहता।।

मंत्र - शास इत्था महाँ अस्यमित्रसाहो अस्तृतः।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदा चन।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सर्वशक्तिमान् प्रभु! तेरा ही महान् सत्य-
शासन समस्त विश्व ऊपर विराजता;
सच्चा विनाशक है तु ही समस्त शत्रुओं का,
शत्रु तुझसे ही पूर्ण रूप दूर भाजता।
तेरे मित्र बनकर रहते जो व्यक्ति, उन्हें-
कोई व्यक्ति मार सकता न उन्हें गाजता;
सर्वदा ही विजय को प्राप्त करते हैं वह,
पाते ऐश्वर्य हैं, उन्हीं पे सुख साजता।।

सूक्त २१

मंत्र- स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी।
वृषेन्द्रःपुर न एतु नः सोमपा अभयंकरः।।१।।

काव्यार्थ- शत्रु संहारक, मंगलकारक, जन-जन पालक भला करे।
अति ही क्रूर हिंसको को तू वश में रखता, तला करे।।
सर्व शक्तिमय, सोमपायी तू, नित नित नाना कला करे।
अभय दान देता जन-जन को, निर्भय होकर फला करे।।

महत् ऐश्वर्यधाता हे राजा! यह आशा मन पला करे।
तू ही हमारा नेता बनकर, आगे आगे चला करे।।

मंत्र- वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः।
अधमं गमया तमो यो अस्माँ अभिदासति।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

ऐश्वर्यधारी राजा! आपको सदैव ही,
हमारे शत्रुओं को हन देना रहे रोचता;
अतएव सेना द्वारा हमला जो बोलता है,
कुचल उसे दें, रहे भाग्य को खरोचता।
गर्व भरा शत्रु जो हमारा घात चाहता है,
या कि हमें दास बनाने की बात सोचता;
आप उसको अधम अंधकार गर्त बीच-
डालिये, न रंच दिखलाइये सकोचता।।

मंत्र- वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सकल राक्षसों, हिंसकों को प्रभुवर तू मार।
उनके जबड़े तोड़ कर तू भंजित कर डार।।
अंध-विनाशक प्रभु! महत् ऐश्वर्य सम्पन्न।
अरि मन का उत्साह हर, कर विषाद उत्पन्न।।

मंत्र- उपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम्।
वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम्।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

वैभवधारी ईश तू तोड़ शत्रु-उत्साह।
वह हरता मम आयु तू हर तत् आयु प्रवाह।।
प्रभो! डाल अति दूर तू अरि का किया प्रहार।
अरु हमको निज शरण रख, सुख महनीय प्रसार।।

सूक्त २२

मंत्र- अनु सूर्यमुदयतां हृदद्योतो हरिमा च ते।
गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

तेरा पाण्डु रोग, हृद-पीड़ा प्रातः सांय की,
सूर्य-किरणों से पूर्ण रूप से समाप्त हो;
उन कालों बीच तेरे भ्रमण के द्वारा तेरा-
तन और मन कभी रंच नहीं शाप्त हो।
उन कालों के निकलते, छिपते सूर्य की वक्र-
किरणों में लगता कि लाल रंग व्याप्त हों;
वह प्रसिद्ध किरणें तुझे शीघ्र ही निरोगी करें,
तब हृष्ट-पुष्टता सभी जनों को ज्ञाप्त हो।

मंत्र- परि त्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्वाय दध्मसि।
यथाऽयमरपा असदथो अहरितो भुवत् ।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हम सद्-वैद्य औ कुटम्बी चाहते हैं, यह-
रोगहीन रह, दीर्घ जीवन का सूर हो;
इस हेतु यह प्रातः सांय के काल, सूर्य-
किरणों को नित्य-नित्य सेवता जरूर हो।
होने लगे रक्त का संचार, परिपुष्ट अरू-
स्वस्थ हो शरीर, लाल रक्त भरपूर हो;
यह पूर्ण रूप से निरोगी बन जाय, तथा-
गात माह पीलिया का पीलापन दूर हो।।

मंत्र- या रोहिणीर्देवत्या ३ गावो या उत रोहिणी।
रूपं रूपं वयोवयस्ताभिष्ट्वा परि दध्मसि।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वैद्यक के ज्ञाता हम सद् वैद्य, दिव्य गुणी-
स्वास्थ्य की प्रदाता जो भी औषधियाँ जानते;
अरू सांय प्रातः सूर्य किरणों से लाल वर्ण,
की दिशाऐं, दिव्य गुण धारक प्रमानते।
इन सब ही का तुझे सेवन कराके, तुझे-
सुन्दरता सब ही प्रकार की प्रदानते;
अरु तुझको समर्थ करने को, तव बीच-
हृष्ट-पुष्टता व बल का वितान तानते।।

मंत्र- शुकेषु ते हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि।
अथो हारिद्रवेषु ते हरिमाणं नि दध्मसि।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

इस लाल रंग की चिकित्सा के द्वारा तेरा,
पीलापन, फीकापन दूर भाग जाएगा;
तत् उपचार हेतु तोते आदि हरे रंग-
पक्षियों से नित्य तू निकटता बनाएगा।
हरी वनस्पतियों से रखेगा संपर्क सदा,
अरु नित्य ही हरी वनस्पतियां खाएगा;
इससे छिपेगा रोग हरे पक्षी पौधों बीच,
तेरे पास लौट कर फिर से न आएगा।।

सूक्त २३

मंत्र- नक्तंजातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च।
इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत्।।१।।

काव्यार्थ- परिपुष्ट चन्द्र किरणों से हो निशा में जन्मी,
हे उष्णुता की धारक औषधि! तू कृपा कर दें;
हे चित्त खेंचती एवं रमण करती चलती,
हे पूर्ण सार युत औषधि! रोग-मुक्त कर दे।

तू विकृत चर्म ऊपर पहले सा रंग देती,
कुरूप चर्म की निज लेपन से व्यथा हर दें;
इस कुष्ठ आदि को एवं श्वेत कुष्ठ को तू,
रंग करके, फिर से इसमें पहले सा रूप भर दे।

मंत्र- किलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत्।
आ त्वा स्वो विशतां वर्णः परा शुक्लानि पातय।।२।।

काव्यार्थ- मानव का रूप कर देते हैं कुरूप, ऐसे-
जो कुष्ठ, श्वेत कुष्ठ, धब्बे शरीर पर हैं।
तू अपने लेप द्वारा उनको समाप्त कर दे,
रोगी कहें कि धब्बे जाने कहाँ, किधर है।
होवे प्रविष्ट रोग का अपना रंग तुझ में,
गिर जाँय श्वेत चिन्ह जिनसे अधीर नर हैं।

मंत्र- असितं ते प्रलयनमास्थानमसितं तव।
असिक्न्यस्योषधे निरितो नाशया पृषत्।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ओषधि! है निर्बन्ध तव लाभ, सार, स्थान
तू इस नर के कुष्ठ का कर दे पूर्ण निदान।।

मंत्र- अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य च यत्त्वचि।
दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेतमनीनशम्।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

दुराचार, हड्डी तथा माँस से उत्पन्न।
कुष्ठ रोग से हो गयी तेरी त्वचा प्रच्छन्न।।
श्वेत चिन्हों से त्वचा के, तू था बहुत हताश।
मैंने उनका कर दिया, वेद-ज्ञान से नाश।।

सूक्त २४

मंत्र- सुपर्णो जातः प्रथमस्तस्य त्वं पित्तमासिथ।
तदासुरी युधा जिता रूपं चक्रे वनस्पतीन्।।१।।

काव्यार्थ- अत्यन्त पूर्ण प्रभु जो सृष्टि के पूर्व में था,
उस प्रभु का पित्त, औषधि! तूने लिया हुआ है।।
प्रभुवर की आसुरी शक्ति, जो प्रलय के अंध-
उपरान्त हुई जाग्रत एवं हुई प्रकाशित;
उसने जो भूमि भीतर थी शान्त बीज रूप,
तुझ ऐसी सुप्त औषधि को कर दिया विभाजित।
सूर्य की पित्तवर्द्धक किरणों से और जल से,
कर रूपवान तुझको गंधित किया हुआ है।।

मंत्र- आसुरी चक्रे प्रथमेदं किलासभेषजमिंद किलासनाशनम्!
अनीनशत किलासं सरूपामकरत्त्वचम्।।२।।

काव्यार्थ- कल्याणकारी प्रभु की सबसे प्रथम जो प्रकटी,
वह ज्ञान बुद्धि पूरित माया की शक्ति ही थी।
उसने बनाया कुष्ठ नामक महौषधि को,
जो रूप-नाश-कर्ता-कुष्ठ विनाशिनी थी।
माया ने औषधि से इस कुष्ठ को मिटाया,
बिगड़ी त्वचा शरीर के रूप-रंग की थी।

मंत्र- सरूपा नाम ते माता सरूपो नाम ते पिता।
सरूपकृत्त्वमोषधे सा सरूपमिदं कृधि।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

कुष्ठादि से जो हुई तन की त्वचा कुरूप।
हे औषधि! तू लेप बन, देती उसे सुरूप।।
औषधे! जो पौधे तुझे करते जन्म प्रदान।
मात-पिता सम वह तेरे धारक गुण की खान।।
तेरी सरूपा मात है, करती रंग समान।

तथा सरूपा तब पिता भी तद् गुण प्रधान।।
उन समान हे औषधे। तू तद् गुण प्रधान।
मिटा शीघ्र इस कुष्ठ को, कर दे रंग समान।।

मंत्र- श्यामा सरूपंकरणी पृथिव्या अध्युद्धता।
इदमू षु प्र साधय पुना रूपाणि कल्पय।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

उगी वनस्पति भूमि पर, श्यामा नाम अनूप।
करती विकृत चर्म को शेष चर्म अनुरूप।।
तुझे उखाड़ा भूमि से, कर तू हमें प्रसन्न।
अरु कर अपने कर्म को, भली भाँति सम्पन्न।।
इस नर की विकृत हुई कुष्ठ रोग से चर्म।
करने में इसको सुधर, निभा स्वयं का धर्म।।

सूक्त २५

मंत्र- यदग्निरापो उदहत्प्रविश्य यत्राकृण्वन्धर्मधृतो नमांसि।
तत्र त आहुः परमं जनित्रं स नः संविद्वान्परि वृड्.ग्धि तक्मन्।।१।।

काव्यार्थ- जिस सामर्थ्य बल द्वारा अग्नि ने प्रवेश कर,
शीतल स्वभाव जल तत्व को तपा दिया;
जिस सामर्थ्य ने धर्म-पालकों से भाल-
झुकवा के, निज नाम वाणी से जपा दिया।
उनही ने तेरा वह परम जन्म-स्थान,
उस सामर्थ्य बीच रहना छपा दिया;
ताप-दा हे ज्वर! हम उस ही सामर्थ्य की-
शरण रहते, न रंच हमको कँपा किया।।

मंत्र- यद्यर्चिर्यदि वाऽसि शोचिः शकल्येषि यदि वा ते जनित्रम्।
ह्रुडुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान्परि वृड्.ग्धि तक्मन्।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

कष्टदायी ज्वर! यदि तू है ज्वाला रूप, या कि-
अन्दर ही अन्दर से ताप रख तोड़ दे,
यदि तेरा जन्म-स्थान अंग-प्रत्यंग-
कमज़ोर करता हुआ उसे मरोड़ दे।
हर एक अंग को हिलाने वाला रूप धार
अपने ही साथ साथ पाण्डु रोग जोड़ दें;
तब तुझे उपरोक्त लक्ष्णों का जान, जो भी-
करता है अपना बचाव, उसे छोड़ दे।।

मंत्र- यदि शोको यदि वाभि ऽ शोको यदि वा राज्ञो वरूणस्यासि पुत्रः।
ह्रुडुर्नामासि हरितस्य देव नः संविद्वान्परि वृड्.ग्धि तक्मन्।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

कष्टदायी ज्वर! यदि तू है पीर-दाता, या कि-
सर्वांग पीर उत्पन्न कर तोड़ दे;
या कि तेजधारी तेज-दाता सूर्य का है पुत्र,
जल राज वरूण से उत्पत्ति जोड़ दे।
तू समस्त अंग को हिलाता हुआ, करता है-
पीलक को उत्पन्न, जीवन मरोड़ दें;
तब तुझे उपरोक्त लक्ष्णों का जान, जो भी
करता है अपना बचाव, उसे छोड़ दे।।

मंत्र- नमः शीताय तक्मने नमो रूराय शोचिषे कृणोमि।
यो अन्येद्युरूभयद्युरभ्येति तृतीयकाय नमो अस्तु तक्मने।।४।।

काव्यार्थ- **नमस्कार**

हे शीत-ज्वर! तुझे मैं करता हूँ नमस्कार,
प्रतिदिन के ज्वर तुझे भी करता हूँ नमस्कार;

हे एक दिन को छोड़ कर आ रहे तुझे भी,
भयभीत बार बार करता हूँ नमस्कार।
करता है आक्रमण जो दो दिन को छोड़ कर के,
उसको मैं भयातुर हो करता हूँ नमस्कार;
आने से तीसरे दिन, जो ज्वर नहीं है टरता,
उस ज्वर के लिये मेरा अंतिम है नमस्कार।

सूक्म २६

मंत्र- आरे ३ सावस्मदस्तु हेतिर्देवासो असत्। आरे अश्मा यमस्यथ।।१।।

काव्यार्थ- विजयी हे शूरवीरों! शस्त्र शत्रु का फेंका,
हमारे पास तक न आये, दूर ही रहे;
अरू आप द्वारा शत्रु पर फेंका गया पत्थर,
हम पर ही उलट ना गिरे, हमको नहीं दहे।

मंत्र- सखासावस्मभ्यमस्तु रातिः सखेन्द्रो भगः। सविता चित्रराधा।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

यह दानी राजा रहे मित्र हमारे हेतु।
सबकी उन्नति सिद्धि में, अपनी उन्नति लेतु।।
महा प्रतापी सूर्य सा, अद्भुत धन से युक्त।
महनीय ऐश्वर्यों का, सर्व भयों से मुक्त।।

मंत्र- यूयं नः प्रवतो नपान्मरूतः सूर्यत्वचसः। शर्म यच्छाथ सप्रथाः।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जन-रक्षक राजन सदा धारे महा प्रताप।
अपने भक्तों को कभी नहीं गिराते आप।।
अरू सेनापति आदि जो लिये सूर्य सा तेज।
शत्रु मान-मर्दक विपुल वैभव रखें सहेज।।
सकल प्रजा हित दीजिये विस्तृत सुख को आप।
अरू दीजे अपनी शरण, करें न किंचित पाप।।

मंत्र- सुषूदत मृडत मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तुम सब आश्रय दो हमें, करो हमें निर्द्वन्द्व।
तन को दो आरोग्य अरू संतति को आनन्द।।

सूक्त २७

मंत्र- आमूः पारे पृदाक्वऽस्त्रिषप्ता निर्जरायवः।
तासां जरायुभिर्वयमक्ष्या ३ वपि व्ययामस्याघायोः परिपन्थिनः।।१।।

काव्यार्थ- ऊँचे व नीचे, मध्यम, इन तीन थलों पर जो,
उस पार युद्ध हेतु कटिबद्ध शत्रु-सेना;
लगती जो, सर्पिणी एक हो केंचुली से निकली,
फैलाती उपद्रव को प्रत्येक दिवस रेना।
हम सैन्य-पति व सैनिक बहुरीति जानकर के-
उसका जरायु रूपी सब गुप्त कर्म खेना;
अरू दुष्टताऐं लखकर करते हैं काम उसकी-
मन और बुद्धि रूपी आँखों को मूँद देना।

मंत्र- विषच्येतु कृन्तती पिनाकमिव बिभ्रती। विष्वक्पुनर्भुवा मनोऽसमृद्धा अघायवः।।२।।

काव्यार्थ- धनुधार, शत्रु काटता, अनेक भागों में-
विभक्त हो, हमारा सैन्य-दल तना रहे;
चहुँ ओर से आगे बढ़े, जिससे पुनः जुड़ा-
अरि-सैन्य-दल का मन डरा, व्याकुल घना रहे।
हो जाय वह तितर-बितर व युद्ध छोड़ कर,
अविलम्ब भाग जाय, विपद में सना रहे;
अर्थावभाव में रहे, धन जोड़ पाने में-
असमर्थ हुआ, पूर्णतः निर्धन बना रहे।।

मंत्र- न बहवः समशकन्नार्भका अभि दाधृषुः।
वेणोरद्गाइवाभितोऽसमृद्धा अघायवः।।३।।

काव्यार्थ- हमारे शूर-वीरों की सेना के सामने,
अरि-दल असंख्य रंच-मात्र टिक नहीं सकता;
निर्बल तथा कोमल-शरीर शिशु समान वह,
ठहरे ही नहीं रंच भी, इत उत रहे तकता;
अरू बाँस के अंकुर अशक्त के समान हो,
धन हीनता के तीव्र ताप में रहे पकता।

मंत्र- प्रेतं पादौ प्र स्फुरतं वहंत पृणतो गृहान्।
इन्द्राण्ये ऽ तु प्रथमाजीतामुषिता पुरः।।४।।

काव्यार्थ- दोनो पगो! आगे बढ़ो, अरू फुर्ती दिखाते,
पहुँचाओ हमें तृप्ति प्रदाता घरो तलक;
वर इन्द्र की शक्ति, महा सम्पत्ति, अजेय,
बन अग्रग्रामी हमको दिखाती चले झलक।।

सूक्त २८

मंत्र- उप प्रागद्देवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः।
दहन्नप द्वयाविनो यातुधानान्किमीदिनः।।१।।

काव्यार्थ- विजयी सदैव, अग्नि रुप सैन्यपति, सदा-
खल राक्षसों को मारता, रहता प्रतीप है।
जन-जन के कष्ट, दुःख रूप अंध मिटाता,
सर्वत्र सुखों का प्रकाश-दा सुदीप है।।
दुमुखे व कपटी लोगों का विनाश कर्ता बन,
वीरत्व भरा एक मोतियों का सीप है।
यह क्या है? कहने वाले लम्पटो को भस्म कर,
रक्षार्थ आन पहुँचा हमारे समीप है।।

मंत्र- प्रति दह यातुधानान्प्रति देव किमीदिनः।
प्रतीचीः कृष्णवर्तने सं दह यातुधान्यः।।२।।

काव्यार्थ- विजयी सदैव अग्नि रूप सैन्यपति सदा-
दुःखदायी राक्षसों को जला करके ढेर कर;
उनको जो प्रेरते रहे, मुखिया बने, ऐसे-
सबका ही धुआँधार करते तू अहेर कर।
यह क्या है? कहने वाले छली लम्पटों में से,
प्रत्येक को जला दे, नहीं रंच देर कर;
जो दुःख-प्रदाता शत्रु-सैन्य सामने खड़ी,
उसको तू भस्म कर, चतुर्दिशाओं घेर कर।

मंत्र- या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे।
या रसस्य हरणाय जामारभे तोकमत्तु सा।।३।।

काव्यार्थ- वह शत्रुओं की सेना जो कि अपने आदि से-
दुष्टाचरण व पाप को स्वीकार किये हैं;
अरू जो बलादि रस के हरण हेतु हमारे,
समृद्ध बली देश पर प्रहार किये है।
हमारा सेनापति अतीव नीति में कुशल,
उन शत्रुओं की सेना बीच भेद डाल दे;
एक दूसरे को गालियाँ दें, उसके सिपाही,
आपस में लड़ मरें, अतीव दुःख पाल दें।
अपने नवोत्पन्न शिशु का रक्त चूसती,
रक्त-पिपासु क्रूर एक नारी समान बन;
होकर के बुद्धि से भ्रमित, अपने हितू जन का,
कर देवें सर्वनाश वे विद्वेष-खान बन।

मंत्र- पुत्रमत्तु यातुधानीः स्वसारयुत नप्त्यम्।
अधा मिथो विकेश्यो ३ विघ्नतां यातुधान्यो ३ वि तृह्यन्तामराय्यः।।४।।

काव्यार्थ- राजा हो नीतिवान, शत्रु-सैन्य बीच में-
चतुराई से इस भाँति की हलचल को मचा दे;

बिखरे हुए केशों से रहें छिन्न-भिन्न वो,
आपस में लड़ती, अपने ही नायक को नचा दें;
अपनों का नाश करती, सताने लगे, उनमें-
सहयोग, प्रेम-भाव को किंचित न बचा दें;
उसकी प्रजा कर आदि न दे, राजकोष को-
भारी क्षति पहुँचाए, महा दुःख रचा दे;
होवे न स्वयं वह सुखी, तद् भाग्य-पटल पर-
नाना प्रकार के अभाव, कष्ट खचा दे।

सूक्त २९

मंत्र- अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृधे।
तेनास्मान्ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय।।१।।

काव्यार्थ- हे ब्रह्मणस्पते! हे जगदीश्वर हमारे,
उस ही मणि को देकर आगे हमें बढ़ा दे।।
हमसे भी पूर्व जिस शुभ सामर्थ्य रूप मणि से,
अत्यन्त तेजवान एवं महा-प्रतापी,
महनीय ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्र ने थी,
पायी विजय श्री शुभ, चहुँ ओर जगत् व्यापी।
जगदीश! राष्ट्र हित में हमको उसी के द्वारा,
आगे बढ़ायें प्रतिदिन, बहु ख्याति से मढ़ा दें।।

मंत्र- अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरायतः।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति।।२।।

काव्यार्थ- सब शत्रुओं को दण्ड दे, वश में किया करो।।
जो द्वेषभाव से भरे शत्रु प्रहारते,
अरु जो हमारे अन्य बैरी, वैर धारते;
करने को उनको पराभूत, नाश को उनके,
विषधर समान सर्वदा डसते जिया करो।।

जो दुष्टता को धार लड़ाई किया करते,
अथवा ससैन्य हम पे चढ़ाई किया करते;
तैयारी करके तुम तुरन्त आगे बढ़ो, एवम्-
उन सबको नष्ट कर, विजय रस में हिया करो।।

मंत्र- अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृधत्।
अभि त्वा विश्वा भूतान्यमीवर्तो यथाससि।।३।।

काव्यार्थ- हे शूरवीर! दुष्ट शत्रुओं को दबा कर,
सुख और शान्ति हेतु सदा काम किया कर।।
तुझको बढ़ाया सूर्य-देव ने प्रकाश से,
अरू चन्द्रदेव ने तुझे अमृत दे बढ़ाया;
सृष्टि के सभी भूतों ने देकर सहायता,
तुझको किया समर्थ है, तुझको है चढ़ाया।
जिससे तू राक्षसों का हनन कर्ता बना है,
इस काम में तू रंच न विराम लिया कर।।

मंत्र- अभीवर्तो अभिभवः सपत्नक्षयणो मणिः।
राष्ट्राय मह्यंबध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे।।४।।

काव्यार्थ- यह राज्य-चिन्ह शत्रु-जित मणि, सदैव ही है।
खल शत्रुओं का सर्वनाश करता रहा है।।
यह पाप भरे शत्रुओं को घेरने वाला,
करता है पूर्ण रूप शत्रुओं का पराभव;
प्रतिपक्षियों का नाश यह करता सदैव ही,
यह देश-भक्त वीरों कोदेता है महा छव।
मुझ पर ये बँधे, जिससे करूँ राष्ट्र-अभ्युदय,
यह शत्रुओं में तीव्र त्रास भरता रहा है।

मंत्र- उदसौ सूर्यो अगादुदिदं मामकं वचः।
अथाहं शत्रुहोऽसान्यसपत्न सपत्नहा।।५।।

काव्यार्थ- जिस भाँति लोकों को चलाने वाला सूर्य यह,
होकर उदय को प्राप्त कर रहा प्रकाश है,
उस भाँति आज राज्य को चलाने वाले मुझ-
महीप की यह घोषणा करती उजास है।
प्रतिपक्षी का घातक रहूँ मैं शत्रु संहारक,
जीवन का मेरे ध्येय ही शत्रु-विनाश है;
शत्रु-रहित होकर रहूँ, होवे प्रजा सुखी,
जन-जन कहे हममें नहीं कोई उदास है।।

मंत्र- सपत्नक्षयणो वृषाभिराष्ट्रो विषासहिः।
यथाहमेषां वीराणां विराजानि जनस्य च।।६।।

काव्यार्थ- जिससे कि मैं समस्त शत्रुओं का संहारक,
अत्यन्त बली और ऐश्वर्यवान् बन;
विजयी बनूँ तथा सदैव राष्ट्र के प्रति-
कर्तव्य करूँ कर्मवीर, ज्ञानवान बन;
रक्षक बनूँ इन वीरों औ, समस्त जनों का,
राजा कहाऊँ मैं अतीव तेजवान बन।

सूक्त ३०

मंत्र- विश्वे देवा वसवो रक्षतेममुतादित्या जागृत यूयमस्मिन्।
मेमं सनाभिरूत वान्यनाभिर्मेमं प्रापत्यौरूषेयो बधो यः।।१।।

काव्यार्थ- हे समस्त देवों! वसुदेवों सृष्टि के,
तुम इस मनुष्य को सदा सुरक्षते रहो।
आदित्य देवो! तुम सदैव इसके विषय में,
जागृत रहो उपेक्षाऐं भक्षते रहो।
यह राज्य के रक्षार्थ सदा जागता रहे,
अरू शूरवीरों को तदर्थ पागता रहे।
इसके स्वबन्धु या अबन्धु व्यक्ति के द्वारा,
अथवा किसी भी अन्य छली शक्ति के द्वारा।

इसको समाप्त करने का जब जब भी यत्न हो,
तब तबक्षति न पहुँचे इस नर रत्न को।

मंत्र- ये वो देवाः पितरो ये च पुत्राः सचेतसो मे शृणुतेभुक्तम्।
सर्वेभ्यो वः परि ददाम्येतं स्वस्तयेऽनं जरसे वहाथ।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे समस्त देवो! आप, अरू आपके जो पिता,
अरू आपकी जो पुत्र आदि सन्तान है;
वह सब सावधान मम बचनों को सुने,
जिनमें निहित हितकार आह्वान है।
आप निज सत्संग, उपदेश द्वारा मुझे,
देवें जो कहाता स्तुत्य स्थान है;
मुझको बनायें पूर्ण आयु स्वस्थ और सुखी,
आपके आधीन हूँ, रहा जो अनजान है।।

मंत्र- ये देवा दिविष्ठ ये पृथिव्यां ये अन्तरिक्ष ओषधीषु पशुष्वप्स्वभ्न्तः।
ते कृणुत जरसमायुरस्मै शतमन्यान्परि वृणक्तु मृत्यून्।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

दिव्य ज्ञान युक्त विद्वानों! जो गहन ज्ञान-
रखते हो आप सूर्य, भूमि विज्ञान का;
अन्तरिक्ष विज्ञान, औषधि, वनस्पति का,
पशु आदि, जल की गहन पहचान का।
ऐसे वह आप, इस व्यक्ति को बनायें सदा,
दीर्घ जीवी, अरू कीर्ति युक्त स्थान का;
यह व्यक्ति शुभ कर्मो को करता सदैव,
रोके शतशः अप मृत्यु की प्रधानता।।

मंत्र- येषां प्रयाजा उत वानुयाजा हुतभागा अहुतादश्च देवाः।
येषां वः पंच प्रदिशो विभक्तास्तान्वो अस्मै सत्रसदः कृजोमि।।४।।

काव्यार्थ- धर्मात्मा अतीव विद्वान् आप्त पुरूषों!
जग के हितैषी बनकर तुम लोग रहा करते;
करते जो तुम हो उत्तम अति पूजनीय कर्म,
अनुकूल पूजनीय कर्मों को महा करते।
आदान अरू प्रदान के करते जो विभाग,
अरू यज्ञ शेष भोजन का रखते जो स्वभाव;
जो दान शेष का ही उपभोग किया करते,
रखते जो तुम सदा ही दुष्कर्म से बचाव।
नाना प्रकार करते विभक्त दान कर्म,
जो तुमको सर्वदा ही है स्वार्थ मुक्त करता;
हे विज्ञों! इसी कारण, मैं राजा राष्ट्र हित में,
राजसभा सभासद, तुमको नियुक्त करता।

सूक्त ३१

मंत्र- आशानामाशापालेभ्यश्चतुर्भ्यो अमृतेभ्यः।
हदं भूतस्याध्यक्षेभ्यो विधम हविषा वयम्।।१।।

काव्यार्थ- इस काल सब दिशाओं के मध्य जो सदा से,
मानव की सदाशाऐं सब पूर्ण किया करते।
वह धर्म, अर्थ, काम अरू मोक्ष हैं पदारथ,
ज्ञानी सदैव आश्रय इनका ही लिया करते।
हम भी उन्हीं के पथ पर चलते रहें सदैव,
पुरूषार्थ रहें करते, किंचित रहें न डरते।
इस अमर रूप वाले संसार के प्रधान,
जो व्यक्ति श्रेष्ठ गुण अरू शुभ कर्म में विचरते।
सन्मार्ग के पथिक ऐसे मार्ग-दर्शकों की,
हम श्रद्धा भक्ति साथ सेवाऐं रहें करते।

मंत्र- य आशानामाशापालाश्चत्वार स्थन देवाः।
ते नो निर्ऋत्यापाशेभ्यो मुंचतांहसोअंहसः।।२।।

काव्यार्थ- सब ही दिशाओं मध्य हे प्रार्थना के योग्य,
धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष से हमको तुम जुड़ाओ।
इन चार पदार्थों के हे वर्तमान रक्षक,
हे ज्योति के प्रदाता! ज्योति के देवताओं।
तुम सब हमें धनाभाव और महामारी-
के फन्द और प्रत्येक पाप से छुड़ाओ।

मंत्र- अग्नामस्त्वा हविषा यजाम्यश्लोणस्त्वा घृतेन जुहोमि।
य आशानामाशापालस्तुरीयो देवः स नः सुभूतमेह वक्षत्।।३।।

काव्यार्थ- परमेश्वर! तुझे मैं भक्ति से पूजता हूँ,
अपनी कृपा से मेरे मन का कमल खिला दे।
लँगड़ा न होता, तुझको मैं ज्ञान-ज्योति द्वारा-
स्वीकारता हूँ, मुझको प्रीति का रस पिला दे।
सारी दिशाओं नर की सद्-कामना के रक्षक,
हे तीव्रगामी प्रभु! तू मम लक्ष्य से मिला दे।
धर्म, अर्थ, काम सिद्धि पाये हुए हूँ, मुझको-
शुभ रीति चतुर्थावस्था मोक्ष को दिला दे।

मंत्र- स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरूषेभ्य।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम्।।४।।

काव्यार्थ- आनन्द और सुख को माँ के लिये हमारी,
पितु के लिये सदा ही आन्नद और सुख हो;
आनन्द और सुख को गौ के लिये हमारी,
जन-जन तथा जगत् हित आनन्द और सुख हो।
अपने लिये सकल उत्तम ऐश्वर्य होवें,
शुभ ज्ञान और शुभ कुल अपने लिये बना हो;
हम सब जनों की स्वस्थ अरू दीर्घ आयु होवे
बहु काल सूर्य-दर्शन अपने लिये बना हो।

सूक्त ३२

मंत्र- इदं जनासो विदथ महद् ब्रह्म वदिष्यति।
न तत्पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे मनुष्यों! यह बात जान जो कि ब्रह्म के-
विषय में कुछ कह पाना एक बड़ी बात है;
उसके विषय में ठीक ठीक बताएगा वही,
जिस ब्रह्म-ज्ञानी को परम-ब्रह्म प्राप्त है।
जिससे औषधियाँ आदि बनती है प्राणवान,
वह किसी थल में निवास न बनात है;
वह पृथिवी में नहीं, द्युलोक में भी नहीं,
सब से परे है, कण-कण में समात हैं।।

मंत्र- अन्तरिक्ष आसां स्थाम श्रान्तसदामिव।
आस्थानमस्य भूतस्य विदुष्टद्वेधसो न वा।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

यह औषधि समान सब, अन्तरिक्ष रूप-
परब्रह्म में ही निज ठहराव ठानते;
इनका है यह ठहराव इस ही प्रकार,
थक कर बैठे ज्यों पड़ाव निज तानते।
ज्ञानी लोग उस पर ब्रह्म को सकल विश्व,
का आधार जानते नही भी वह जानते;
विधि औ निषेध रूप चिन्तन से ज्ञात कर
उसको बखानते हैं, उसको प्रमानते।।

मंत्र- यद्रोदसी रेजमाने भूमिश्च निरतक्षतम्।
आद्रं तदद्य सर्वदा समुद्रस्येव स्रोत्याः।।३।।

काव्यार्थ- परमेश के नियंत्रण में रह रहे सदा से,
हे सूर्य और पृथिवी! तुम काँपते रहे हो।
तुमने जो बनाया रस है, उसी के द्वारा,
सृष्टि के जन्म, स्थिति को थापते रहे हो।
वह रस उदधि प्रवाहों सम वर्तमान अब तक,
उस ही के द्वारा सिंचन के काम को गहे हो।

मंत्र- विश्वमन्यामभीवार तदन्यस्यामधि श्रितम्।
दिवे च विश्ववेदसे पृथिव्यै चाकरं नमः।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सृष्टि का कारण हुआ रस, जिसने भूलोक।
घेर लिया चहुँ ओर से, रंच न मानी रोक।।
सूर्य रश्मियों से वही रस पहुँचा द्यु लोक।
तथा पुनः भू-लोक पर लौट पड़ा बे-टोक।।
आकर्षण यह परस्पर का लख किया विचार।
अरू मैंने पर-ब्रह्म को नमन किया शत बार।।

सूक्त ३३

मंत्र- हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः।
या अग्निं गर्भं सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

अन्तरिक्ष मध्य संचार करते हैं मेघ,
धारते हैं स्वर्णिम, पवित्र शुद्ध जल को;
जिन मध्य सूर्य झाँकता सा दिखलाई देता,
जन्म दिया करते जो नभ में अनल को।
जिनका अतीव श्रेष्ठ वर्ण का सुखद जल,
गर्भ मध्य धारता है अग्नि सबल को;
ऐसा सब जग का आधार जल देवे हमें,
सुख-शान्ति अरू रोग हीनता सुफल को।।

मंत्र- यासां राजा वरूणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यंजनानाम्।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जिस जल मध्य कर्मफल दाता, न्यायकारी,
राजा परमेश्वर रहता अटल हो;
चलता वो देखता हुआ मनुष्यों के कर्म,
करते जो सत्य-असत्य प्रति पल को।
ऐसा अत्यन्त श्रेष्ठ वर्ण का सुखद जल,
गर्भ मध्य धारता है अग्नि सबल को,
वह सब जग का आधार जल देवे हमें,
सुख-शान्ति अरू रोग हीनता सुफल को।।

मंत्र- यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

द्यु लोक वासी दिव्य देव सदा भक्षते हैं,
अन्तरिक्ष मध्य संचरित मेघ दल को;
वह मेघ-दल धारा करता विभिन्न रूप,
करता भ्रमण रूकता न एक पल को।
इनका अतीव श्रेष्ठ वर्ण का सुखद जल,
गर्भ मध्य धारता है अग्नि सबल को;
ऐसा सब जग का आधार जल देवे हमें,
सुख-शान्ति अरू रोग-हीनता सुफल को।।

मंत्र- शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे।
घृतश्चुतः शुचयो माः पावकास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे दयालु जल! मुझे देखो कल्याणकर-
नेत्र द्वारा, जिससे कि प्राप्त करूँ कल को;
मुझको सुखद तन द्वारा स्पर्श करो,
जिससे कि प्राप्त करूँ स्वास्थ्य के सुफल को।

अमृत प्रदाता शुद्ध औ' पवित्र जल, मुझे-
कर दो पवित्र, करूँ किंचित न छल को;
सब जगती के हो आधार तुम, देओ हमें,
सुख-शान्ति अरू रोग-हीनता सुफल को।।

सूक्त ३४

मंत्र- इयं वीरून्मधुजाता मधुना त्वा खनामसि।
मधोरधि प्रजातासि सा नो मधुमतस्कृधि।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

मधु ऋतु बीच परमात्मा से मधु माँग,
अपने हृदय में मिठास भरती कर;
ईख नाम की हे वनस्पति तूने जन्म लिया,
मधुरता को साथ लिये इस धरती पर।
निज उपभोग हेतु, मैं मधुर भाव लिये,
तुझको उखाड़ता हूँ इस धरती पर;
अपनी ही भाँति मधुपूर्ण तू बना दे मुझे,
अंतर की सारी कटुताएँ करती सर।।

मंत्र- जिह्वया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम्।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अग्र भाग मम जिह्वा का रहे मधुरता पूर्ण।
मूल धार कर मधु करे कर्कशता को चूर्ण।।
निश्चय से मम कर्म में करे मधुरता वास।
तथा चित्त में रह, भरे जीवन में उल्लास।।

मंत्र- मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसन्दृशः।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मेरा पास आना सदा होवे रस से पूर।
तथा बने रस-पूर्ण ही मेरा जाना दूर।।
मेरी वाणी से सर्वदा झरें रसभरे बोल।
सदा मधुरता मूर्ति मैं बना रहूँ अनमोल।।

मंत्र- मधोरस्मि मधुतरो मदुधान्मधुमत्तरः। मामित्किल त्वं वनाः शाखां मधुमती मिव।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मुझमें मधु से भी अधिक संचित रहे मिठास।
अरू मोदक से भी अधिक करे मधुरता वास।।
ज्यों मधुरस युत शाख से पक्षी करते प्यार।
बस वैसे मुझ पर ही तू अपना प्यार प्रसार।

मंत्र- परि त्वा परितल्नुनेक्षुणागामविद्विषे।
यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः।।५।।

काव्यार्थ- मैं बैर छोड़ने अरू आनन्द प्राप्ति के हित,
विस्तार लिये फैली मधु ईख के समान;
अत्यन्त मधुरता से सब ओर से तुझे ही,
करता हूँ प्राप्त, तुझ पर करता बहुत गुमान;
जिससे तू मेरी कामना करने योग्य होने,
तू मुझसे नहीं बिछड़े, होकर गुणों की खान।

सूक्त ३५

मंत्र- यदाबध्दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।।१।।

काव्यार्थ- अति मूल्यवान भू पर जिसको मैं जानता हूँ,
सब सिद्धियों का दाता जिसको प्रमानता हूँ,
शत सैन्य हेतु जिसको वह बाँधते रहे हैं,
शुभकार दक्ष ज्ञानी जिनको प्रमानता हूँ,
वह ही सुवर्ण तेरे जीवन व बल के हेतु,
तेरे सुयश के हेतु, तेरी कुशल के हेतु;

शत शरद्-ऋतु निरोगी अरू स्वस्थ आयु हेतु,
बन कर तेरा हितैषी, तुझ पर मैं बाँधता हूँ।।

मंत्र- नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्येे ३ तत्।
यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

विज्ञों का सबसे प्रथम उत्पन्न ओज,
यह व्यक्ति अति ही समर्थ अति वीर है;
राक्षस, पिशाच इसको न सह पाते रंच,
ऐसा पहुँचाता उन्हें अत्यन्त पीर है।
बल की गति को अत्यन्त जो बढ़ाता ऐसा,
अति तेज पूर्ण सुवर्ण धारे यह प्रवीर है;
होकर यशस्वी चहुँ ओर करता प्रकाश,
मानवों में दीर्घ आयु पाता यह हीर है।।

मंत्र- अपां तेजो ज्योतिरोजो बलं च वनस्पतीनामुत वीर्याऽणि।
इन्द्रइवेन्द्रियाण्यधि धारयामो अस्मिन्तद्दक्षमाणो बिभरद्धिरण्यम्।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हम सब ज्ञानवान व्यक्ति इस पुरूष में,
जीवन के तेज अरू ज्योति को महा करें;
इसके ही साथ इस पुरूष में ओज बल,
वनस्पतियों की पूत शक्ति को भरा करें।
आत्मा ज्यों धारती है इन्द्रियों की शक्ति, वैसे-
वह व्यक्ति जो कि बल-वृद्धि को चहा करें;
वह अपने अभीष्ट सिद्धि हेतु सुवर्ण आदि,
नाना मूल्यवान धन धारता रहा करे।।

मंत्र- समानां मासामृतुभिष्ट्वा वयं संवत्सरस्य पयसा पिपर्मि।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

दो दो महीनों की एक एक ऋतु होती, तथा,
प्रत्येक ऋतु भिन्न शक्ति गहा करे;

मानों संवत्सर रूप की गऊ का दूध,
छः ऋतुओं के बीच होकर बहा करे।
इसको प्रदान हम पूर्ण करते हैं तुझे,
जिससे कि तू न कभी किंचित दहा करें;
प्रार्थना है वायु, अग्नि सम सभी दिव्य जन,
तेरे अनुकूल, शुभ चिन्तक रहा करें।।

द्वितीय काण्ड

सूक्त-१

मंत्र- वेनस्तत्पश्यत्परमं गुहा यद्यत्र विश्वं भवत्येकरूपम्!
इदं पृश्निरदुहज्जायमानाः स्वर्विदो अभ्यऽनूषत व्राः।।१।।
प्र तद्वोचेदमृतस्य विद्वन्गन्धर्वो धाम परमं गुहा यत्।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुष्पितासत्।।२।।
स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामध एक एव तं सम्प्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा।।३।।
परि द्यावापृथिवी सद्य आयुमुपातिष्ठे प्रथमजामृतस्य।
वाचानिव वक्तरि भुवनेष्ठा धास्यरेष नन्वेऽषो अग्निः।।४।।
परि विश्वा भुवनान्यामृतस्य तन्तुं विततं दृशेकम्।
यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनावध्यैरयन्त।।५।।

काव्यार्थ- एक उसको ही मैं पूजता हूँ, कि जो,
सर्वव्यापक, सभी में समाया हुआ।।
जिसमें सम्पूर्ण जग एक रूप बने,
निज को अंतः गुहा बीच जो टेकता;
जो परम श्रेष्ठ परमात्मा है जिसे,
भक्त साक्षात् उर बीच में देखता।
आत्म ज्ञानी सदा जिसके गुणगान में,
रहता शुभ-रीति मन को रमाया हुआ।।
गुप्त उर बीच जिसमें कि त्रिपाद हैं,
वह परमधाम अमृत का मुझमें बसे;
व्यक्ति जो संयमी, आत्मज्ञानी रहा,
वह ही शुभ रीति इसकी कथा कह सके।
जानता जो इसे, वह परम ज्ञानी है,
उसने ही भक्ति-धन को कमाया हुआ।।

एक प्रभु ही अकेला, न उससा कोई,
वह ही सबकी यथावत् दशा जानता;
वह है सबका पिता औं जनक, भाई भी,
छत्र छाया वही सब पर है तानता।
एक मात्र वही ईश है, जिसने कि-
सूत्र सम सबमें खुद को समाया हुआ।।
इस असीम द्युलोक, भूलोक में,
वर्तमान अनन्त पदार्थ सभी;
उनका विस्तृत निरीक्षण भली भाँति कर,
एक ही तत्व की बात मैंने लभी-
यह कि पहला प्रवर्तक अकेला प्रभू,
सत्य निमयों को जिसने थमाया हुआ।।
वाणी का वास वक्ता में जिस भाँति, त्यों-
वर्तमान वही सब भुवनों बीच है;
एकमात्र वही सबको है धारता,
पाल कर, पोस कर वह रहा सींच है।
काष्ठ में गुप्त अग्नि समान सदा-
गुप्त रहता है वह चमचमाया हुआ।।
सूर्य, अग्नि तथा वायु-देव सभी,
जिसके आश्रित रहें, एक सी रीति से;
जिसकी अमृत मयी शक्ति इन देवों में,
सर्वदा कार्य करती मिले प्रीति से।
एक व्यापक रहा सत्य केवल वही,
जिसने सब में स्वयं को रमाया हुआ।।

सूक्त २

मंत्र- दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्योऽविक्ष्वीड्यः।
तं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम्।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

पृथिवी व सूर्य-चन्द्र आदि दिव्य भुवनों को,
अति ही कुशलता से जो कि रहा धार है;
जगत पति अकेला एक अद्वितीय बड़ा,
जिसकी कि जग बीच महिमा अपार हैं।
स्तुति व प्रार्थना उपासना के द्वारा भक्त-
प्राप्त कर, लेते जिसे मन में बिठार हैं;
ऐसे जन-जन के उपासनीय देवता को,
नमन हमारा बार-बार, शत बार है।।

मंत्र- दिवि स्पृष्टो यजतः सूर्यत्वगवयाता हरसो दैव्यस्य।
मृडाद्वन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यःऽसुशेवाः।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जगत् को धारता जो भुवनपति है, वही-
एकमात्र स्वामी भूमि आदिक भुवन का;
सब ही को सच्चा मोद करता प्रदान वह,
अस्तु नमनीय सेवनीय है सबन का।
होता स्वर्ग-धाम में है प्राप्त यही दिव्य देव,
सकी त्वचा है यह सूरज गगन का;
प्राप्ति से हट जातीं दैवी आपदाएं सब,
अतएव यह पूजनीय जन-जन का।।

मंत्र- अनवद्याभिः समु जग्म आभिरप्सरास्वपि गन्धर्व आसीत्।
समुद्र आसां सदनं म आहुर्यतः सद्य आ च परा च यन्ति।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

इस पृथिवी व सूर्य आदि सब लोकों तथा-
वेद-वाणि धारण का काम प्रभु ने किया;
निज रूपवान शक्तियों के साथ प्राणियां में,
अरू जल आदिक में वास उसने किया।
इन शक्तियों में रह, शक्तियों के वास हेतु,

समुद्र रूप गंभीर थल उसने दिया;
शक्तियाँ ये होतीं सद्य प्रकट विलुप्त फिर,
आप्त पुरूषों ने यह मुझको बता दिया।।

मंत्र- अभ्रिये दिद्युन्नक्षत्रिये या विश्वावसुं गन्धर्वं सचध्वे।
ताभ्यो वो देवीर्नम इत्कृणोमि।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

प्रभु की अनन्त शक्ति रूपा देवियाँ, तड़ित्,
अरू नक्षत्र ज्योति बीच रहा करतीं;
जग-निर्माता, जग-धाता प्रभु के ही यह-
रहतीं आधीन, उसका ही कहा करतीं।
ऐसी देवियों! तुम्हारे वशीभूत सृष्टि निज,
उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय लहा करती;
अस्तु तुमको है निश्चय से नमन मेरा,
मम बुद्धि तुम्हारी ही भक्ति चहा करती।।

मंत्र- याः क्लन्दास्तमिषीचयोऽक्षकामा मनो मुहः।
ताभ्यो गन्धर्वपत्नीभ्योऽप्यराभ्योऽकरं नमः।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

ईश्वर की शक्तियाँ जो प्राणियों में वास कर,
उनको अपार गुण-सम्पन्न करतीं;
शिष्टों को प्रेरती जो, कामनाएँ पूर्ण करें,
श्रेष्ठ कर्मों में प्रीति उत्पन्न करतीं।
मन को अपार आश्चर्य बीच डालती जो,
उनको सदैव शान्ति-प्रपन्न करतीं;
ऐसी शुभ शक्तियों को वाणियाँ नमन और-
स्तुति के द्वारा नित ही प्रसन्न करतीं।।

सूक्त ३

मंत्र- अदो यदवधावत्यवत्कमधि पर्वतात्।
तत्ते कृणोमि भेषजं सुभेषजं यथाससि।।१।।

काव्यार्थ- पर्वत से निकल अविरल बहती हुई यह सरिता,
दुःख-दर्द तेरे सारे ही भक्षती रही है;
अपने सलिल से औषधियों को हरा भरा कर;
यह पालपोस तुझको सुरक्षती रही है।
इस ही प्रकार रक्षक, औषध का भी औषध जो,
वह ब्रह्म तेरे अन्तर में व्याप्त हो रहा है;
तव हेतु उसको उत्तम औषध बनाया मैंने,
सेवन के लिये तुझको नित प्राप्त हो रहा है।।

मंत्र- आदङ्गा कुविङ्गा शतं या भेषजानि ते।
तेषामसि त्वमुत्तममनाम्नावमरोगणम्।।२।।

काव्यार्थ- सम्पूर्ण मेरे अंगों के अंग पर-ब्रह्म,
नाना प्रकार की जो औषध बनाई तूने;
उन बीच तूने तन के सब रोगों की विनाषक,
अरू रोग-निवारक जो शक्ति तनाई तूने।
उन बीच में अत्यन्त उत्तम तथा उपयोगी,
तन और मन के हेतु बहुमूल्य तू दौलत है;
अत्यन्त ही गंभीर क्लेशों का नाशकर्ता,
आरोग्य प्रदाता तू औषधियों का औषध हे।

मंत्र- नीचैः खनन्त्यसुरा अरूम्राणमिदं महत्।
तदाम्नावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत्।।३।।

काव्यार्थ- जिस भाँति प्राण-रक्षक सद्-वैद्य बड़े श्रम से,
इस श्रेष्ठ औषध को नीचे से खोदते हैं,
इससे वह व्रण पकाकर भर देते, ठीक करते,
रोगी को सुखी करते, भर देते मोद से हैं।

वैसे ही ज्ञानियों ने जाना कि उस प्रभू ने-
सृष्टि के आदि में ही औषधियाँ रचीं ऐसी;
जो तन व मन के रोगों को ठीक किया करती,
सुख देतीं प्राणियों को बन कर महा हितैषी।

मंत्र- उपजीका उद्भरन्ति समुद्रादधि भेषजं,
तदाप्नावस्य भेषजं तदु रोगमशीशमत्।।४।।

काव्यार्थ- प्रभु पर जिसे सदा ही विश्वास रहा पक्का,
वह व्यक्ति सदा मन में उसको बिठालता है;
सारे ही जगत् में से भय भीति की निवारक,
प्रभु रूप औषधि को बाहर निकालता है।
क्लेशों में कठिनतम के औषधि प्रभू है उसको,
प्रभु की नहीं जगत् में कोई समानता है;
वह ही समस्त रोग अरू व्याधि शान्त करता,
जीवन में अपरिमित सुख, आनन्द प्रदानता है।।

मंत्र- अरूप्राणमिदं महत्पृथिव्या अध्युद्भृतम्।
तदाप्नावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत्।।५।।

काव्यार्थ- यह फोड़े को पकाकर भरता जो श्रेष्ठ औषध,
इस औषध को पृथिवी ऊपर से निकाला है;
यह घाव का है औषध, रोग विनाशा इसने,
अब व्याधि नहीं कोई, हर ओर उजाला है।
तद् भाँति ब्रह्मज्ञान भी महा क्लेश नाशक;
लोको के हर पदारथ में वर्तमान रहता,
यह भी मनुष्यों के क्लेशों का औषध है,
हरता है शोक, देता आनन्द मोद महता।।

मंत्र- शं नो भवन्त्वप ओषधयः शिवाः। इन्द्रस्य वज्रो अप हन्तु
रक्षस आराद्विसृष्टा इषवः पतन्तु रक्षसाम्।।६।।

काव्यार्थ- जल, औषधि हमें हों सुख और शान्तिकारी,
हो शस्त्र क्षत्रियों का अरिदल विनाशकारी;
राक्षस जो छोड़ते हों वाणादि शस्त्र हम पर,
वह आए नही हम तक, गिरते हों दूर भारी।

सूक्त ४

मंत्र- दीर्घायुत्वाय बृहते रणायारिष्यन्तो दक्षमाणाः सदैव।
मणिं विष्कन्धदूषणं जंङ्गिडं बिभृमो वयम्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जंगिड औषध भूमि पर मणि समान अति श्रेष्ठ।
निष्क्रियता को दूर कर करता हमें सचेष्ट।।
इसे धारते हम रहें बल-वर्द्धन के हेतु।
यह हर लेता क्षीणता, आयु दीर्घ कर देतु।।
हरे शुष्कता को, मिटे इससे शोषक रोग।
अरू निरोगता से मिले अतुल मोद का भोग।।

नोट- सायणाचार्य ने (जंगिड) वृक्ष विशेष वाराणसी में प्रसिद्ध बताया है।

मंत्र- जंगिडो जम्भाद्विशराद्विष्कन्धादभिशोचनात्।
मणिः सहस्रवीर्यः परिणः पातु विश्वतः।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मणि सम जंगिड औषध, सहस शक्तियों पूर्ण।
तन के शोषक रोग को कर देता है चूर्ण।।
तन को करता क्षीण अरू जमुहाई को लाय।।
ऐसा दुःख-दा रोग इस जंगिड से मिट जाय।।
रोग, रूदन करता मनुज, बिन कारण जिस बीच।
तथा निराशा दे उसे जंगिड देता मीच।।
ऐसा जंगिड औषध, ज्यों तम-नाशक सूर।
हमें दुःखों से दूर कर रक्षण दे भरपूर।।

मंत्र- अयं विष्कन्धं सहतऽयं बाधते अत्रिणः।
अयं नो विश्वभेषजो जंगिडः पात्वंहसः।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पृथिवी पर जितनीं उगी औषधियाँ गुणवान।
उन सबके रस से बना है जंगिड गुणखान।।
जिसमें नर बहु खात है, पर तन सूखत जाय।
ऐसे शोषक रोग को जंगिड दूर भगाय।।
भस्म रोग से यह यथा सबको लैय बचाय।
वैसे ही यह पाप से हमको लेय छुड़ाय।।

मंत्र- देवेर्दत्तेन मणिना जंगिडेन मयोमुवा।
विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जिसको विज्ञों ने दिया रोग निवारण हेतु।
वह मणि सम अति श्रेष्ठ है जंगिड सुख का सेतु।।
जंगिड का प्रयोग कर करें व्याधि से द्वन्द्व।
शोषक रोग दब चले मिले अतुल आनन्द।।
सकल रोग-जीवाणु जो बीज-भूत कहलात।
उनको भी इससे दबा, नष्ट करें उत्पात।।

मंत्र- शणश्च मा जंगिडश्च विष्कन्धादभि रक्षताम्।
अरण्यादन्य आमृतः कृष्या अन्यो रसेभ्यः।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

शण अरू जंगिड औषध मुझको सदा बचाय।
प्रबल रोग शोषक मुझे किंचित नहीं सताय।।
इनमें से एक औषध करती वन को धन्य।
खेती के उत्पन्न रस द्वारा बनती अन्य।।

मंत्र- कृत्यादूषिरयं मजिरथो अरातिदूषिः। अथो
सहस्वान् जगिडः प्र ण आयूंषि तारिषत्।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हमें बचाता नाश से यह मणि अति ही श्रेष्ठ।
शत्रुभूत बहु रोग को रखता दूर यथेष्ट।।

यह जंगिड औषध अति श्लाघनीय मणि रूप।
हमको आयुष्मान कर जीवन करे अनूप।।

सूक्त ५

मंत्र- इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शू हरिभ्याम्।
पिबा सुतस्य मतेरिह मधोश्चकानश्चारूर्मदाय।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

ऐश्वर्यवान् हे महीप! तू प्रसन्न बना,
अपना व दूसरों का करता विकास चल;
अपने दिवस रात्रि में, समस्त जीवन में,
कर तू परोपकार, भरता प्रकाश चल।
चारू स्वभावधारी राजन्! तू तृप्त हुआ,
हर्षित सभी को कर, सबकी खटास दल;
तद् हेतु प्राप्त कर सिद्धियों को, विज्ञ जन-
के निचोड़े ज्ञान रूप रस की मिठास बल।।

मंत्र- इन्द्र जठरं नव्यो न पृणस्व मधोर्दिवो न।
अस्य सुतस्य स्वर्णोप त्वा मदाः सुवाचो अगुः।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

श्लाघनीय स्वर्गीय आनन्द समान जो कि,
मन को अतीव ही प्रसन्नता प्रदानताः
जो कि विज्ञों की श्रेष्ठ वाणी से निचोड़ा गया,
जिस बीच रहती मिठास की प्रधानता।
राजन् प्रतापवान! ऐसे ज्ञान रूप मधु-
रस से तू पेट भर, हर अज्ञानता;
अरू सर्व दिशि प्रशंसायुक्त अति श्रेष्ठ-
वाणियों के द्वारा प्राप्त कर ले महानता।।

मंत्र- इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो वृत्रं यो जघान यतीर्न।
बिभेद वलं भृगुर्न ससहे शत्रुन्मदे सोमस्य।।३।।

काव्यार्थ- प्रेरक सभी के, अति ही प्रतापी राजा ने,
एक उद्यमी तथा प्रयन्त शील व्यक्ति सम;
जिस शीघ्रता से शत्रु पर चढ़ाई की तथा-
शत्रु का किया नाश बन विनाशकारी यम।
धान्यों को भूनने का काम करते व्यक्ति सम,
जिसने अरि के बल को तोड़, भून दिया था;
अरू सोम-रस के मद में हो अतीव ही मदित,
निज राज्य को अरिदल विहीन, सून किया था।।

मंत्र- आ त्वा विशन्तु सुतास इन्द्र पृणस्व कुक्षी विड्ढि शक्र धियेह्या नः।
श्रुधी हवं गिरो मे जुषस्वेन्द्र स्वयुग्भिर्मत्स्वेह महे रणाय।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

शक्तिमान राजन्! सकल श्रेष्ठ ज्ञान-रस शुद्ध,
तुझमें करे प्रवेश और कर दे तुझे प्रबुद्ध।।
यह रस दोनों कुक्षियों में भरकर भरपूर।
अपने शासन को चला बन कर नभ का सूर।।
निज बुद्धि से पास आ तू हम सबके बीच।
सुन पुकार सबकी तथा कष्ट सभी के भीच।।
वृहत् युद्ध के हेतु तू मम वाणी स्वीकार।
तथा युक्तियाँ साथ ले सिगरे शत्रु प्रजार।।
पराक्रमी, अति साहसी राजन् शक्तिमान।
शत्रु जीत कर, कर सदा आनन्द-रस का पान।।

मंत्र- इन्द्रस्थ नु पा वोचं वीर्याऽणि यानि चकार प्रथमानि वज्री।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम्।।५।।

काव्यार्थ- मैं ऐश्वर्यवान शूर के पराक्रमों-
को शीघ्र भली-भाँति सर्वदा बखानता;
करता बखान वज्रधारी के प्रथम श्रेणी,
जिन श्रेष्ठ कर्मों में रही प्रतिपल प्रधानता।

था नष्ट किया सर्प के समान व्यक्ति को,
अनुक्रम से उसके कर्म का अपमान किया था
मेघों समान अंध लिये, पर्वतों से दृढ़-
स्वभाव के खल को सदा विरान किया था।।

काव्यार्थ-- **दोहा**

क्रुद्ध शत्रु सेनाएं जों छिपी पहाड़ी मध्य।
उन्हें वीर ने व्रज से नष्ट कर दिया सद्य

मंत्र- अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष।
वाश्राइव धेनवः स्यन्दमाना अंजः समुद्रमव जग्मुरापः।।६।।

काव्यार्थ- जो शत्रु छिपा पर्वतों के बीच रहा है,
उसको तुरन्त मार दिया शूरवीर ने;
कारीगरों ने उस समय उस वीर के हाथों,
अति तीव्र-धार वज्र दिया शत्रु चीरने।
बछड़े की ओर दौड़ती रम्भाती गायें ज्यों,
वा दौड़ते समुद्र ओर जल-प्रवाह हैं;
वैसे ही उसके स्वागतार्थ सारे प्रजाजन,
तब दौड़कर गये, भरा मन से उछाह है।।

मंत्र- वृषायमाणो अवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य।
आ सायकं मघवादत्त वज्र म हन्नेनं प्रथमजामहीनाम्।।७।।

काव्यार्थ- ऐश्वर्य वान व्यक्ति के समान वीर ने,
जीवन में सोम को बड़ा स्थान दिया था;
इस रस का तीन समय और तीन थलों में,
बनने को सर्वशक्तिमान पान किया था।
इस वीर ने निज हाथ वाण रूप वज्र ले,
दुर्दान्त शत्रुओं के बीच भीति व्याप्त की;

बढ़ते हुए अरिदल के अग्रगामी वीर को,
अविलम्ब मार डाला और जीत प्राप्त की।।

सूक्त ६

मंत्र- ममास्त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्त संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या।
सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आभाहि प्रदिशश्चतस्र।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

अग्नि के समान तेजवान विद्वान तेरा,
अनुकूल ऋतुऐं विकास करती रहें,
ऋषि लोग तुझको प्रदानें दिशाबोध, तत्-
शिक्षाऐं तुझमें प्रकाश भरती रहें।
तुझको बढ़ाए तेरी सत्यधारिता सदैव,
तेरी दिव्य ज्योतियाँ प्रकाश झरती रहें;
करता रहे तू दिशि-दिशि को प्रकाशमान,
तेरी ज्योति सर्व दिशि अंध हरती रहे।।

मंत्र- सं चेध्यस्वाग्ने प्र च वर्धयेममुच्च तिष्ठ महते सौभगाय।
मा ते रिषन्नुपसत्तारो अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

अग्नि के समान तेजवान विद्वान तेरी,
ज्ञान-अग्नि तव बीच नित्य जलती रहे;
तेरी इस प्रज्जवलित ज्ञान-अग्नि से सदैव,
मानव समाज में समृद्धि पलती रहे।
तू महत् ऐश्वर्य हेतु कटिबद्ध रहे,
तेरे भक्तों को नहीं पीर तलती रहे;
ब्राह्मण यशस्वी बनें तेरी सत्संगति से,
अज्ञानियों को बहु पीर दलती रहे।।

मंत्र- त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणे भवा नः।
सपत्नहाग्ने अभिमातिजिद्भव स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन्।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

अग्नि सम तेजवान विद्वान्! वेद ज्ञानी-
ब्राह्मण समस्त निज हेतु तुझे वरते;
हे अगनि रूप! इस चयन में हम हेतु-
तू हो हितकारी, रहें शुभ में विचरते।
बन बैरियों का नाशकर्ता हे अग्नि रूप;
चल अभिमानियों पे जीत प्राप्त करते;
कर्तव्य कर्म में शिथिलता तू ला न कभी,
निज थल जाग, नही रंच चूक करते।।

मंत्र- क्षेत्रेणाग्ने स्वेन सं रभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधा यतस्व।
सजातानां मध्यमेष्ठा राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

अग्नि से ज्वलनशील विज्ञ! क्षात्र-तेज धार,
तू स्वधर्म धारणार्थ स्फूर्तिवान हो,
हे अगनि सम तेजवान विद्वान्! निज-
मित्र साथ मित्र सम व्यवहारवान हो।
अग्नि के समान ही अतीव शक्तिमान तेरा,
सजातीयों मध्य केन्द्रीय स्थान हो;
क्षत्रियों के बीच सम्मान से बुलाने योग्य-
होकर यहाँ सदैव ही प्रकाशवान हो।।

मंत्र- अति निहो अति स्निधोऽत्यचित्तीरति द्विषः।
विश्वा ह्यऽग्ने दुरिता तर त्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिंदाः।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे अगनि सम विज्ञ! दूसरों से मार पीट-
करने का भाव मन में न कभी व्याप्त कर;

नाशक प्रवृत्तियों को हम से हटा दे दूर,
पाप-वृत्तियों को पूर्ण रूप से समाप्त कर।
द्वेष-भाव रंच मात्र पास नहीं आये कभी,
मन की कलुष, नीच वृत्तियों को शाप्त कर;
हम सबको तू शूरवीर पुरूषों के साथ,
कर के अति धनाढ्य, धन पर्याप्त भर।।

सूक्त ७

मंत्र- अघद्विष्टा देवजाता वीरूच्छपथयोपनी।
आपो मलमिव प्राणैक्षीत्सर्वान्मच्छपथाँ अधि।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

औषध जिसे है घ्रणा पाप से, हटाती दूर,
देव-जन द्वारा उत्पन्न, कष्ट हरती;
तन के मिटाती रोग, मन के छुड़ाती पाप,
अपने गुणों से सबको आकृष्ट करती।
मानव जो बोलता है क्रोध भर दुष्ट बोल,
उसकी प्रवृत्ति जो समूल नष्ट करती;
जैसे जल धोता है समस्त मैल वैसे यह-
मम वाणी धोकर उसे प्रकृष्ट करती।।

मंत्र- यश्च सापत्नः शपथोजाम्याः शपथश्च यः।
ब्रह्मा यन्मन्युतः शपात्सर्वं तन्नो अद्यस्पदम्।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जो हमारे बैरियों, विरोधियों के द्वारा दिया,
घ्रणा अरू क्रोध पूर्ण, वचनों का ताप है;
जो हमारे भाई, बहनों व कुलस्त्रियों का,
हमको दिया अतीव दुःख दायी शाप है।
वेद-वेत्ता सुज्ञानी ब्राह्मण का क्रोध वश-
वचन, जो ख्याति को हमारी रहा ढाप है;

हमसें करें वे प्रेम तद् रीति जैसे पूर्व-
में रहा हमारे शुभ-कर्म का प्रताप है।।

मंत्र- दिवो मूलमवततं पृथिव्या अध्युत्तनम्।
तेन सहस्रकाण्डेन परि णः पाहि विश्वतः।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वर्षा, प्रकाश, ताप आदिक हैं मूल, तथा-
औषधियाँ उगतीं इन्हीं की कृपा-कोर से;
यह मूल द्यु-लोक से अधः पृथिवी पर,
आया अरू फैल कर बाँध लिया छोर से।
इसने ही उगाया पृथिवी पर विविध रूप,
औ सहस्र काण्ड युक्त औषध की जोर से;
यह औषध हमें निरोगी तथा स्वस्थ रखे,
रक्षा रहे करती हमारी सब ओर से।।

मंत्र- परि मां परि मे प्रजां परि णः पाहि यज्ञनम्।
अरातिर्नो मा तारीन्मा नस्तारिषुरभिमातयः।।४।।

काव्यार्थ- सब ही प्रकार से तू रक्षा मेरी सदा कर,
सन्तान की, प्रजा की रक्षा खरी सदा कर;
रक्षा सदैव ही कर, जो वित्त है हमारा,
दुष्टों को दण्ड देकर, तू दूर आपदा कर।
कंजूस अरू अदानी हमको नहीं सतावे,
अनुदार शत्रु कोई हमको नहीं दबावे;
अभिमानी, दुष्ट, दुर्जन पीड़ित करे न हमको,
तू नष्ट कर उन्हें, हम आनन्द को मनावें।।

मंत्र- शप्तारमेतु शपथो यः सुहार्त्तेन नः सह।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणीमसि।।५।।

काव्यार्थ- निन्दक हमारी कोप-ज्वाला से जला जाये,
उस शाप के प्रदाता पर शाप चला जाये;

अनुकूल हृदय वाला जो अपना हितैषी हो,
वह व्यक्ति हमारी निश्छल मित्रता को पाये।
आँखों से इशारे जो विपरीत किया करते,
जो मन अनिष्ट चिन्तन में जोड़ लिया करते;
उनको कठोर दण्ड देते सदैव ही हम,
ऐसों की पसलियाँ ही हम तोड़ दिया करते।।

सूक्त ८

मंत्र- उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके।
वि क्षेत्रियस्य मुंचतामधमं पाशमुत्तमम्।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जिस भाँति अत्यन्त ही प्रसिद्ध सूर्य चन्द्र-
द्वय नक्षत्र संसार में विराजते;
होकर उदय निज ऊपर व नीचे रहे,
वंश दोष, अंध-पाश ऊपर हैं गाजते।
नाश कर देते उसका न करते प्रकाश,
निज कर्तव्य कर्म से न कभी भाजते;
तद् रीति हम भी विनाशे रोग रूप अंध,
जिससे कि सब ऐश्वर्य रहें साजते।।

मंत्र- अपेयं रात्र्युच्छत्वपोच्छन्त्वभिकृत्वरीः।
वीरुत्क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

इस रात्रि का गमन होवे, इसके ही साथ,
हिंसाशील वासनाओं का भी प्रस्थान हो;
जैसे औषधि से तन रोग नष्ट होता, वैसे-
मन रोग का भी निज पास में निदान हो।
हम व्यक्तिगत अरू वंश के अज्ञान रूप,
रोग का निदान करे अति सावधान हो;

तद् हेतु ज्ञान के प्रकाश रूप औषधि का,
सेवन करें व लभें आनन्द महान् को।।

मंत्र- बभ्रोरर्जुनकाण्डस्य यवस्य ते पलाल्या तिलस्य तिलपिन्ज्या।
वीरुत्क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

प्रभुवर! जैसे तेरा भूरा श्वेत स्तम्भ-
वाला नव यव अन्न, रक्षण व त्राण को;
अरू तिल की जो तिल-मन्जरी तेरी है शुभ,
इन द्वय से बनायी औषधि है पान को।
नाश करती है वह रोग आनुवांशिक औ-
तन रोग नाश, किया करती विहान को,
उस ही प्रकार हम श्रेष्ठ ज्ञान द्वारा हनें-
आत्मिक दोष, लमें आनन्द महान को।।

मंत्र- नमस्ते लाङ्गलेभ्यो नम ईषायुगेभ्यः।
वीरुत्क्षेत्रियनाशन्याय क्षेत्रियमुच्छतु।।४।।

काव्यार्थ- तुझको नमस्ते करते प्रभुवर हमारे भर्ता,
तू कर्षकों के हल को दृढ़ता प्रदान करता;
तुझको नमन तू हल की लकड़ी सुदृढ़ किये है,
कर्षक अनाज हेतु तेरा बखान करता।

मंत्र- नमः सनिम्नसाक्षेभ्यो नमः सन्देश्येऽभ्यः।
नमः क्षेत्रस्य पतये वीरुत्क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु।।५।।

काव्यार्थ- असहाय, दीन-दुःखियों के हेतु अन्न होवे,
उद्योगी, दानशीलों के हेतु अन्न होवे;
खेतों में अन्न उपजाता जो सभी के हेतु,
उपकारी उस कृषक के घर हेतु अन्न होवे।

दोहा

जो शरीर अरू वंश का करती रोगोपचार।
वह औषधि तत् रोग को नाश करे उपकार।।

सूक्त ६

मंत्र- दशवृक्ष मुन्चेमं रक्षसो ग्राह्या अधि यैनं जग्राह पर्वसु।
अथो एवं वनस्पते जीवानां लोकमुन्नय।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

दस भाँति भाँति की वनस्पतियों से बनी,
गठिया रोग नाशक हे औषधि सुहावनी;
तू इस पुरूष का मिटा दे गठिया का रोग,
यह देता बहु पीर राक्षसी डरावनी।
यह रोग पकड़े हुए है इस पुरूष के-
सब जोड़, जिनमें है पीर जान खावनी;
इसको हे औषधे! निरोगी बना, तत् ख्याति-
जीवधारियों के जग बीच रख बावनी।।

मंत्र- आगादुदगादयं जीवानां व्रातमप्यगात्।
अभूदु पुत्राणां पिता नृणा च भगवत्तमः।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जीवित कहाता जन्म धार जग बीच वही,
जो कि पुरूषार्थी, निरोगी बन रहता;
सम्मिलित हुआ है उन में ही वह व्यक्ति, कर-
प्राप्त पुरूषारथ, निरोगी तन महता।
आन पहुँचा है इस उन्नत दशा में यह,
कठिनाई लख, अविलम्ब तन, दहता;
अब यह महत् प्रताप धार, प्रजा पाल,
भाग्यवान बन, वैभवों में मन बहता।।

मंत्र- अधीतीरध्यगादयमधि जीवपुरा अगन्।
शतं ह्यस्य भिषजः सहस्रमुत वीरूधः।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

यह गठिया का रोग, है असाध्य रोग नहीं,
हैं सहस्र औषधियाँ जो कि रोग नाशतीं;

सैकड़ों हैं वैद्य जो कि व्यक्ति का मिटाते रोग,
मन बीच फिर से उमंग है हुलासती।
प्राप्त करता है वह सब ही, समर्थ बन,
गठिया उसे न अब रंच मात्र डासती;
चाहता जो जीव सम्पन्न बनने के लिये,
वह सम्पूर्ण उस पास है निवासती।।

मंत्र- देवास्ते चीतिमविदन्ब्रह्मण उत वीरूधः।
चीतिं ते विश्वे देवा अविदन्भूम्यामधि।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

विविध वनस्पतियाँ यहाँ पृथिवी पर उपलब्ध।
जो गठिया के रोग को कर देती हैं दग्ध।।
वैद्य ब्रह्मज्ञानी सकल दिव्य गुणों से युक्त।
उनसे औषधि को बना, करें रोग से मुक्त।।
उन्हें ज्ञात किस मात्रा में औषधि दी जाय।
अरू रोगी कब, किस विधि उसकी औषधि खाय।।

मंत्र- यश्चकार स निष्करत्स एव सुभिषक्तमः।
स एव तुभ्यं भेषजानि कृणवद्भिषजा शुचिः।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

करता जो वैद्य गुणी गठिया रोगोपचार।
वही रोग निस्तार कर, करे महत् उपकार।।
बारम्बार चिकित्सा से बन सच्चा वैद्य।
रोग मिटाकर जड़ सहित, पाता है नैवेद्य।।
अति पावन वह वैद्य लेकर अन्यों से राय।
औषधि निश्चित कर तेरी, तेरा रोग भगाय।।

सूक्त १०

मंत्र- क्षेत्रियात्त्वा निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुंचामि वरूणस्य पाशात्।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम्।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

तेरे आनुवंशिक व तन के विविध रोग,
औ विपत्ति आदि, रखते जो तुझे डरते;
मूर्खों के दुष्ट आचरण जन्य, द्रोह जन्य-
कष्ट, रखते जो तुझे दुःख में विचरते।
इनसे व वरूण के पाश से छुड़ाता तुझे,
वेद-ज्ञान द्वारा मैं बचाता तुझे मरते;
इस विधि करता हूँ तुझको पवित्र, तेरा-
पृथिवी आकाश रहें कल्याण करते।।

नोट- वरूण-दुष्टों, दुष्कर्मियों को दण्ड देने वाला न्यायाधीश परमेश्वर।

मंत्र- शं ते अग्निः सहादिभ्रस्तु शं सोमः सहौषधीभिः।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुंचामि वरूणस्य पाशात्।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम्।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

तेरे आनुवांशिक व तन के विविध रोग,
अरू मूर्खो के कर्म जो कि तुझे करते;
इनसे व वरूण के पाश से छुड़ाता तुझे,
वेद-ज्ञान द्वारा मैं बचाता तुझे मरते।
तेरे लिये अग्नि साथ जल सुखदायी होवे,
औषधि व सोम रखें सुख बीच तरते;
होवे तू सदैव ही पवित्र, शुभ-कर्मी, तेरा-
पृथिवी आकाश रहें कल्याण करते।।

मंत्र- शं ते वातो अन्तरिक्षे वयो धाच्छं ते भवन्तु प्रतिदशश्चतस्रः।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुंचामि वरूणस्य पाशात्।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम्।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

तेरे आनुवंशिक व तन के विविध रोग,
अरू मूर्खों के कर्म जो कि तुझे क्षरते;

इनसे व वरूण के पाश से छुड़ाता तुझे,
वेद-ज्ञान द्वारा मैं बचाता तुझे मरते।
तेरे लिये नभ और चतुर्दिऐं सदा,
होवें कल्याण कर, सुख झार झरते;
होवे तू सदैव ही पवित्र, शुभकर्मी, तेरा-
पृथिवी, आकाश रहें कल्याण करते।।

मंत्र- इमा या देवीः प्रदिशश्चतस्रः वातपत्नीरमि सूर्यो विचष्टे।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुंजामि वरूणस्य पाशात्।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम्।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

दिव्य वायुमण्डल से रक्षित चतुर्दिशाओ-
को ज्यों सूर्य रक्षता सदैव ही विचरते;
वैसे तेरे आनुवंशिक अरू तन-रोग,
अरू मूर्खों के कर्म जो कि तुझे झरते।
इनसे व वरूण के पाश से छुड़ाता तुझे,
वेद-ज्ञान द्वारा मैं बचाता तुझे मरते;
इस विधि करता हूँ तुझको पवित्र, तेरा-
पृथिवी आकाश रहें कल्याण करते।।

मंत्र- तासुत्वान्तर्जरस्यादधामि प्र यक्ष्म एतु निऋतिः पराचैः।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुंचामि वरूणस्य पाशात्।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम्।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

तेरे आनुवंशिक व तन के विविध रोग,
अरू मूर्खों के कर्म जो कि तुझे करते;
इनसे व वरूण के पाश से छुड़ाता तुझे,
वेद-ज्ञान द्वारा मैं बचाता तुझे मरते।

तुझको मैं धारता हूँ दीर्घ आयु पर्यन्त,
औंधे मुँह भागते समस्त रोग डरते;
इस विधि करता हूँ तुझको पवित्र, तेरा-
पृथिवी आकाश रहें कल्याण करते।।

मंत्र- अमुक्था यक्ष्माहुरितादवद्याद् द्रुहः पाशाद् ग्राह्या-श्चोदमुक्थाः।
एवाहं त्वा क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुन्जामि वरूणस्य पाशात्।
अनागसं ब्रह्मणात्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम्।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

तेरे आनुवंशिक व तन के विविध रोग,
अरू मूर्खो के कर्म जो कि तुझे क्षरते;
इनसे व वरूण के पाश से छुड़ाता तुझे,
वेद-ज्ञान द्वारा मैं बचाता तुझे मरते।
छूट गया तेरा क्षय, दुर्गति, निंद्य-कर्म,
द्रोह-पाश, संधिवात दूर भगे डरते;
वेद-ज्ञान द्वारा हो गया है तू पवित्र, तेरा-
पृथिवी, आकाश रहें कल्याण करते।।

मंत्र- अहा अरातिमविदः स्योनमप्यभूभद्रे सुकृतस्य लोके।
एवाहंत्वा क्षेत्रियान्नि़र्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुंजामि वरूणस्य पाशात्।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम्।।७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

तेरे आनुवंशिक व तन के विविध रोग,
अरू मूर्खों के कर्म जो कि तुझे झरते;
इनसे व वरूण के पाश से छुड़ाता तुझे,
वेद-ज्ञान द्वारा मैं बचाता तुझे मरते।
बैर छोड़, हर्ष लभ, और भी आनन्द पूर्ण-
सुकृत में भद्र लोक आ गया विचरते;
वेद-ज्ञान द्वारा हो गया है तू पवित्र, तेरा-
पृथिवी, आकाश रहें कल्याण करते।।

मंत्र- सूर्यमद्य तमसो ग्राह्या अधि देवा मुन्वन्तो असृजन्नि रेणसः।
एवाहं त्वा क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुंचामि।।
वरूणस्य पाशात्। अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते
द्यावापृथिवी उभे स्ताम्।।८।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

दिव्य शक्ति ने प्रभू की, सत्य स्वरूपी सूर्य-
जैसे प्रकटा है; पाप, अंध मुक्त करते;
वैसे तेरे वंशगत और तन बीच रोग,
अरू मूर्खो के कर्म जो कि तुझे क्षरते।
इनसे व वरूण के पाश से छुड़ाता तुझे
वेद-ज्ञान द्वारा मैं बचाता तुझे मरते;
होवे तू सदैव ही पवित्र, शुभकर्मी, तेरा-
पृथिवी, आकाश रहें कल्याण करते।।

सूक्त ११

मंत्र- दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मेनिरसि।
आप्तुहि श्रेयांसमति समं क्राम।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे मनुष्य! सर्वशक्तिमान् प्रभु की कृपा से,
तू अतीव गुणवान और बलकार है;
दोषों का तू दूषित करन हार नाम वाला,
हथियारों का तू तेज़ धार हथियार है।
वज्र का तू वज्र है, खलों का नाशकर्ता है,
सर्व दिशि करता सदैव उजियार है;
अस्तु उस व्यक्ति से तू अविराम अग्र बढ़,
जिसका कि तेरे ही समान विस्तार है।।

मंत्र- स्रक्त्योऽसि प्रतिसरोऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम।।२।।

काव्यार्थ- पैरों में गति है, प्रत्यक्ष गतिगामी है तू,
तू कुचाल नाशने को धारता कमान है;
निज से अधिक गुणवान को प्राप्त कर,
आगे बढ़ उससे जो तेरे ही समान है।

मंत्र- प्रति तमभि चर योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम।।३।।

काव्यार्थ- जिससे हमें है द्वेष, हमसे जो द्वेष करे,
दण्ड उसको दे, धार तीर औ कमान को;
निज से अधिक गुणवान को तू प्राप्त कर;
आगे बढ़ उससे जो तेरे ही समान हो।

मंत्र- सूरिरसि वर्चोधा असि तनूपानोऽसि। आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम।।४।।

काव्यार्थ- तू है ज्ञानी, तेजधारी, सबके शरीरों को तू-
रक्षता है जैसे प्राणदायी पवमान हो;
निज से अधिक गुणवान को तू प्राप्त कर,
आगे बढ़ उससे जो तेरे ही समान हो।

मंत्र- शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वक्षरसि ज्योति रसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम।।५।।

काव्यार्थ- आत्मशक्ति-पूर्ण, शुद्ध, वीर्यवान है,
तेजः स्वरूप तू अति प्रकाशमान है;
निज से अधिक गुणवान को तू प्राप्त कर,
आगे बढ़ उससे जो तेरे ही समान है।

सूक्त १२

मंत्र- द्यावापृथिवी उर्वऽन्तरिक्षं श्रेत्रस्य पत्युरूगायोऽद्भुतः।
उतान्तरिक्षमुरू वातगोपं त इह तप्यन्तां मयि तप्यमाने।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

द्यु, पृथिवी, आकाश, सकल दिशाऐं तथा-
वृष्टि जो व्यस्त क्षेत्र रक्षण में, त्राण में;
अद्भुत, स्तुत्य-परमेश अरू प्राण,
रक्षित सदैव रहा जो कि पवमान में।
यह सब देव यहाँ मेरे इस जन्म में ही,
मेरी इस भावना को, चाहना को कान दें,
मुझ ब्रह्मचर्य आदि नियमों के पालते को,
अरू तप करते को ऐश्वर्य दान दें।।

मंत्र- इदं देवाः श्रृणुत ये यज्ञिया स्थ भरद्वाजो मह्यमुक्थानि शंसति।
पाशे से बद्धो दुरिते नि युज्यतां यो अस्मांक मन इदं हिनास्ति।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सर्वशक्तिमान्, सर्वपोषक प्रभु ने, वेद-
ज्ञान द्वारा सबको ये आज्ञा प्रदान की;
हे समस्त दिव्य-गुणी सत्कार योग्य विज्ञ,
आप सुनें आज्ञा ये प्रभुवर महान् की।
जो मनुष्य सन्मार्ग में लगा हमारा मन-
विकृत करे व करे बात अज्ञान की;
उसको कठोर दण्ड देवें, नियमों में रखें,
प्रत्येक चाल उस दुर्गुण-खान की।।

मंत्र- इदामिन्द्र श्रृणुहि सोमय यत्त्वा हृदा शोचता जोहवीमि।
वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षं यो अस्मांक मन इदं हिनस्ति।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सोमपायी, सोमरक्षक हे जगत् नाथ,
सुन तू विनय एक भगत अयान की;
शोकपूर्ण हृदय से तुझको पुकारता हूँ,

सुनता हूँ तूने सबकी ही बात कान की।
दुष्ट जो मनुष्य सन्मार्ग लगा मेरा मन,
विकृत करे व करे बात अज्ञान की;
उसको कुठारी द्वारा वृक्ष काटने की भाँति,
काट कर राह दिखला दूँ शमशान की।।

मंत्र- अशीतिभिस्तिसृभिः सामगेभिरादित्येभिर्वं सुभिरंगिरोभिः।
इष्टापूर्तमवतु नः पितृणामांमु ददे हरसा दैव्येन।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

ईश्वर, जीव औ प्रकृति तीन व्याप्तियों से,
जो कि ब्रह्म-दिव्य का गान किया करते
अरू जो महात्मा प्रशस्त गुण वाले बन,
दीप्तियों को धार जग बीच जिया करते।
उन पितु सम उपकारियों के पुण्य कर्म,
मम हेतु रहें रक्षालु हिया करते;
दुष्ट जो हमारा मन निबल बनाते, उन्हें
दिव्य बल यम को प्रदान किया करते।।

मंत्र- द्यावापृथिवी अनु मा दीधीथां विश्वे देवासो अनु मा रमध्वम्।
अङ्गिरसः पितरः सोभ्यासः पापमार्छत्वपकामस्य कर्ता।।५।।

काव्यार्थ- हे सूर्य और पृथिवी! बनिये कुपालु मुझ पर,
मेरे लिये भली विधि करते प्रकाश रहिये;
हे सर्व-देव! आप भी कीजिये अनुग्रह,
बन कर्मशील, मुझको देते प्रभास रहिये।
हे अङ्गिरस! अतीव ज्ञानी महान् पुरूषों!
रक्षक दयालु पितरों! करिये कृपा के साए;
हे सौम्य मधुर गुण के विद्वानों! मेरा जो भी-
करता अनिष्ट होवे, वह कष्ट महा पाए।।

मंत्र- अतीव यो मरूतो मन्यते नो ब्रह्म वा यो निन्दिषत्क्रियमाणम्।
तंपूषि तस्मै वृर्जिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषं द्यौरभिसन्तपाति।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जब निज को बड़ा समझ, दर्प धार कोई,
वेद-ज्ञान को हमारे निन्दनीय ज्ञाप दे;
तब शत्रुओं को मार देने वाले वीरों आप,
हम बीच निज कर्म, निज शक्ति व्याप दें।
तत् पाप-कर्म बने ताप का प्रदाता उसे,
आप उसे घोरतम दण्ड रूप शाप दें;
वेद के विरोधी उस व्यक्ति को दीप्तिवान-
प्रभु बहु भाँति से असह्य संताप दें।।

मंत्र- सप्तप्राणानष्टौ मन्यस्तांस्ते वृश्चामि ब्रह्मणा।
अया यमस्य सादनमग्निदूतों अरङ्.कृतः।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

दुराचारी शत्रु! तेरे नथने दो, कान दो, व-
आँख दो व मुख एक, यह सात प्राण हैं;
इनको व आठ नाड़ियों को वेद-नीति द्वारा-
तोड़ तुझे दण्ड देता, रंच नहीं त्राण है।
फलरूप अन्य पुरूष कभी दुष्कर्म-
करने न पाएं, देख प्रत्यक्ष खाड़ है;
अब तू अग्नि-दूत साथ शीघ्रता को धार,
मृत्यु द्वार आया, दिया सब छोड़ छाड़ है।।

मंत्र- आ दधामि ते पदं समिद्धे जातवेदसि।
अग्निः शरीरं वेवेष्टवसुं वागपि गच्छतु।।८।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

राज-दण्ड और रूद्र रूप प्रभु के नियम,
जैसे पाप नाश हेतु अग्नि विशेष हो;
पाप लिप्त नर! तुझको मैं सौंपता हूँ द्रुत,
अति पीर दायी इस अग्नि प्रदेश को।

यह अग्नि तुझको अतीव संतप्त करे,
अरू तेरे साथ तेरा पाप भी अशेष हो;
तेरी पर-पीर-दाता अरू विष पूर्ण वाणी-
का भी अविलम्ब निज प्राण में प्रवेश हो।।

सूक्त १३

मंत्र- आयुर्दा अग्ने जरसं वृणानो घृतप्रतीको घृतपृष्ठो अग्ने।
घृतं पीत्वा मधु चारू गव्यं पितेव पुत्रनभि रक्षतादिमम्।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जैसे अग्नि करता है उपकार, जब हम-
उसमें हवि व शुद्ध गौ-घृत को डारते;
वैसे प्रभु वेद-ज्ञान, बुद्धि, अन्न आदिक के
दानी मनुजों पे उपकार विस्तारते।
प्रभुवर तेजवान, जीवन प्रदाता आप,
स्तुतियाँ सुनते सभी की, स्वीकारते;
प्रार्थना है पुत्र हेतु पितु सम रहियेगा,
इस ब्रह्मचारी पर रक्षणा प्रसारते।।

मंत्र- परि धन धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः।
बृहस्पतिः प्रायच्छद्वास एतत्सोमाय राज्ञे परिधातवा उ।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

विद्वानों! विद्या पूर्ण कर चुकने के बाद,
आप इस ब्रह्मचारी हेतु सम्मान दें;
वस्त्र आदि द्वारा इसको बनाऐं शोभनीय,
तेज अरू अन्न द्वारा पृष्टियों को तान दें।
इसको बनाये दीर्घ आयु, मात्र जरावस्था-
बाद इसे परलोक, मध्य स्थान दें;
यह वस्त्र, इस सूर्य सम ऐश्वर्यवान,
को प्रदाना कुल-गुरू ने, समस्त ज्ञान दे।।

मंत्र- परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्गृष्टीनाभभिशस्तिया-
उ शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

ब्रह्मचारी! अपने जन-कल्याण हेतु,
यह प्रदत्त अंग वस्त्र धार, अति प्रीति से;
निश्चय ही गाय आदि जो हैं उपकारी जीव,
तू ही उन्हें रक्षता है मृत्यु भय भीति से।
कामना है सौ शरद ऋतु पर्यन्त रहे,
जीवित तू ब्रह्मचर्य-पालन की रीति से;
धन रूप ताना अरू पोषण को बाना कर,
शुभ कर्म रूप वस्त्र बुन शुभ रीति से।।

मंत्र- एह्यश्मानमा तिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः।
कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम्।।४।।

काव्यार्थ- हे ब्रह्मचारी! तू यहाँ ब्रह्मचर्य आश्रम,
में कर प्रवेश ब्रह्मचर्य धर्म के लिये;
तू इस शिला पर चढ़ अतीव दृढ़ प्रतिज्ञ हो,
जीवन को तपाने, कठोर कर्म के लिये।
यम औं नियम पालन तथा व्यायाम आदि सब,
पत्थर समान तेरे सुदृढ़ तन को तनाएँ,
सब दिव्य पुरूष और दिव्य-वस्तुएं तेरी,
सौ शरद ऋतुओं की सुदीर्घ आयु बनाऐं।

मंत्र- यस्य ते वासः प्रथमवास्यंग्रहरामस्तं त्वा विश्वेऽवन्तु देवाः।
तं त्वा भ्रातरः सुवृधा वर्धमानमनु जायन्तां बहवः सुजातम्।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

तुझको प्रधानता से धारने के योग्य वस्त्र,
हम विद्वान् तुझे धारण करा रहे;

ऐसे सम्मान प्राप्त ब्रह्मचारी तव हेतु,
दिव्य गुणी विज्ञों का रक्षण खरा रहे।
वर्धमान ब्रह्मचारी तेरे बाद तेरा कुल,
तब सम गुणी भ्रातृ-गण से भरा रहे;
वह संसार में अपार यश प्राप्त करें,
तेरा कुल वृद्धियों से सर्वदा हरा रहे।।

सूक्त १४

मंत्र- निः सालां घृष्णुं धिषणमेकवाद्यां जिघत्स्वम्।
सर्वाश्चण्डस्य नप्त्यो नाशयामः सदान्वाः।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

राक्षसी प्रवृत्तियों से घेरती विपत्ति हमें,
यह घर-बार को छुड़ाती, भय जनती;
मन बीच सन्देह का कराती वास, अरू-
निश्चयात्मक बुद्धि पूर्ण रूप हनती।
पूर्णरूप से समाप्त करती है आत्मबोध,
क्रोध आदि भावनाऐं मन बीच तनती;
नाशक प्रवृत्ति हन, इनसे छुडाऐं पिण्ड,
इस ही से सुख मिलता है, बात बनती।।

मंत्र- निर्वो गोष्ठादजामसि निरक्षन्निरूपानसात्।
निर्वो मगुन्धा बुहितरो दुहेभ्यश्चातयामहे।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जैसे मात-पिता पुत्रियों का करके विवाह,
अपने से उनको सदैव दूर करते;
वैसे ही विपत्तियों! तुम्हें न रख पास, हम-
दूर रखने का ही प्रयत्न पूर करते।
तुम्हें गऊ शाला, अन्न भण्डार अरू धान्य-

वाहन से पूर्णतः निकाल चूर करते,
निज घर, दृष्टि, वृत्ति से निकालते हैं, जैसे-
तम दूर करने का काम सूर करते।।

मंत्र- असौ यो अधराद् गृहस्तत्र सन्त्वराय्यः।
तत्र सेदिर्न्युच्यतु सर्वाश्च यातुधान्यः।।३।।

काव्यार्थ- यह नीच वृत्ति बालों का घराना जो यहाँ,
निर्धनता भरी सब विपत्तियाँ वहाँ रहें;
उस थल ही महामारी आदि क्लेश जा बसें,
सब दुष्ट-व्यक्तियों की वहाँ ही ठहाँ रहे।

मंत्र- भूतपतिर्निरजत्विन्द्रश्चेतः सदान्वाः।
गृहस्य बुध्न आसीनास्ता इन्द्रो वज्रणाधि तिष्ठतु।।४।।

काव्यार्थ- राजा प्रजारक्षक, समस्त दुष्प्रवृत्तियाँ,
दे दूर भगा अपनी प्रशासन की शक्ति से;
गृह मूल वासिनी समस्त दुष्टताओं को,
वह ऐश्वर्यवान् वज्र से विरक्ति दे।

मंत्र- यदि स्थ क्षेत्रियाणां यदि वा पुरूषेषिताः।
यदि स्थ दस्युभ्यो जाता नश्यतेतः सदान्वा।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

मानव को व्याकुलता दायी दुष्ट पीर क्लेश,
दस्यु-दल बीच में तुम्हारा भी शुमार है;
यदि तुम्हारा अनुवंश रोग से है जन्म,
यदि मानवीय प्रेरणा जनित उभार है।
यदि डाकुओं से उत्पत्ति तुम्हारी है हुई,
यदि तत् दत्त तलवार ये दुधार है;
तो तुम यहाँ से हट जाओ अविलम्ब, तुम्हें-
नष्ट करने को मेरे हाथ में कुठार है।।

मंत्र- परि धामान्यासामाशुर्गाष्ठामिवासरम्।
अजैषं सर्वानाजीन्वो नश्यतेतः सदान्वाः।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जैसे शीघ्रग्रामी एक घोड़ा तीव्र चाल चल,
अविलम्ब जाता गन्तव्य स्थान पर;
उस ही प्रकार मूल कारण विपत्तियों का,
जान चुके शीघ्र सब पूर्वज सुजान नर।
शूरवीर पुरूष समान हे विपत्ति! मैंने,
जीत लिये तब सब संग्राम ध्यान कर;
इस हेतु इस ठौर रूकना तेरा है व्यर्थ,
भाग तू यहाँ से, अन्यत्र ही प्रयाण कर।।

सूक्त १५

मंत्र- यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः।।१।।
मंत्र- यथा द्वश्च रात्री च न बिभी तो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः।।२।।
मंत्र- यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभी तो न रिषयतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः।।३।।
मंत्र- यथा ब्रह्म च क्षत्रं च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः।।५।।
मंत्र- यथा सत्यं चानृतं च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा में प्राण मा बिभे।।६।।
मंत्र- यथा भूतं च भव्यं च न विभीतो न रिष्यतः
एवा मे प्राण मा बिभेः।।७।।

काव्यार्थ- जो निडर रहता, करता परोपकार है,
उसका संसार में नाश होता नहीं।।
जैसे द्यौ और पृथिवी, न दुःख देते हैं,

अरू किसी से, कहीं भी न डरते कभी;
वैसे ही हे मेरे प्राण, तू भी न डर,
नित रहे तेरी सुख-दान करते छवि।
जैसे दिन-रात सुख देते, डरते नहीं,
वैसे तू प्राण कर, रह न थोथा कभी।।
जैसे रवि और शशि, दुःख न देते कभी,
अरू किसी से कहीं भी न डरते कभी;
वैसे ही हे मेरे प्राण तू भी न डर,
नित रहे, तेरी सुख-दान करते छवि।
जैसे ब्राह्मण व क्षत्रिय सुखद औ निडर,
वैसे तू प्राण हो, रह न रोता कभी।।
जैसे सत्य-असत्य, न दुःख देते हैं,
अरू किसी से कहीं भी न डरते कभी;
वैसे ही हे मेरे प्राण तू भी न डर,
नित रहे तेरी सुख-दान करते छवि।
जैसे भूत और भविष्य, सुखद औ निडर,
वैसे तू प्राण हो, रह न होता कभी।।

सूक्त १६

मंत्र- प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा।।१।।
मंत्र- द्यावा पृथिवी उपश्रुत्या मा पातं स्वाहा।।२।।
मंत्र- सूर्य चक्षुसा मा पाहि स्वाहा।।३।।
मंत्र- अग्ने वैश्वानर विश्वैर्मा देवैः पाहि स्वाहा।।४।।
मंत्र- विश्वम्भर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे अपान अरू प्राण! तुम जीवन रक्षक दोय।
मुझे बचाओ मृत्यु से यह शुभ वाणी होय।।

हे पृथिवी आकाश! तुम सकल दिशाओं साथ।
श्रवण शक्ति मम रक्षिये यह होवे शुभ गाथ।।
हे सूर्य! शुभ दृष्टि के रक्षा करिये मोय।।
स्थिर दर्शन-दृष्टि दो रक्षा करिये मोय।
स्थित दर्शन-दृष्टि दो यह वाणी शुभ होय।।
अग्नि! सभी को गति प्रदाता, मुझको आच्छाद।
अरू देवों संग रक्ष, यह दो शुभ आशीर्वाद।
सर्व-पोषक हे प्रभो! पोषक शक्ति साथ।
मुझे सदा ही रक्ष तू, यह होवे शुभ गाथ।।

मंत्र- ओजोऽस्योजो मे दाः स्वाहा।।१।।
मंत्र- सहोऽसि सहो मे दाः स्वाहा।।२।।
मंत्र- बलमसि बलं मे दाः स्वाहा।।३।।
मंत्र- आयुरस्यायुर्मे दाः स्वाहा।।४।।
मंत्र- श्रोत्रमसि श्रोत्रं मे दाः स्वाहा।।५।।
मंत्र- परियाणमसि परिपाणं मे दाः स्वाहा।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे ईश्वर तू ओज है, मुझे ओज कर दान।
यह शुभ आशीर्वाद हो, करता मोद प्रदान।।
प्रभु! विक्रम स्वरूप तू, बना पराक्रम पूर्ण।
यह शुभ आशीर्वाद हो, मुझे दान कर तूर्ण।।
बल स्वरूप जगदीश तू, बहुबल कर प्रदान।
यह शुभ आशीर्वाद हो, बने मोद-दा तान।।
प्रभु तू जीवन शक्ति है, भर दे जीवन शक्ति।
यह शुभ आशीर्वाद हो, तेरे प्रति अनुरक्ति।।
श्रवण-शक्ति है ईश तू, श्रवण शक्ति कर दान
यह शुभ आशीर्वाद हो, जीवन की मुस्कान।।
प्रभु तू दर्शन शक्ति है, दे दर्शन की शक्ति।

यह शुभ आशीर्वाद हो, तेरे प्रति अनुरक्ति।
प्रभु! परिपालन शक्ति तू, दे परिपालन शक्ति।
यह शुभ आशीर्वाद हो, तेरे प्रति अनुरक्ति।

सूक्त १८

मंत्र- भ्रातृव्यक्षणमसि भ्रातृव्यचातनं मे दाः स्वाहा।।१।।
मंत्र- सपत्नक्षयणमसि सपत्नचातनं मे दाः स्वाहा।।२।।
मंत्र- अरायक्षयणमस्यारायचातनं मे दाः स्वाहा।।३।।
मंत्र- पिशाचक्षयण्मसि पिशाचचातनं मे दाः स्वाहा।।४।।
मंत्र- सदानवाक्षयणमसि सदान्वाचातनं मे दाः स्वाहा।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जो भीतर से दुष्ट है, बाहर भ्रात समान।
उनकी नाशन शक्ति तू, रखता है भगवान।।
दुष्ट-दलन की शक्ति से मुझको तू आच्छाद।
यही शक्ति मुझको बने, सुन्दर आशीर्वाद।।
प्रकट शत्रुओं की विनाशक शक्ति तू ईश।
मुझको भी यह शक्ति दे, यही सुखद आशीष।।
निर्धनता के नाश की शक्ति तू भगवान।
मुझको यह शक्ति दिला, होने कथन महान्।।
माँस-भक्षकों हित हनन शक्ति तू अधिकात।
मुझको भी यह शक्ति दे, क्या है सुन्दर बात।।
असुर वृत्तियों की हनन शक्ति तुझमें ईश।
मुझको भी यह शक्ति दे, यही सुखद आशीष।।

मंत्र- अग्ने यत्ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।।१।।

काव्यार्थ- हे अग्नि! तपाने की जो शक्ति लिये है तू,
उससे तू दोष हनता, शुद्धि प्रकृष्ट भरता;
इस शक्ति के ही द्वारा हे अग्नि तपा उसको,

हम जिससे द्वेष करते, जो हमसे द्वेष करता।

मंत्र- अग्ने यत्ते हरस्तेनं तं प्रति हर योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।।२।।

काव्यार्थ- हे अग्नि! दोष नाशन की शक्ति लिये है तू,
उससे तू दोष क्षरता, शुद्वि प्रकृष्ट भरता;
उसके ही द्वारा अग्नि! तू नष्ट कर दे उसको,
हम जिससे द्वेष करते, जो हमसे द्वेष करता।

मंत्र- अग्ने यत्तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।।३।।

काव्यार्थ- हे अग्नि! तू जो दीपन की शक्ति धारता है,
उससे प्रदीप्त होकर तू दोष सभी हरता;
उस शक्ति के ही द्वारा, उस पर प्रदीप्त हो तू,
हम जिससे द्वेष करते, जो हमसे द्वेष करता।

मंत्र- अग्ने यत्ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽस्मान्दूष्टि यं वयं द्विष्मः।।४।।

काव्यार्थ- हे अग्नि! शुद्ध करने की शक्ति धारता तू,
उस शक्ति द्वारा सबमें शुद्धि अशेष भरता;
उस शक्ति द्वारा उसको अविलम्ब शुद्ध कर तू,
हम जिससे द्वेष करते, जो हमसे द्वेष करता।

मंत्र- अग्ने यत्ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽस्मान्द्वेक्ष्टि यं वयं द्विष्म।।५।।

काव्यार्थ- हे अग्नि! तेरे अन्दर जो तेज समाया है,
तू उसके द्वारादोष निस्तेज किया करता;
उस ही के बहु प्रयोग से तेज-हीन कर तू,
हम जिससे द्वेष करते, जो हमसे द्वेष करता।

सूक्त २०

मंत्र- वायो यत्ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्म।।६।।

काव्यार्थ- हे वायु! जगत् में जो तेरा प्रताप छाया,
तू जिस प्रताप द्वारा कर्म अशेष करता;
इस ही प्रताप द्वारा, उस पर तू प्रतापी हो,
हम जिससे द्वेष करते, जो हम से द्वेष करता।

मंत्र- वायो यत्ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्म।।२।।

काव्यार्थ- हे वायु! दोष-नाशन की शक्ति लिये है तू,
उससे तू दोष क्षरता, क्षति प्रकृष्ट भरता;
उसके ही द्वारा, वायु! तू नष्ट कर दे उसको,
हम जिससे द्वेष करते, जो हमसे द्वेष करता।

मंत्र- वाये यत्तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।।३।।

काव्यार्थ- हे वायु! जो तू दीपन की शक्ति धारता है,
उससे प्रदीप्त होकर तू रोष सभी हारता,
उस शक्ति के ही द्वारा, हम पर प्रदीप्त हो तू,
हम जिससे द्वेष करते, जो हमसे द्वेष करता।
हे वायु! शुद्ध करने की शक्ति धारता तू,
उस शक्ति द्वारा सबमें शुद्धि अशेष भरता;
उस शक्ति द्वारा उसको अविलम्ब शुद्ध कर तू,
हम जिससे द्वेष करते, जो हमसे द्वेष करता।

मंत्र- वाये यत्ते शोचिष्तेन तं प्रति शोच योऽस्मान्द्वेषि यं वयं द्विष्मः।।४।।
वायो यत्तेतेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं दिष्मः।।५।।

काव्यार्थ- हे वायु! तेरे अन्दर जो तेज समाया है,
तू उसके द्वारा दोष निस्तेज किया करता;
उस ही के बहु प्रयोग से तेजहीन कर तू,
हम जिससे द्वेष करते, जो हमसे द्वेष करता।

सूक्त २१

मंत्र- सूर्य यत्ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।।१।।

काव्यार्थ- हे सूर्य! तपाने की जो शक्ति लिये है तू,
उससे तू दोष हनता, शुद्धि प्रकृष्ट भरता,
इस शक्ति के ही द्वारा हे सूर्य! तपा उसको,
हम जिससे द्वेष करते, जो हमसे द्वेष करता।

मंत्र- सूर्य यत्ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।।२।।

काव्यार्थ- हे सूर्य! दोष-नाशन की शक्ति लिये है तू,
उससे तू दोष क्षरता, शुद्धि प्रकृष्ट भरता;
उसके ही द्वारा, सूर्य! तू नष्ट कर दे उसको,
हम जिससे द्वेष करते, जो हमसे द्वेष करता।

मंत्र- सूर्य यत्तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।।३।।

काव्यार्थ- हे सूर्य! जो तू दीपन की शक्ति धारता है,
उससे प्रदीप्त होकर तू दोष सभी हरता;
उस शक्ति के ही द्वारा, उस पर प्रदीप्त हो तू,
हम जिससे द्वेष करते, जो हमसे द्वेष करता।

मंत्र- सूर्य यत्ते शोचिस्तेन प्रति शोच योऽस्मान्द्वेष्टि वयं द्विष्मः।।४।।

काव्यार्थ- हे सूर्य! शुद्ध करने की शक्ति धारणा तू,
उस शक्ति द्वारा सबमें शुद्धि अशेष भरता;
उस शक्ति द्वारा उसको अविलम्ब शुद्ध कर तू,
हम जिससे द्वेष करते, जो हमसे द्वेष करता।

मंत्र- सूर्य यत्ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।।५।।

काव्यार्थ- हे सूर्य! तेरे अन्दर जो तेज समाया है,
तू उसके द्वारा दोष निस्तेज किया करता;
उस ही के बहु प्रयोग से तेजहीन कर तू,
हम जिससे द्वेष करते, जो हमसे द्वेष करता।

सूक्त २२

मंत्र- चन्द्र यत्ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।।१।।

काव्यार्थ- हे चन्द्र! जगत् में जो तेरा प्रताप छाया,
तू जिस प्रताप द्वारा कर्म अशेष करता;
इस ही प्रताप द्वारा, उस पर तू प्रतापी हो,
हम जिससे द्वेष करते, जो हमसे द्वेष करता।

मंत्र- चन्द्र यत्ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।।२।।

काव्यार्थ- हे चन्द्र! दोष-नाशन की शक्ति लिये है तू,
उससे तू दोष क्षरता, शुद्धि प्रकृष्ट भरता;
उस ही के द्वारा, चन्द्र! तू नष्ट कर दे उसको,
हम जिससे द्वेष करते, जो हमसे द्वेष करता

मंत्र- चन्द्र, यत्तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।।३।।

काव्यार्थ- हे चन्द्र! तू जो दीपन की शक्ति धारता है,
उससे प्रदीप्त होकर तू दोष सभी हरता;
उस शक्ति के ही द्वारा, उस पर प्रदीप्त हो तू,
हम जिससे द्वेष करते, जो हमसे द्वेष करता।

मंत्र- चन्द्र यत्ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽस्मान्द्वेषिट यं वयं द्विष्मः।।४।।

काव्यार्थ- हे चन्द्र! शुद्ध करने की शक्ति धारता तू,
उस शक्ति द्वारा सबमें शुद्धि अशेष भरता;
उस शक्ति द्वारा उसको अविलम्ब शुद्ध कर तू,
हम जिससे द्वेष करते, जो हमसे द्वेष करता।

मंत्र- चन्द्र यत्ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।।५।।

काव्यार्थ- हे चन्द्र! तेरे अन्दर जो तेज समाया है,
तू उसके द्वारा दोष निस्तेज किया करता,
उस ही के बहु प्रयोग से तेजहीन कर तू,
हम जिससे द्वेष करते, जो हमसे द्वेष करता।

सूक्त २३

मंत्र- आपो यद्वस्तपस्तेन तं प्रति तपत योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।।१।।

काव्यार्थ- हे जल! जो तपाने की शक्ति लिये हुए तू,
उससे तू दोष हनता, शुद्धि प्रकृष्ट भरता;
इस शक्ति के ही द्वारा हे जल! तपा तू उसको,
हम जिससे द्वेष करते, जो हमसे द्वेष करता।

मंत्र- आपो यद्वो हरस्तेनं तं प्रति हरत योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।।२।।

काव्यार्थ- हे जल! जो दोष-नाशन की शक्ति लिये है तू,
उससे तू दोष क्षरता, शुद्धि प्रकृष्ट भरता;
उसही के द्वारा, हे जल! तू नष्ट कर दे उसको,
हम जिससे द्वेष करते, जो हमसे द्वेष करता।

मंत्र- आपो यद्वोऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्चत योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।।३।।

काव्यार्थ- हे जल! स्वयं में दीपन की शक्ति धारता तू,
उससे प्रदीप्त होकर तू दोष सभी हरता;
उस शक्ति के ही द्वारा उस पर प्रदीप्त हो तू,
हम जिससे द्वेष करते, जो हमसे द्वेष करता।

मंत्र- आपो यद्वः शोचिस्तेन तं प्रति शोचत योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।।४।।

काव्यार्थ- हे जल! जो शुद्ध करने की शक्ति धारता तू,
उस शक्ति द्वारा सबमें शुद्धि अशेष भरता;
उस शक्ति द्वारा उसको अविलम्ब शुद्ध कर तू,
हम जिससे द्वेष करते, जो हमसे द्वेष करता।

मंत्र- आपो यद्वस्तेजस्तेन तमतेजसं कृणुत योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।।५।।

काव्यार्थ- हे जल! जो तेरे अन्दर बहु तेज समाया है,
तू उसके द्वारा दोष निस्तेज किया करता;
उस ही के बहु प्रयोग से तेजहीन कर तू,
हम जिससे द्वेष करते, जो हमसे द्वेष करता।

सूक्त २४

मंत्र- शेरभक शेरभ पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत्तमत्त स्वा मांसान्यत्त।।१।।

काव्यार्थ- अरे लुटेरों! रंग बीच भंग डालते,
बधिक जनों! हृदय में लिये दुष्टता असह;
तुम्हारी चोट और यातनाऐं तुम्हारी,
वापिस तुम्हारी ओर ही जाएं पुनः पुनः।
तुमको ही वह दुःखदायी बनें, खाऐं तुम्हारे-
ही साथियों को और करें पीर-दा घाव;
तुम खाओ उसे, जिसने तुम्हें लूट को भेजा,
अपने ही माँस की सदैव बोटियाँ खाओ।

मंत्र- शेवृधक शेवृध पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत्तमत्त स्वा मांसान्यत्त।।२।।

काव्यार्थ- हे बघकपने में बढ़ते, सुख के विनाशक,
अरे लुटेरों! पाल रहे दुष्टता असह;
तुम्हारी चोट और यातनाऐ तुम्हारी,
वापिस तुम्हारी ओर ही जाऐं पुनः पुनः।
तुमको ही वह दुःखदायी बनें, खाऐं तुम्हारे-
ही साथियों को, और करें पीर-दा घाव;
तुम खाओ उसे, जिसने तुम्हें लूट को भेजा,
अपने ही माँस की सदैव बोटियाँ खाओ।

मंत्र- म्रोकानुम्रोक पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत्तमत्त स्वा मांसान्यत्त।।३।।

काव्यार्थ- हे चोर! औं चोरों का साथ दे रहे चोरों,
अरे लुटेरों! पाल रहे दुष्टता असह;
तुम्हारी चोट और यातनाऐं तुम्हारी,
वापिस तुम्हारी ओर ही जाऐं पुनः पुनः।
तुमको ही वह दुःखदायी बनें, खाऐं तुम्हारे-

ही साथियों को और करें पीर-दा घाव;
तुम खाओ उसे, जिसने तुम्हें लूट को भेजा,
अपने ही माँस की सदैव बोटियाँ खाओ।

मंत्र- सर्पानुसर्प पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत्तमत्त स्वा मांसान्यत्त।।४।।

काव्यार्थ- हे सांप के समान, अरे साँपों के साथी,
बधिक जनों! हृदय में लिये दुष्टता असह;
तुम्हारी चोट और यातनाऐं तुम्हारी,
वापिस तुम्हारी ओर ही जाऐं पुनः पुनः।
तुमको ही वह दुःखदायी बनें, खाऐं तुम्हारे-
ही साथियों को और करें पीर-दा घाव;
तुम खाओ उसे, जिसने तुम्हें लूट को भेजा,
अपने ही माँस की सदैव बोटियाँ खाओ।

मंत्र- जूर्णि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः।
यस्य स्थ मतत्त यो वः प्राहैत्तमत्त स्वा मांसान्यत्त।।५।।

काव्यार्थ- अरी कुवासनाओं! तुम बुखार की जूड़ी-
समान बनी, उर में लिये दुष्टता असह;
तुम्हारी चोट और यातनाऐं तुम्हारी,
वापिस तुम्हारी ओर ही जाऐं पुनः-पुनः।
तुमको ही वह दुःखदायी बनें, खायें तुम्हारे-
ही साथियों को और करें पीर-दा घाव;
तुम खाओ उसे, जिसने तुम्हें लूट को भेजा,
अपने ही माँस की सदैव बोटियाँ खाओ।

मंत्र- उपब्दे पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत्तमत्त स्वा मांसान्यत्त।।६।।

काव्यार्थ- चिंघारने वाली कुवासनाओ! सदा ही-
व्याकुल बनाने वाली, लिये दुष्टता असह;

तुम्हारी चोट और यातनाऐं तुम्हारी,
वापिस तुम्हारी ओर ही जाऐं पुनः पुनः।
तुझको ही वह दुःखदायी बनें, खायें तुम्हारे-
ही साथियों को और करें पीर-दा घाव;
तुम खाओ उसे, जिसने तुम्हें लूट हो भेजा;
अपने ही माँस की सदैव बोटियाँ खाओ।

मंत्र- अर्जुनी पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेति५ किमी दिनीः।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत्तमत्त स्वा मांसान्यत्तः।।७।।

काव्यार्थ- कपट से पूर्ण कुटिनी, लुतारियों समान ही,
अरी कुवासनाओं! लिये दुष्टता असह;
तुम्हारी चोट और यातनाऐं तुम्हारी,
वापिस तुम्हारी ओर ही जाऐं पुनः पुनः।
तुमको ही वह दुखःदायी बनें, खाऐं तुम्हारे-
ही साथियों को और करें पीर-दा घाव;
तुम खाओ उसे, जिसने तुम्हें लूट हो भेजा;
अपने ही माँस की सदैव बोटियाँ खाओ।

मंत्र- भरूजि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः।
यस्यस्थ तमत्त यो वः प्राहैत्तमत्त स्वा मांसान्यत्त।।८।।

काव्यार्थ- छल करके पीर-दाता श्रृगाली समान, हे-
कुवासनाओं! मन में लिये दुष्टता असह;
तुम्हारी चोट और यातनाऐं तुम्हारी
वापिस तुम्हारी ओर ही जाएं, पुनःपुनः।
तुमको ही वह दुःखदायी बनें, खाऐं तुम्हारे-
ही साथियों का और करें पीर-दा घाव;
तुम खाओ उसे, जिसने तुम्हें लूट को भेजा,
अपने ही माँस की सदैव बोटियाँ खाओ।

सूक्त २५

मंत्र- शं नो देवी पृश्निपर्ण्यशं निर्ऋत्या अकः।
उग्रा हि कण्वजम्भनी तामभक्षि सहस्वतीम्।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

छोटे-छोटे पत्तों युत पृश्नपणी औषधि ज्यों,
रोग नाशती है और सुख को प्रदानती;
वैसे सूर्य-लोक रुप पत्तों वाली प्रभु-शक्ति,
दिव्य-गुण धार, दुःख-नाशन को ठानती।
जैसे वह ज्वर, उन्माद, वात नाशक है,
वैसे यह पुरूषार्थी के दुःख नाशती;
दुःख को प्रदानती है दुःख, भक्तों को सुख,
अस्तु वाणी इस ही के गुण को बखानती।।

मंत्र- सहमानेयं प्रथमा पृश्निपर्ण्यजायत। तयाहं दुर्णाम्नां
शिरो वृश्चामि शकुनेरिव।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

छोटे-छोटे पत्तों वाली पृश्नपर्णी समान,
जिसके कि सूर्य-लोक रूपी बहु पात हैं;
ऐसी प्रभु-शक्ति सबसे प्रथम प्रकटी, जो-
सर्व दोष नाशती व जीतती लखात है।
उससे मैं सिर हर दोष का कुचलता हूँ,
जो कि घुन के समान अंतस् को खात है;
तोड़ डालता हूँ सिर, जैसे कि बहेलिये को,
शकुनि का सिर तोड़ डालना सुहात है।।

मंत्र- अरायमसृक्पावानं यश्च स्फातिं जिहीर्षति।
गर्भादं कण्वं नाशय पृश्निपर्णि सहस्व च।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

छोटे-छोटे पत्तों वाली पृश्नपर्णी समान,
जिसके कि सूर्य-लोक रूपी बहु पात हैं;
ऐसी प्रभु शक्ति हम तेरे द्वारा जीत लेवें,
दुःखद निधनता को जो कि हमें खात है।
पुष्टि छीनते जो रोग, तन को बनाते क्षीण,
तब भक्ति से वे नहीं सिर को उठात हैं;
ब्रह्मचर्य नाशक कुकर्म जीत लेवें हम,
होता इस ही से सर्व दिशि में प्रभात है।।

मंत्र- गिरिमेनाँ आ वेशय कण्वान्जीवितयोपनान्।
तांस्त्वं देवि पृश्निपर्ण्यग्निरिवानुदहन्निहि।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

छोटे-छोटे पत्तों वाली पृश्नपर्णी समान,
द्विव्य-गुण-धारी प्रभु-शक्ति तू भात हैं;
सुन तू विनय, पाप व्याकुल बनाते प्राण,
अपकीर्ति देते, दुःख द्वन्द्व में बिठात हैं।
इनको अगम्य पर्वत की थली में गाड़,
लोग कहें ये न अब सिर को उठात हैं;
भस्म करने को इन्हें अति ही करालबन,
दाह करती हुई ज्यों अग्नि लखात है।।

मंत्र- पराच एनान्प्रणुद कण्वांजीवितयोपनान्।
तमांसि यत्र गच्छन्ति तत्क्रव्यादो अजीगमम्।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

प्रभु-शक्ति! प्राण मोह लेने वाले अरू प्राण-
नाशक समस्त पाप-रोग नाश कर दे;
इनको अधोमुख ढकेल, सिर को न कभी-
अपना उठाऐं, इनको हताश कर दे।
जैसे दुराचारी को जंजीर बाँध डाल देते-

अति अंध कारागार, दुःख-राश, डर दे;
वैसा हाल कर, माँस-नाशक कुसंगति का,
बाहर न आए कभी, बहु त्रास भर दे।।

सूक्त २६

मंत्र- एह यन्तु पशवो ये परेयुर्वायुर्येषां सहचारं जुजोष।
त्वष्टा येषां रूपधेयानि वेदास्मिन्तान्गोष्ठे सविता नि यच्छतु।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

पशु जो कि भ्रमणार्थ यहाँ से गये हैं, बाक-
इत-उत भटक गये हैं मार्ग भूलकए;
सूक्ष्मदर्शी-पुरूष भली-भाँति जानता है,
जिनका स्वरूप औ स्वभाव तथा मूल घर।
जिनका कि साहचर्य वायु करता है, वह
लौट कर गऊशाला आयें तन धूल भर;
उनको विचार शील गऊ-पाल बाँध रखें;
अति ही प्रसन्न हुए, मन माँह फूल कर।।

मंत्र- इमं गोष्ठं पशवः सं स्रवन्तु बृहस्पतिरा नयतु प्रजानन्।
सिनीवाली नयत्वाग्रमेषामाजग्मुषो अनुमते नि यच्छ।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सांयकाल सब पशु मिलकर आयें इस-
पालक के पास, निज हितू प्रिय मानकर;
बड़ा उपकारी, गऊ आदिक का रक्षक वह,
उन्हें ढूँढ लाये पहचान पहचान कर।
अन्न देने वाली गृह-पत्नी इन पशुओं का-
आना स्वीकारे, चारा आदिक प्रदान कर;
हे अतीव अनुकूल बुद्धि वाली गृह-पत्नी,
इनको तू बाँध निज-निज स्थान पर।।

मंत्र- सं सं स्रवन्तु पशवः समश्वाः समु पूरूषाः।

सं धान्यस्य या स्फातिः संस्रव्येण हविषा जुहोमि।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

गाय अरू घोड़े आसदि सब उपकारी पशु,
आपस में मिल, सहयोग से रहा करे;
अरू जितने भी हैं मनुष्य धरती पे, वह-
एक दूसरे के सहयोग को गहा करें।
धान्य की जो बढ़ती है खेत खलिहान बीच,
तत्वृद्धि सर्व सहयोग को लहा करें;
उन सब ही को मैं ग्रहण करूँ भक्ति साथ,
मन बीच कोमलता, सौम्यता बहा करे।।

मंत्र- सं सिन्चामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम्।
संसिक्ता अस्मांक वीरा ध्रुवा गावो मयि गोपतौ।।४।।

काव्यार्थ- **गीत**

दूध गउओं का दुहता रोज।
घृत से सींच धातु, बन नर का, उसमें भरता ओज।।
वीर-पुरूष इस रस में सिंचित हो, बलवान हुए हैं,
अतुल साहसी, पराक्रमी, ज्ञानी, गुण-खान हुए हैं;
मुझ गोपति-घर गौवें थिर हों, यही जतन अरू खोज।।

मंत्र- आ हरामि गवां क्षीरमाहर्षं धान्यं१रसम्।
आहृता अस्मांक वीरा आ पत्नीरिदमस्तकम्।।५।।

काव्यार्थ- **गीत**

दुग्ध गउओं का प्राप्त करूँ।
दुग्ध जन्य धान्य-रस द्वारा सबको आप्त करूँ।।
लाये गये यहाँ इस घर में अपने वीर पुरूष हैं,
लायी गयी पत्नियाँ भी हैं, गुण में सभी नहुष हैं;
इनमें दुग्ध और घृत द्वारा पुष्टि व्याप्त करूँ।।

सूक्त २७

मंत्र- नेच्छत्रुः प्राशं न जयति सहमानाभिभूरसि।
प्राशं प्रतिपाशो जह्मरसान्कृण्वोषधे।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

करता हूँ बुद्धि-पूर्वक सप्रमण तर्क,
मुझसे विरोधी कभी जीत सकता नहीं;
कितना प्रयत्न करे, हारता सदैव रहे,
मम बुद्धि-शक्ति कभी रीत सकता नहीं,
मम जय-शील बुद्धि द्वारा वह विवाद पर;
जीत लिया जाता, हो सभीत थकता यहीं;
ताप-हर औषध सी बुद्धि! प्रतिपक्षी को,
नीरस बना तू, रंच हो सरसता नहीं।।

मंत्र- सुपर्णस्त्वान्वविन्दत्सूकरस्त्वाखनन्नसा।
प्राशं प्रतिपाशो जह्मरासान्कृण्वोषधे।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

तुझको हे बुद्धि! खोज पाया उस व्यक्ति ने है,
दूरदर्शिता में जो कि गरूण समान है;
नासिका से खोद, तुझे प्राप्त करने में वह,
सूकर समान तीव्र बुद्धि, बलवान है।
ऐसी अति श्रम-साधना से प्राप्त बुद्धि, मिटा-
प्रतिवादियों को जिन्हें निज पे गुमान है;
ताप-हर औषध समान तत् कान्ति हर,
तेरे हाथ में ही तेरे भक्त की कमान है।।

मंत्र- इन्द्रो ह चक्रे त्वा बाहावसुरेभ्य स्तरीवे।
प्राशं प्रतिपाशो जह्मरासान्कृण्वोषधे।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

महत् प्रतापी अरू महाबली व्यक्ति ने ही,
अपनी भुजा पे किया तेरा ही निशान है;
असुरों से रक्षार्थ धारण किया है तुझे,
जीत कर उन्हें, किया उनको विरान है।
ऐसी अति श्रम-साधना से प्राप्त बुद्धि, मिटा-
प्रतिवादियों को जिन्हें निज पे गुमान है;
ताप-हर औषध समान तत् कान्ति हर,
तेरे हाथ में ही तेरे भक्त की कमान है।।

मंत्र- पाटामिन्द्रो व्याश्नादसुरेभ्य स्तरीवे।
प्राशं प्रतिपाशो जह्मरासान्कृण्वोषधे।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जैसे लोग खाते औषधि को रोग नाश हेतु,
रोग मिट जाता, होता आनन्द महान् है;
वैसे असुरों से रक्षार्थ, ऐश्वर्यवान्-
व्यक्ति ने बुद्धि का भी किया रसपान है।
ऐसी अति श्रम-साधना से प्राप्त बुद्धि, मिटा-
प्रतिवादियों को, जिन्हें निज पे गुमान है;
ताप-हर औषध समान तत् कान्ति हर,
तेरे हाथ में ही तेरे भक्त की कमान है।

मंत्र- तयांह शत्रून्त्साक्ष इन्द्रः सालावृकाँइव।
प्राशं प्रतिपाशो जह्मरासान्कृण्वोषधे।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जैसे भेडिया, बिलाव घर से भगाता, एक-
गृहपति जो महाप्रतापी, बलवान है;
वैसे औषधि समान बुद्धि से मैं शत्रु-दल,
कर दूँ परास्त, जो अतीव शक्तिवान है।

ऐसी अति श्रम-साधना से प्राप्त बुद्धि मिटा-
प्रतिवादियों को , जिन्हें निज पे गुमान है;
ताप-हर औषध समान तत् कान्ति हर,
तेरे हाथ में ही तेरे भक्त की कमान है।।

मंत्र- रूद्र जलाषभेषज नीलशिखण्ड कर्मकृत।
प्राशं प्रतिपाशो जम्भरासान्कृण्वोषधे।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

श्रेष्ठ ज्ञान प्रापक! हे दुःख द्वन्द्व नाशक!
हे औषधि के धारक! तू सुख का निधान हैं;
हे निधियों, निवास स्थानों के प्रदायक! हे-
कार्य में कुशल व्यक्ति, तू अति महान् है।
तू अपनी अतीव श्रेष्ठ बुद्धि से मिटा दे मेरे-
प्रतिवादियों को, जिन्हें निज पे गुमान है;
ताप-हर औषध समान तत् कान्ति हर,
तेरे हाथ में ही तेरे भक्त की कमान है।।

मंत्र- तस्य प्राशं त्वं जहि यो न इन्द्राभिदासति।
अधि नो ब्रूहि शक्तिभिः प्राशि मामुत्तरं कृधि।।७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे महत् ऐश्वर्यधारी, सत्यवादी विज्ञ!
श्रेष्ठ ज्ञान-धारक, तू वारिधि समान है;
तू उसके कुवाचारों को मिटा दे शीघ्र, जिसने कि-
दासता के हेतु किया हमको निशान है।
निज शक्तियों के साथ बुद्धि को हमारी बना-
ऐसा, जहाँ होता सुविचारों का विहान है;
हमको विवाद में बना दे अति-उत्तम तू,
देता सज्जनो को तुही श्रेष्ठ बुद्धि-दान है।।

सूक्त २८

मंत्र- तुभ्यमेव जरिमन्वर्धतामयं मेममन्ये मृत्यवो हिंसिषुः शतं ये।
मातेव पुत्रं प्रमना उपस्थे मित्र एनं मित्रियात्पात्वंहसः।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

पूर्ण वृद्धावस्था तक होवे व्यक्ति दीर्घ आयु,
बीच में सौ अप-मृत्यु हिंसित करें नहीं,
इसको दयालु प्रभु मित्र सम्बन्धी हर,
पाप से बचायें, पाप किंचित करे नहीं।
जैसे मात पालती है पुत्र, प्रभु वैसे इसे,
प्रेम रख वाले, क्रोध सिंचित करे नहीं;
इसके हों सत्कर्मी मित्र, न सताए उन्हें,
प्रेम रुप अमृत से वंचित करे, नहीं।।

मंत्र- मित्र एनं वरूणो वा रिशादा जरामृत्युं कृणुतां संविदानौ।
तदग्निर्होता वयुनानि विद्वान्विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

कर्मशील सबको बनाने वाले दिन, अरू-
रात्रि श्रम-भक्षण को जो सदा वरा करे;
आप दोनों नर को लगायें प्रभु-आज्ञा में,
यह वृद्धावस्था के बाद ही मरा करे।
महादानी, तेजवान प्रभु जो कि जीव-कर्म,
यथावत जानता विलम्ब न जरा करे;
वह इसमें समस्त दिव्य पदार्थों की,
उत्तम व्यवस्थाओं, नियमों को भरा करे।

मंत्र- त्वमीशिषे पशूनां पार्थिवानां ये जाता उत वा ये जनित्राः।
मेमं प्राणो हासीन्मो अपानो मेमं मित्रा वधिषुर्मो अमित्राः।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जो जनमे हैं और जो जन्म ले रहे जीव।
प्रभु! उन सबका स्वामी तू, उन सबकी है नीव।।
शत्रु, मित्र इस जीव की, कभी न लेवें जान।
तेरी कृपा से बीच में तजें न प्राण-अपान।।

मंत्र- द्यौष्ट्रा पिता पृथिवी माता जरामृत्युं कृणुतां संविदाने।
यथा जीवा अदितेरूपस्थे प्राणापानाभ्यां गुपितः शतं हिमा।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

पितु सम रक्षक रहा जो द्यु-लोक, तथा-
मात सम ममता भरा जो भूमि लोक है;
इनकी कृपा से तेरे पास जरा-पूर्व कभी,
आये नहीं मृत्यु, चलती जो बिन टोक हैं।
प्राण अरू अपान से सुरक्षित हो, बैठता हो,
पृथिवी की गोद जहाँ रंच नहीं शोक है;
भोगता हो शत-शत हेमन्त ऋतु का सुख,
मोद ही है मोद जहाँ, पीर की न नोक है।

मंत्र- इममग्न आयुषे वर्चसे नय प्रियं रेतो वरूण मित्र राजन्।
मातेवास्मा अदिते शर्म यच्छ विश्वे देवा जरदष्टिथासत्।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे अगनि तत्व! जल तत्व, तथा शक्तिधारी-
जीवन आधार प्राण-वायु! कृपा कीजिये;
स्वस्थ दीर्घ आयु तथा तेज बढ़ाने के लिये,
इस व्यक्ति-तन बीच वीर्य खरा दीजिये।
पृथिवी हे! मात के समान आप दीजे मोद,
हे समस्त देवों! अपनी शरण लीजिये;
जिससे यह व्यक्ति दीर्घ आयु, यश पाये, ऐसे-
शुभ-गुण दीजिये, अशुभ दल मीजिये।।

सूक्त २९

मंत्र- पार्थिवस्य रसे देवा भगस्य तन्वोऽबले।
आयुष्यमस्मा अग्निः सूर्यो वर्च आ धाद् बृहस्पतिः।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

देव जन! अग्नि के समान सर्वव्याप्त प्रभु,
जो कि सूर्य सम सब लोकों को तना रहा;
जो वृहत् सर्व ब्रह्मण्ड रचता है, तथा-
उनका अकेला एक रक्षक बना रहा।
वह प्रभु सर्व ओर से प्रदाने जीव हेतु,
वह तेज जो कि आयु-वर्धक घना रहा;
पृथिवीस्थ बैभव के रस रूप तत्व ज्ञान,
बल औ प्रताप औ सुयश को जना रहा।।

मंत्र- आयुरस्मै धेहि जातवेदः प्रजां त्वष्टरधिनिधे ह्यस्मै।
रायस्पोषं सवितरा सुवास्मै शतं जीवाति शरदस्तवायम्।।२।।

काव्यार्थ- **प्रार्थना**

हे प्राणियों को प्राण अरू ज्ञान देने वाले,
प्रभुदेव! यह मनुष्य आयुषमान कीजै।
हैं आप विश्वकर्मा, रचना अतुल्य करते,
प्रभुदेव! इस मनुष्य को प्रजावान कीजै।
परमैश्वर्यधारी हैं आप, इस मनुष्य-
को पुष्टि और धन दे ऐश्वर्यवान कीजै।
सौ शरद-ऋतुओं पर्यन्त आपका ही होकर,
जीवित रहे, इसे निज भक्ति प्रदान कीजै।।

मंत्र- आशीर्ण ऊर्जमुत सौप्रजास्त्वं दक्षं धत्तं द्रविणं सचेतसौ।
जयं क्षेत्राणि सहसायमिन्द्र कृण्वानो अन्यानधरान्त्सपत्नान।।३।।

काव्यार्थ- **कामना**

सब के रहे हितैषी हे दिव्य-गुणी पुरूषों!
सुख के लिये हमारे आशीर्वाद दीजें।
निज चित समान रखते पुरूषों! हमें निपुणता,
शुभ अन्न, श्रेष्ठ पूजा अरू धन से लाद दीजै।
ऐश्वर्यधारी हे प्रभु! नर को स्वबल से नाना-
क्षेत्रों में विजय पाने का शुभ प्रसाद दीजै।
शत्रु को विविध क्षेत्रों में करता हो अधो मुख,
इसको सौ शरद ऋतुओं अति आह्लाद दीजै।

मंत्र- इन्द्रेण दत्तो वरूणेन शिष्टो मरूद्भिरग्रः प्रहितो न आगन्।
एष वां द्यावापृथिवी उपस्थे मा क्षुधन्मा तृषत्।।४।।

काव्यार्थ- ऐश्वर्यवान् प्रभु ने निज न्याय व्यवस्था से,
इस जीव को समुत्तम नर का जनम दिया है;
इसको गुणी पिता ने अति शिष्ट बनाया है,
शूरों ने वीर-भाव इसको चरम दिया है।
यह तेजवान होकर हम लोगों बीच आया,
इसने, स्व-भूमि रक्षा अपना धरम किया है;
इस हेतु सूर्य, भूमि! गोदी में यह तुम्हारी,
भूखा न रहे प्यासा, इसका नरम हिया है।

मंत्र- ऊर्जमस्मा ऊर्जस्वती धत्तं पयो अस्मै पयस्वती धत्तम्।
ऊर्जमस्मै द्यावापृथिवी अधातां विश्वे देवा मरूत ऊर्जमापः।।५।।

काव्यार्थ- हे अन्न वाली! इसको तुम अन्न दान करना,
हे दूध वाली! इसको तुम दूध दान करना;
पृथिवी व सूर्य ने भी शुभ अन्न दिया इसको,
सब देव, वायु-जल का भी अन्न दान इसको।

मंत्र- शिवाभिष्टे हृदयं तर्पयाभ्यनमीवो मोदिषीष्ठाः सुवर्चाः।
सवासिनौ पिबतां मन्थमेतमश्विनो रूपं परिधाय मायाम्।।६।।

काव्यार्थ- हे श्रेष्ठ जीव मानव! कल्याणकारी सारी-
विद्याओं द्वारा मैंने अति तप्त तव हिया कर;
तुझको बनाया ज्ञानी अरू श्रेष्ठ कान्ति वाला,
अब तू निरोगी होकर आनन्द से जिया कर।
मिल कर सदैव चलते नर-नारी के हे जोड़े।
तूने है वास हेतु धरती पे कर लिया घर;
तू मात-पिता रूप स्वभाव बुद्धि रख कर,
इस मेरे दिये रस को छकते हुए पिया कर।

मंत्र- इन्द्र एतां ससृजे विद्धो अग्र ऊर्जां स्वधामजरां सा त एषा।
तया त्वं जीव शरदः सुवर्चा मा त आ सुस्रोदिभषजस्ते अक्रन्।।७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे मनुष्य! सेवित प्रभु ने पहले से इस-
अन्न युक्त अक्षय सुधा को है जना दिया;
तेरे ही लिये है यह, इससे सुकान्ति धार,
दीर्घ काल जीवन का अपने जला दिया।
तब हेतु अमृत घटे न कभी, आयु भर-
तेरा ऐश्वर्य, बल रहता घना किया;
अरू रोग-हीन हो विकास करे, इस हेतु,
वैद्यों ने रस-योग उत्तम बना दिया।।

सूक्त ३०

मंत्र- यथेंद भूम्या अधि तृणं वातो मथायति। एवा मथ्नामि ते मनो यथा
मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः।।१।।

काव्यार्थ- भूमि-तृण वायु हिलाता जैसे, मैं तेरे मन की हिलाता डाली,
जिससे मू कामना मेरी ही करे, हो कभी दूर न जाने वाली।

मंत्र- सं चेन्नयाथो अश्विना कामिना सं च वक्षथः।
सं वा भगासो अग्मत सं चित्तानि समु व्रता।।२।।

काव्यार्थ- वर-कन्या रूप हम दोनों कामनाओं वाले,
हे मात-पितु! हमें मिल कर ले चलो, बढ़ाओ।
तुम्हरे समस्त ऐश्वर्य मिल गये हमें हैं,
मन मिल गये परस्पर है प्रेम का कसाव।
शक्ति नियम के पालन की पायी तब कृपा से,
व्रत मिल गये परस्पर, विपरीत से दुराव।

मंत्र- यत्सुपर्णा विवक्षवो अनमीवा विवक्षवः
तत्र में गच्छताद्धवं शल्य इव कुल्मलं यथा।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वर वा कि कन्या के पक्ष से जुड़े हों जहाँ,
शुभ-पंख पक्षी सम, दूरदर्शी लोग हों;
होंवे जहाँ स्वस्थ औं निरोगी जन, जिनसे कि-
ब्रह्मचर्य, धर्म-शिक्षा का नित योग हो।
वर वा कि कन्या ने पायी शिक्षा हो जहाँ,
उनका विवाह प्रस्ताव उस लोक हो;
वह प्रस्ताव वहाँ इस भाँति दृढ़ होवे,
निज दण्डी पर जमी जैसे वाण नोक हो।।

मंत्र- यदन्तरं तद्वाह्यं यद्वाह्यं तदन्तरं।
कन्यानां विश्वरूपाणां मनो गृभायौषधे।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे नर! तव उर बीच जो प्रीति आदि का भाव।
वह कन्या को हो प्रकट, जागृत करे लगाव।।
प्रीति आदि का भाव जो, प्रकट हुआ दिखलाय।
वह कन्या के हृदय में जाकर थिर हो जाय।।
हे नर! तू है औषधि ताप विनाशन हार।
सर्व सुन्दरी कन्या के मन को तू स्वीकार।।

मंत्र- एयमगन्पतिकामा जलिकामोऽहभागमम्।
अश्वः कनिक्रदद्यथा भगेनाहं सहागमम्।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पति कामी हो आयी है, यह कन्या इस ठाम।
मैं आया हूँ पत्नि की इच्छा मन में थाम।।
मुदित हिनहिनाते सबल एक अश्व समान।
मैं आया इस ढौर हूँ, ऐश्वर्यो को तान।।

सूक्त ३१

मंत्र- इन्द्रस्य या मही दृषत्क्रिमेर्विश्वस्य तर्हणी।
तया पिनष्मि सं क्रिमीन्दृषदा खल्वाँदूव।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

विद्या रूपी शिला प्रभु रखते अपने पास।
उससे हर अज्ञान-क्रिमि का कर देते नाश।।
उससे पीसूँ क्रिमि सरीखे सब दोष, रोग।
यथा चनों को पीसते शिला हाथ ले लोग।।

मंत्र- दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरूरूमतृहम्।
अल्गण्डून्त्सर्वान्छलुनान्क्रिमीन्वच सा जम्भयामसि।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

मैंने उन सब क्रिमिगण को विनष्ट किया,
जो कि दीखते नहीं हैं, या कि मुझे दीखते;
उन क्रिमिगण को भी नष्ट कर डाला मैंने,
मिन्-मिन् करते जो, लगते हैं चीखते।
जीवित रहे न अब, भूमि पर रेंगते जो,
जो कि सताते हैं, जिनसे कि हम झीखते;
रहते जो उपधानों बीच, चलते सवेग,
वचा औषधि से मार डाला उन्हें ठीक से।।

मंत्र- अल्गण्डून्हन्मि महता वधेना दूना अदूना अरसा अभूवन्।
शिष्टानशिष्टान्नि तिरामि वाचा यथा क्रिमीणां नकिरूच्छिषातै।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

रहते जो क्रिमिगण मेरे उपधान बीच,
उनको मैं चोट बड़ी देकर के मारता;
परिपक्व नहीं जो कि और परिपक्व क्रिमि,
निर्बल किये हैं सब, शेष हैं असारता;
जो नहीं बचे हैं और जो बचे क्रिमि हैं, उन्हें-
वाचा औषधि से यम-लोक में बिठारता;
मम पास कोई भी क्रिमी न रह पाये, सदा-
निज मन बीच यह निश्चय बिठारता।।

मंत्र- मन्वान्त्रयम् शीर्षस्थ१मथो पार्ष्टेयं क्रिमीन्।
अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन्वचसा जम्भयामसि।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

क्रिमि जो कि आँतों बीच होते, कष्ट देते बड़ा,
करते है आँत नष्ट, पाचन बिगड़ता;
अरू क्रिमी जो कि सिर बीच हुआ करते हैं,
जिनसे कि व्यक्ति का सुख चैन क्षरता।
पसलियों के क्रिमी, रेंग कर चलते जो क्रिमी,
क्रिमी जिन कारण कि व्यक्ति आह भरता;
अरू जो कुमार्ग आचरण से जनम लेते,
उन सबको मैं वाचा द्वारा दूर करता।।

मंत्र- ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेष्वोषधीषु पशुष्वप्स्व१न्तः।
ये अस्माकं तत्वमाविविशुः सर्वं तद्धन्मि जनिम क्रिमीणाम्।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पर्वत, वन, औषधियों में, जिन क्रिमियों का वास।
उन सब ही के जनम का, करता हूँ मैं नाश।।
जिन क्रिमियों ने नर, पशु, जल में किया प्रवेश।
उन्हें मिटाता मैं सदा, एक न रहता शेष।।
तन, मन के छोटे-बड़े दोष मिटा कर सर्व।
अरू अपने को शुद्ध कर, निज पर करता गर्व।।

सूक्त ३२

मंत्र- उद्यन्नादित्यः क्रिमीन्हन्तु निम्रोचन्हन्तु रश्मिभिः। ये अन्तः क्रिमयो गवि।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

भू के क्रिमियों को हने उदित हुआ आदित्य।
अरू किरणों द्वारा हने अस्त हुआ भी नित्य।।

मंत्र- विश्वरूपं चतुरक्षं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम्।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः।।२।।

काव्यार्थ- नाना आकार वाले श्वेतवर्णी क्रिमी जो,
चितकबरी खाल वाले तथा रेंगने वाले;
अत्यन्त विषैले तथा रोगाणु धारते,
फिरते चतुर्दिशाओं चार आँखों को डाले।
मैं इनकी सभी पसलियों को तोड़ डालता,
इनका जो सिर है उसको भी मैं तोड़ डालता;
यह रोग-प्रदायक हैं, नाशते हैं तन मेरा,
इनका विनाश करना नहीं रंच टालता।

मंत्र- अत्रिवद्वः क्रिमयो हन्मि कण्ववन्जमदग्निवत्।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिन क्रिमीन्।।३।।

काव्यार्थ- हे क्रिमियों! तुमको दोष के भक्षक मुनि समान,
मेधावी, स्तुति के योग्य व्यक्ति के समान;
अरू जलती हुई अग्नि-सा अति तेजपूर्ण बन,
अविलब मार, करता सदा रोग का निदान।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे क्रिमियों! जो प्रभु रहा, पाप नाश में तूर।
उसके ज्ञान से तुम्हें, करता चकनाचूर।

मंत्र- हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः।
हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा।।४।।

काव्यार्थ- इन क्रिमियों के राजा को मार डाला जाय, औ-
हन द्वारपाल जाय दे अपार कष्ट को;
माता व भाई, बहन जिसकी मार दी गयी;
आक्रान्ता वह क्रिमी मरे, अविलम्ब नष्ट हो।

मंत्र- हतसो अस्य वेशसो हतासः परिवेश सः।
अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हतः।।५।।

काव्यार्थ- इस क्रिमी के साथी जो कहाते हैं नष्ट हों,
परिचर्या में लगे सभी सेवक भी नष्ट हों;
अरू जो भी बहुत सूक्ष्म क्रिमी हैं, न रहें वह,
मारे सभी जाऐं, मुझे किंचित न कष्ट हो।

मंत्र- प्र ते शृणामि शृंगे याभ्यां वितुदायसि।
भिनद्मि ते कुषुम्भं यस्ते विषधानः।।६।।

काव्यार्थ- मैं तेरे बने दोनों सींग तोड़ डालता,
जिनसे तू सभी ओर को टक्कर है मारता;
अरू तेरी बनी थैली को भी तोड़ता हूँ मैं,
जिसमें भरी हुई तेरे विष की करालता।

सूक्त ३३

मंत्र- अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि।
यक्ष्मं शीर्षण्य मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते।।१।।

काव्यार्थ- तेरी आँखों व कानों, नथुनों में,
ठोड़ी, मस्तिष्क में, जिह्वा में क्षयी पाता हूँ,
तेरे सिर बीच भी हुआ है यह,
इसको उपचार कर हटाता हूँ।

मंत्र- ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात्।
यक्ष्मं दोषण्य१ मंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते।।२।।

काव्यार्थ- तेरी ग्रीवा की औं गुद्दी की नाड़ियों में, औं-
हँसली की, रीढ़ की हड्डी में क्षयी पाता हूँ,
तेरे कन्धों व भुजाओं में भी हुआ है, इस-
तेरे मुड्ढे के क्षयी रोग को हटाता हूँ।

मंत्र- हृदपाते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात्पार्श्वाभ्याम्।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि।।३।।

काव्यार्थ- तेरे हृदय में, फेफड़ों में और पित्तेत में,
दोनों काँखों में औं गुर्दो में क्षयी पाता हूँ,
तेरी प्लीहा औं जिगर बीच भी हुआ है यह,
इसको उपचार कर हटाता हूँ।

मंत्र- आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरूदरादधि।
यक्ष्मं कुक्षिभ्यांप्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते।।४।।

काव्यार्थ- तेरी आँतों में, गुदा में तथा मलाशय में,
तेरे उदर में औं नाभि में क्षयी पाता हूँ,
दोनों कोरवों व काँख थैली बीच भी यह है।
इसको उपचार कर हटाता हूँ।

मंत्र- उरूभ्यां ते अष्ठी वद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्यां।
यक्ष्मं मसद्यं१श्रोणिभ्यां भासंद भंससो वि वृहामि ते।।५।।

काव्यार्थ- तेरी जंघाओं, घुटनों, एड़ियों व पंजों में-
गुह्य-स्थान, नितम्बों में क्षयी पाता हूँ,
कटि-प्रदेश तथा गुह्य बीच भी यह है,
इसको उपचार कर हटाता हूँ।

मंत्र- अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यो स्नावभ्यो धमनिभ्यः।
यक्ष्मं पाणिभ्यामङंगुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते।।६।।

काव्यार्थ- तेरे तन बीच हड्डियों में और मज्जा में,
तेरे घुटनों व धमनियों में क्षयी पाता हूँ,
यह तेरे हाथों, अंगुलियों, नखों के बीच बसा,
इसको उपचार से हटाता हूँ।

मंत्र- अंगे-अंगे लोम्निलाम्नि यस्ते पर्वाणिपर्वणि।
यक्ष्मं तवचस्य ते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण्ध विष्वन्चं वि वृहामसि।।७।।

काव्यार्थ- तेरे अंग-अंग, रोम-रोम, गाँठ-गाँठ, त्वचा-
तथा सब अवयवों में व्याप्त क्षयी पाता हूँ,
नाना ज्ञानी जनों की विधियों से,
इसका उपचार कर हटाता हूँ।

सूक्त ३४

मंत्र- य ईशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुत यो द्विपदाम्।
निष्क्रीतृः सः यज्ञियं भागमेतु रायस्पोषा यजमानं सचन्ताम्।।१।।

काव्यार्थ- **गीत**

प्रभो! पशुपति कहलाते आप।
सब चीजों के स्वामी आप हैं, हैं सब ही के बाप।।
द्विपाद अरू चतुष्पाद के आप अकेले राजा,
स्वीकारें यज्ञीय विभाग प्रभुवर! हमरे काजा;
धर्म-मार्ग के पथिकों को दो अनुकूलन से ढाप।।
प्रभुवर! हम हैं पूजनीय कर्मों के करने वाले,
नित्य रहे हैं प्रभो! आपके द्वारा देखे-भाले;
धन की वृद्धि, पुष्टियाँ सींचे हमको, हर संताप।।

मंत्र- प्रभुन्चन्तो भुवनस्य रेतो गातुं धत्त यजमानाय देवाः।
उपाकृतं शशमानं यदस्थात्प्रियं देवानामप्येतु पाथः।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

विज्ञ जन! आप वेद द्वारा जगत् की वृद्धि और,
स्थिति का कारण विचारना चहा करें;
अरू पूजनीय-कर्म रत हम मानवों के
हित हेतु सद्-उपदेश को कहा करें।
जिससे कि हम सब प्रभु कृत, सर्वत्र-
प्राप्त, बहु जीवन के साधन गहा करें;
तत् ज्ञान अरू अन्न आदि को प्राप्त कर,
दूर हों दुःखों से, नित सुख में रहा करें।।

मंत्र- ये बध्यमानमनु दीध्याना अन्वैक्षन्त मनसा चक्षुषा च।
अग्निष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवो विश्वकर्मा प्रजया संरराणः।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

ज्ञान-ज्योति द्वारा अति ज्योतिवान व्यक्ति, जो कि-
बन्धन में रहे प्राणी पर प्रकाश करता;
मन, नेत्रों से उन्हें देखता दया से भर,
तद् उद्धार करता, सुवास भरता।
विश्वकर्ता, प्रजा साथ रमता, प्रकाशमान,
प्रभु सज्जनों को रंच न निराश करता;
वह उस अग्रगामी व्यक्ति का सहायक हो,
सब छोटे बड़े विघ्नों का नाश करता।

मंत्र- ये ग्राम्या पशवो विश्वरूपा विरूपाः सन्तो बहुधैकरूपाः।
वायुष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवः प्रजापतिः प्रजया संरराणः।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सभी वर्ण, भिन्न देश ग्रामवासी, जिनमें कि-
भिन्न अन्न, जल अरू, वायु तरता रहे;
पृथक्-पृथक् रूप-रंग वाले होकर भी,
जिनमें कि एक सा स्वभाव भरता रहे।
प्रजा जन रक्षक, पवन सा सुखद ईश,
उन अग्रवर्तियों को नित्य सरता रहे;
भली-भाँति मुक्त कर, उनके मिटाये दुःख,
अरू बहु सुख को प्रदान करता रहे।।

मंत्र- प्रजानन्तः प्रति गृह्णतु पूर्वे प्राणमंगेभ्यः पर्याचरन्तम्।
दिवं गच्छ प्रसि तिष्ठा शरीरैः स्वर्ग-याहि पथिभिर्देवयानैः।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

प्रथम स्थान में जो वर्तमान, महा ज्ञानी,
प्राणियों में जो कि सद-ज्ञान भरते रहे;

सकल शरीर में भ्रमणशील प्राण को जो,
नित्य अपने में वशीभूत करते रहे।
तत्पश्चात् चलने के योग्य जिस मार्ग,
वेद के पथिक देव-गण चलते रहे;
उस मार्ग चलते हुए अतीव आनन्द का,
ज्योतिपूर्ण लोक वह प्राप्त करते रहे।।

सूक्त ३५

मंत्र- ये भक्षयन्तो न वसून्यानृधुर्यानग्नयो अवन्तप्यन्त घिष्ण्याः।
या तेषामवया दुरिष्टिः स्विष्टिं नस्तान्कृणवद्विश्वकर्मा।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

स्वार्थी मनुष्य जो कि बनके धनिक, निज-
पेट भरते, परोपकार करते नहीं;
जिनकी दशा को देख अग्नि समज्ञानवान,
पश्चाताप करते हैं, हर्ष करते नहीं।
उन कंजूसों की विनाशक कुसंगति को,
प्रभु फलदायक बनाये, हमरे तही;
फल अवलोक बुरी संगति का हम लोग,
उससे हों दूर, पाऐं आनन्द भरी छँही।।

मंत्र- यज्ञपतिमृषय एनसाहुर्निर्भक्तं प्रजा अनुतप्यमानम्।
मथव्यान्स्तोकानप यान्रराध सं नप्टेभिः सृजतु विश्वकर्मा।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वह पुरूषार्थी मनुष्य जो कि शुभ कर्म,
रक्षता, तथा दयालु रहता प्रजाओं पर;
सूक्ष्मदर्शी ऋषि बताते उसे निष्पाप,
उसकी विजय है कुमार्ग के प्रभावों पर।
मन्थन के योग्य सत्य-सिद्धान्तों को प्रसार,
नित्य अधिकार वह रखता व्यथाओं पर;
जग का रचयिता प्रभु हमें आरूढ़ करें,
उन नित्य सत्य-सिद्धान्तों की हवाओं पर।।

मंत्र- अदान्यान्त्सोमपान्मन्यामानो यज्ञस्य विद्वन्त्समये न धीरः।
यदेनश्चकृत्वान्वद्ध एष तं विश्वकर्मन्म्र मुंचास्वस्तये।।३।।

काव्यार्थ-- **कवित्त**

पापलिप्त जो पुरुष सोमपान करते हुए,
यज्ञ कर्मियों को दान के अयोग्य जानता;
वह शुभकर्म करना न रंच जानता है;
न ही धैर्य धारण की रखता प्रधानता।
प्रभु विश्वकर्मा! यदि वह पश्चाताप कर,
शुभ कर्म करना हृदय के बीच ठानता;
अरू तब आज्ञा को मानता है, तब उसे
मुक्त कर, तुझमें दया की है निधानता।।

मंत्र- घोरा ऋषयो नमो अस्त्वेभ्यश्चक्षुर्यदेषां मनसश्च सत्यम्।
बृहस्पतये महिष घुमन्नमो विश्वकर्मन्नमस्ते पाह्यस्मान्।।४।।

काव्यार्थ- अत्यन्त ही तपस्वी, अति ही प्रभावशाली,
अत्यन्त तेजधारी, ऋषियों को नमन होवे;
अंतः की चक्षुओं से यथार्थ देखते यह,
संपर्क से इन्हीं के, हर पाप दमन होवे।
अत्यन्त बड़े ब्रह्मण्डों के प्रसिद्ध स्वामी,
हे पूजनीय प्रभुवर! स्पष्ट नमन तुमको;
रक्षा करो हमारी, संसार के रचयिता।
नैराश्य के पतझर में, कहते हैं चमन तुमको।

मंत्र- यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुख च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि।
इमं यंज्ञ विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जो यज्ञ की आँख मुख अरू पुष्टि सम होय।
मम वाणी मन क्षेत्र से वह नर स्वीकृत मोय।।
विश्वकर्मा प्रभु ने किया विस्तारित यह यज्ञ।
प्राप्त करें इसको त्वरित, सुमन देव जन विज्ञ।।

सूक्त ३६

मंत्र- आ नो अग्ने सुमतिं संभलो गमेदिमां कुमारी सह नो भगेन।
जुष्टा वरेषु समनेषु वल्गुरोषं पत्या सौभगमस्त्वस्यै।।१।।

काव्यार्थ- अग्नि समान तेजवान श्रेष्ठ हे राजन्!
अति श्रेष्ठ बुद्धि वाली ये कन्या हे हमारी;
अति श्रेष्ठ विज्ञ वक्ता पति प्राप्त हो इसे,
जो धारता हो श्रेष्ठ ऐश्वर्य अपारी।
श्रेष्ठों में अत्यन्त प्रिय कन्या हमारी,
श्रेष्ठ विचार वालों को अत्यन्त ही प्यारी;
इसको पति के साथ ही सौभाग्य प्राप्त हो,
सुख श्रेष्ठ चले नित्य ही पति देव अगारी।

मंत्र- सोमजुष्टं ब्रह्मजुष्टमर्यम्णा संभृतं भगम्।
धातुर्देवस्य सत्येन कृणोमि पतिवेदनम्।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

ब्रह्मज्ञानी व्यक्तियों के द्वारा रहा सेवित जो,
ऐश्वर्यवान् अति प्यार जिसे करते;
श्रेष्ठों का नित्य सम्मान किया करते जो,
ऐसे हितकारी राजा पुष्ट जिसे करते।
ऐसा ऐश्वर्यवान्, गुण सम्पन्न वर,
जिसको समस्त सम्भ्रान्त जन सरते;
उसको मैं वर रूप प्राप्त करती हूँ आज,
धारक प्रभु के बने सत्य नियम से।।

मंत्र- इयमग्ने नारी पतिं विदेष्ट सोमो हि राजा सुभगां कृणोति।
सुवाना पुत्रान्महिषी भवाति गत्वा पतिं सुभगा वि राजतु।।२।।

काव्यार्थ- हे अग्नि के समान तेज स्वरूप प्रभुवर!
है प्रार्थना ये नारी गुणवान पति पाए;

सौभाग्यवती करता इसको समर्थ राजा,
जो चन्द्रमा समान आनन्द-दा कहाए।
रानी समान घर की बनती हुई ये नारी,
जन वीर पुत्र, होकर शोभावती लुभाए;
अपने पति को पाकर, सौभाग्यवती होकर,
नाना प्रकार घर की शोभा सदा बढ़ाए।।

मंत्र- यथाखरो मघवंश्चारूरेष प्रियो मृगाणां सुषदा बभूव।
एवा भगस्य जुष्टेयमस्तु नारी संप्रिया पत्यानिराधयन्ती।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

महाधनी, पूजनीय परमेश! जैसे यह-
गुहा-थान वन्य पशुओं को अति भा रहा;
उनके लिये है यह एक रमणीय घर,
उनका समस्त सुख इसमें समा रहा।
वैसे ही यह नारी, ऐश्वर्य से सेवित जो,
पति-गृह इसको अतीव ही लुभा रहा;
करती है पति से कदापि भी विरोध नहीं,
प्रियतमा इसका पति इसे बना रहा।।

मंत्र- भगस्य नावमा रोह पूर्णामनुपदस्वतीम्।
तयोपप्रतारय यो वरः प्रतिकाम्यः।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सुभग गृहस्थाश्रम तेरा, हे स्त्री! है नाव।
जो ऐश्वर्यों से भरी, अति ही सुदृढ़ बनाव।।
इस पर हो आरूढ़ तू, कमनीय पति साथ।
उसको सादर पार कर, मिला हाथ से हाथ।।

मंत्र- आ क्रन्दय धनपते वरमामनसं कृणु।
सर्वं प्रतिक्षिणं कृणु यो वरः प्रतिकाम्यः।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पति को नित सादर बुला, हे धन रक्षक नारि।
तथा वार्तालाप कर मन अनुकूल विचारि।।
रख अपना कमनीय पति, सदा दाहिनीं ओर।
तेरा सर्वाधिक हितू, वह तेरा चितचोर।।
प्रीति से सत्कार कर, तथा मान-सम्मान।
यही बताते दिव्य जन, यही वेद का ज्ञान।।

मंत्र- इदं हिरण्यं गुल्गुल्वयमौक्षो अथो भगः।
एते पतिभ्यस्त्वामदुः प्रतिकामाय वेत्तवे।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

यह उत्तम सुवर्ण, यह बहु धन, बैल समेत।
कमनीय पति लाभ हित, हम सब तुझको देत।।

मंत्र- आ ते नयतु सविता नयतु पतिर्यः प्रतिकाम्यः।
त्वमस्यै धेह्योषधे।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे स्त्री! प्रेरक प्रभू देता सकल पदार्थ।
वह तेरे पति को करे नायक तेरे हितार्थ।।
रहे चलाता तब पति-कमनीय को ईश।
मर्यादा पालन करे, नही झुकाये शीश।।
ताप विनाशक औषधि के सम है जगदीश।
पत्नि हित, पति मध्य कर पुष्टि का उन्मेष।।

तृतीय काण्ड

मंत्र- अग्निर्नः शत्रून्प्रत्येतु विद्वान्प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम्।
स सेनां मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः।।१।।

काव्यार्थ- अत्यन्त ही विद्वान् रहा राजा हमारा,
जो अग्नि के समान अति तेज धारता;
वह शत्रु-सेना घातकी को भस्म करता हो,
करके चढ़ाई शत्रुओं को हो विदारता।
वह ऐश्वर्यान् निज प्रजा को जानता,
अरि-सैन्य को अत्यन्त ही व्याकुल बना चले,
कर देवे उसे हस्तहीन पूर्ण रूप से;
जनता समस्त जीव की खुशियाँ मना चले।

मंत्र- यूयमुग्रा मरूत ईदृशे स्थाभि प्रेत मृणत सहध्वम्।
अमीमृणन्वसवो नाथिता इमे अग्निर्नोषां दूतः प्रत्येतु विद्वान्।।२।।

काव्यार्थ- प्राणोत्सर्ग हेतु कटिबद्ध हे वीरों!
तुम ऐसे युद्धकाल दिखाते हो वीरता;
इस हेतु तुम आगे बढ़ो अरू शत्रु को काटो,
जीतो उसे अविलम्ब दिखा करके रूद्रता।
निज देश के जो वीर शत्रुओं को काटते,
इनका रहा जो ज्ञानी तेजपूर्ण सहायक,
वह भी चढ़ाई करता बढ़े आगे को तथा,
शत्रु को भस्म करता बने पीर प्रदायक।

मंत्र- अमित्रसेनां मघवन्नस्मांचत्रूयतीमभि।
युवं तानिद्ध वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति।।३।।

काव्यार्थ- अत्यन्त धनी, शत्रु के विनाशकर्ता नृप,
तथा हे ज्ञानी सूर्य से व अग्नि से दाहक;
तुम दोनों मिल अमित्र सेना शत्रुता भरी-
को कर दो भस्म और बनो उसके विनाशक।

मंत्र- प्रसूत इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून्।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विष्वक्सत्यं कृणुहि चित्तमेषाम्।।४।।

काव्यार्थ- परमैश्वर्यधारी महावीर हे राजन्!
यह वज्र हरणशील जिसे तुमने चलाया;
वह शत्रुओं को काटता आगे बढ़े, उनकी-
अत्यन्त ही दुःख-दा रहे पीड़ा भरी काया।
वह वज्र पीछे, सामने, चहुँ ओर भागती,
अरि-सैन्य नाश दे, न रहे रंच भी छाया;
घबरा के भाग जायें वह चारों दिशाओं में;
हो चित्त मे इस भाँति का आतंक का साया।

मंत्र- इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम्। अग्नेर्वातस्य ध्राज्याता
न्विषूचो वि नाशय।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**
हे महत् ऐश्वर्यधारी, नीतिवान नृप!
शत्रु सेना मन बीच अति व्यग्रता बिठाल तू,
ज्यों प्रचण्ड अग्नि, वायु वन आदिकों को काल,
वैसा उस हेतु बन अति विकराल तू।
आग्नेय अस्त्र दाह वायव्यास्त्र के सुवेग-
द्वारा तत् बीच ऐसी घबराहट पाल तू;
जिससे विमूढ़ बन चहुँ ओर भागें द्रुत,
सर्वदिशि भटकाता, नाश कर डाल तू।।

मंत्र- इन्द्रः सेनां मोहयतु मरुतो घ्वन्त्वोजसा।
चक्षूंष्यग्निरा दत्तां पुनरेतु पराजिता।।६।।

काव्यार्थ- अति ही महान् ऐश्वर्य धारते राजन्,
तू शत्रु-सेना बीच व्यग्र भाव जना दे;
अरू वायु के झोंके समान ओज धार कर,
उसका हनन करते हुए बहु कट धना दे।

उसको दिखाई कुछ भी न दे, उसके हृदय के-
चहुँ ओर एक ऐसी चकाचौंध बना दे;
हो जाय पराजित समस्त शत्रु की सेना,
पीछे को चली जाय, सर्वनाश तना दे।

सूक्त २

मंत्र- अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान्प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम्।
स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः।।१।।

काव्यार्थ- हे अग्नि के समान अग्रगामी, तेजोमय-
राजा! प्रजा के घात शत्रुतादि जला दे;
ज्ञानी महान्! शत्रुओं पे नित नित चढ़ाई कर,
उनहे हृदय के बीच में व्याकुलता-बला दे;
प्रतिकार न कर पाऐं, वह हो जाँय निहत्थे,
तू अपने सैनिकों को ऐसी युद्ध-कला दे।

मंत्र- अयमग्निरमूमुहद्यानि चित्तानि वो हृदि।
वि वो धमत्वोकसः प्र वो धमतु सर्वतः।।२।।

काव्यार्थ- इस अग्नि के समान तेजवान भय ने,
तुज दुर्जनो को पूर्ण रूप अपने वश किया;
तुम्हारे चित्त बीच जो भी ज्ञान था अधम,
उसको सबलता धार कर उलट-पुलट दिया।
वह तुमको दे कठोर दण्ड, देश-निकाला,
तुमने यदि प्रण अपना रच भंग कर लिया;
बाहर करे तुरन्त ही वह सब ही थलों से,
सिर ढकने के लिये तुम्हें मिले नहीं ठिया।

मंत्र- इन्द्र चित्तानि मोहयन्नर्वाङ् आकूत्या चर।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान्विषूचो वि नाशय।।३।।

काव्यार्थ- महाप्रतापी भूप! शत्रुओं के हृदय को,
अत्यन्त ही भयभीत और व्याकुल तू बना दे;
फिर तू हमारे पास आ रक्षा का भार ले,
हितकारी शुभ संकल्प हमें अपना जना दे।
अग्नि व वायु के अति प्रचण्ड वेग सम,
शत्रु विरूद्ध तू समस्त शक्ति तना दे;
विपरीत-गति खलों को घेर सब दिशाओं से,
तू नष्ट-भ्रष्ट करता उन्हें दण्ड घना दे।।

मंत्र- व्याकूतय एषामिताथो चित्तानि मुह्यत। अथो यदद्यैषां हृदि तदेषां निर्जहि।।४।।

काव्यार्थ- हमारे शत्रुओं में अवस्थित हे संकल्पों!
हो जाओ एक दूसरे के घोर विरोधी;
हे शत्रुओं के चित्तों! हों घबराहटें तुममें,
व्याकुलता करे वास, तुमने शांति हो खोदी;
इनके हृदय के बीच जो संकल्प आज है,
कल तक न रहे, वास करे नाश की गोदी।

मंत्र- अमीषां चित्तानि प्रति मोहयन्ती ग्रहाणांका- नयप्ये परेहि।
अभि प्रेहि निर्दहान्सु शौकैर्ग्राह्यामित्रांस्तमसा विध्य शत्रून्।।५।।

काव्यार्थ- हे व्याधि! कण भयभीत शत्रु-सैन्य चित्त को,
तू उसके अंग प्रत्यंग को जकड़ के रख;
चतुर्दिशाओं से तू धावा बोलते हुए,
तत् बीच पराक्रम के साथ चल व अग्र बढ़।
हृदयों को शोकग्रस्त रखते पूर्णतः जला,
नाना प्रकार रोगों औ भयों से ग्रस्त रख;
बहु संधि-वात, मूर्छा रोग द्वारा छेद कर,
अरि सैन्य का विनाश कर विजय का स्वाद चख।

मंत्र- असौ या सेना मरूतः परेषामस्मानैत्यभ्योजसा स्पर्धमाना।
तां विध्यत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्यं ने जानात्।।६।।

काव्यार्थ- हे शूरवरों! यह सबल अरि सेना युद्ध हित,
ललकारते हुए जो वेग धार आ रही;
तुम उसको कर्महीन करने वाले अंध से,
व्याकुल करो कि चेतना उसे रहे नहीं।
मूर्छित से ही हो जाँय वह पुरूषार्थ हीन हो,
अज्ञान से घिरें, नहीं जानें गलत सही;
पहचान भी न पाँय, एक दूसरे को वह,
सब ढूँढते फिरें, कहाँ अपनी रही ठही।

सूक्त ३

मंत्र- अचिक्रदत्स्वपा इह भुवदग्ने व्यचस्व रोदसी अरुची।
युन्जन्तु त्वा मरूतो विश्ववेदस आमुं नय नमसा रातहव्यम्।।१।।

काव्यार्थ-

कवित्त

बहुत पदार्थ मिलते हैं सूर्य पृथिवी से,
यह दोनों जैसे गतिशील रहा करते;
वैसे ही हे अग्नि रूप राजा! प्रजाओं को सुख-
देता चल अपनी गति को महा करते।
तुझको सदैव ज्ञानी, ध्यानी शूरवीर जन-
प्राप्त होते रहें, सर्वदा ही छँहा करते;
भेंट तथा भक्ति के दाता प्रजागण को तू,
नित रख अपने समीप ठहा करते।।

मंत्र- दूरे चित्सन्तमरूषास इन्द्रमा च्यावयन्तु सख्याय विप्रम।
यद् गायत्रीं बृहतीमर्कमस्मै सौत्रामण्या दधृषन्त देवाः।।२।।

काव्यार्थ- दूर देश में भी यदि नीति में कुशल, विज्ञ,
महत् प्रतापी वीर राजा विद्यमान हो;
तब उद्योगी प्रजाजन! आप मित्रता को,
औ सहायता को लायें उस गुण-खान को।

देव-जन देते रहे जैसा श्रेष्ठ व्यवहार,
तत् उत्साह, निज आनन्द उठान को;
वैसा उस पुरूष का गायत्री, वृहती से,
यशगान करें अरू देवें सम्मान को।।

मंत्र- अद्भ्यस्त्वा राजा वरूणो ह्यतु पर्वतेभ्यः।
इन्द्रस्त्वा ह्यतु विड्भ्य आभ्यः श्येनो भूत्वा विशु आ पतेमाः।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

अति श्रेष्ठ शासन का कर्ता बुलाये तुझे,
धारणार्थ प्राण अरू जीवन की तेजता;
अरू तन-पुष्टियों के हेतु तुझको बुलाये,
वैद्यराज, जो कि औषध से रस खेंचता।
इन प्रजाओं के हेतु तुझको बुलाये वीर-
सेनापति, निधिपाति जिनमें न हेचता;
तब राजाधिराज! इन प्रजाजन हेतु,
धारें तीव्र गति, बाज़ वेग ज्यों सहेजता।।

मंत्र- श्येनो हव्यं नयत्वा परस्मादन्यक्षेत्रेअपरूद्धं चरन्तम्।
अश्विना पन्थां कृणुतां सुगंत इमं सजाता अभिसंविशध्वम्।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

रोक दिया गया बलवश परदेस बीच,
जिस आह्वाननीय, सद्गुणशील को;
बाज़ सम शीघ्रगति राजन्! उसे सयत्न-
आप बुलाऐं, न रंच दिखलाऐं ढील को।
सूर्य-चन्द्र नियम के पालक, बनाऐं तव-
मारग सुगम, नित चल तू हठील हो;
इस वीर पुरूष के सब सजातीय जन,
सहयोगी बनें, कहीं रंच न करील हों।।

मंत्र- ह्यन्तु त्वा प्रतिजनाः प्रति मित्रा अवृषत।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्ते विशि क्षेममदीधरन्।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

राजन्! तेरे विरोधी जन हों आधीन तेरे,
तुझको बुलायें, लिये अंतर में पीर हैं;
तेरे हों सहायक व बल को बढायें तेरे,
जितने भी तेरे हितकारी मित्र हीर हैं।।
तेरे राज्य के वायु और अग्नि समान-
गुण वाले जो भी विद्धान्, शूरवीर हैं;
वह तेरी प्रजा अरू तेरे क्षेम हेतु रहें,
ऐसे बन जैसे बादलों में बहु नीर हैं।।

मंत्र- यस्ते हवं विवदत्सजातो यश्च निष्ट्य।
अपान्चमिन्द्र तं कृत्वाथेममिहाव गमय।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे महाप्रतापवान् राजन्! तू हितकारी-
धर्मपूर्ण कार्यों से रंच भी टरे नहीं;
तत् विषय में यदि सजातीय विजातीय,
करता विवाद मिले, कर्म को सरे नहीं।
तब तू विधर्मी उस शान्ति के विनाशक को,
देश-निकाला दे, क्षण भर को रहे नहीं;
यह विज्ञप्ति कर दे प्रसिद्ध, जिससे कि-
धर्म के विरूद्ध कोई चेष्टा करे नहीं।।

सूक्त ४

मंत्र- आ त्वा गन् राष्ट्रं सह वर्चसोदिहि प्राङ्गिशां पतिरेकराट् त्वं वि राज।
सर्वास्त्वा राजन्प्रदिशो ह्यन्तूपसद्यो नमस्यो भवेह।।१।।

काव्यार्थ- हे राजन्! तुझको यह अति ही सुन्दर राष्ट्र मिला है,
अब तू अपना तेज प्रकाशित कर इसकी उन्नति कर।।
पावन प्रमुख स्वामी होकर तू अपनी सकल प्रजा का,
बन सम्राट् राज्य सिंहासन पर शोभा को पाए,
सकल दिशाओं तथा उपदिशाओं से रहने वाले जन;
तुझको ही चाहें, तुझको ही देख सदा हर्षाऐं।
सबके लिये सुलभता से तू प्राप्त रहे, सब तेरा-
सदा करें सत्कार, सराहें तेरी कर्म-कृति को।।

मंत्र- त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः। प्रदिशः पन्च देवीः।
वर्ष्मन्राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि।।२।।

काव्यार्थ- सकल प्रजाजन राज्य चलाने हेतु, श्रेष्ठ नर-पुंगव!
राजा रूप चुनें, स्वीकार करें तुझको विस्मित कर।।
तुझको ही यह दिव्य-गुणों से पूरित पाँच दिशाऐं,
धन-धान्य से पूर्ण राज्य की उन्नति हित स्वीकारें,
तू राष्ट्र के परम उच्च ऐश्वर्यवान् पद ऊपर,
होकर के आरूढ़ अशुभता को कर सदा किनारे।
हे तेजस्वी वीर! तदन्तर राजभक्त हमको तू,
विद्या और सुवर्णादि धन यथायोग्य वितरित कर।।

मंत्र- अच्छ त्वा यन्तु हविनः सजाता अग्निर्दूतो अजिरः सं चरातै।
जायाः पुत्राः सुमनसो भवन्तु बहुं बलिं प्रति पश्यासा उग्रः।।३।।

काव्यार्थ- अग्नि के समान तेजस्वी, ताप प्रदाता राजन्!
यथा योग्य व्यवहार सभी लोगों के साथ किया कर।।
तेरे राष्ट्र में धर्म-पत्नियाँ, कुल शोधक सन्तानें,
सच्चरित्र, शुभ-कर्मी एवं उत्तम मन वाली हों;
सभी प्रजानन परिश्रमी अरू उद्यमशील बने हों,
वह हर्षित हो राजग्राह्य कर आदिक के दानी हों।
उनसे उत्तम भेंट प्राप्त कर, शूरवीर होकर तू,
उन सब जन की पूर्ण सुरक्षा करने हेतु जिया कर।।

मंत्र- अश्विना त्वाग्रे मित्रावरूणोभा विश्वे देवा मरूतस्त्वा ह्वयन्तु।
अधा मनो वसुदेयाय कृणुष्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

आकर्षण द्वारा नभ-सूर्य अरू चन्द्र तथा-
दिन-रात, प्राण औं अपान निज क्रम से;
औं समस्त दिव्य गुणी शूर नियमों में बँध,
करते जो पर-उपकार अति श्रम से।
अग्र पद ऊपर विराजमान राजन्! ये-
मार्ग-दर्शन दें, हटायें तुझे तम से;
दान हेतु थिर मन कर, प्रजानन बीच-
धन बांट, लभ शुभ-कामनाएं हम से।।

मंत्र- आ प्र द्रव परमस्याः परावतः शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम्।
तदयं राजा वरूणस्तथाह स त्वायमह्वत्स उपेदमेहि।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे महीप! दूर देश में भी तू गया है यदि,
तो भी निज राष्ट्र शीघ्र आकर पधार तू;
सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर का यही है तुझे,
वेद द्वारा निर्देश, इसे स्वीकार तू।
इस प्रभु वरूण ने तुझको बुलाया, अस्तु-
सादर यह राज्य-भार आकर सँभार तू;
तेरे लिये सूर्य अरू पृथिवी हों शुभकार,
इनसे अपार सुख-शांति विस्तार तू।।

मंत्र- इन्द्रेन्द्र मनुष्या३ःपरेहि सं ह्यज्ञास्था वरूणैः संविदानः।
स त्वायमह्वत्स्वे सधस्थे स देवान्यक्षत्स उ कल्पयाद्विशः।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे राजाधिराज! तू सामान्य जन भाँति कर-
सब में भ्रमण, जान सब को ही पास से;
राष्ट्र के वरिष्ठ जन, जानते सभी हैं तुझे,
रखता है मेलजोल, तेरे वह खास से।

तुझको बुलाते सभी अपने समाज बीच,
तू भी कर तत् सत्कार उल्लास से;
सहयोग लेता हुआ अपनी प्रजा का, कर-
उनको समर्थ अरू भर देप्रकाश से।।

मंत्र- यथ्या रेवतीर्बहुधा विरूपा सर्वाः संगत्य वरीयस्ते अक्रन्।
तास्त्वा सर्वाः संविदाना ह्वयन्तु दशमीमुग्रः सुमना वशेह।।७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

समार्ग चलती, अतीव धनवान तथा-
भिन्न-भिन्न रूप रंग औं स्वभाव धारती;
ऐसी सब ही प्रजाऐं मिल कर एक मत,
श्रेष्ठतम एक तुझको ही स्वीकारती।
एक मत करती प्रशंसा, तुझको बुलाती,
रक्षक बनाती, राजपद पर बिठारती;
तू भी तेज अरू, शुभ-भाव धार राज्य कर,
शत वर्ष कीर्ति रख नभ में गुँजारती।।

सूक्त ५

मंत्र- आयमगन्पर्णमणिर्बली बलेन प्रमृणत्सपत्नान्।
ओजो देवानां पय ओषधीनां वर्चसा मा जिन्वत्वप्रयावन्।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

प्राप्त हआ है यह पालकों में श्लाघनीय, प्रभु,
निज बल द्वारा वैरियों का नाश करता;
यह इन्द्रियों का बल और औषधों का रस,
रंच मात्र भूल अपने न पास धरता।
ऐसा प्रभु हम पर अति उपकार कर,
इन्द्रियों के बीच बल, ओज रहे भरता;
औषधों के पुष्टिकर रस को प्रदाने हमें,

मुझको प्रदाने निज तेज की अमरता।।

मंत्र- मयि क्षत्रं पर्णमणे, मयि धारयताद्रयिम्।
अहं राष्ट्रस्याभीवर्गे निजो भूयासमुत्तमः।।२।।

काव्यार्थ- मुझ बीच क्षात्र-बल अरू ऐश्वर्य थाप दे तू,
हे पालकों के बीच में सर्वश्रेष्ठ पालक;
निज राष्ट्र के प्रसिद्ध सब आप्त व्यक्तियों में,
मैं बन रहूँ स्वयं ही अति श्रेष्ठता का चालक।

मंत्र- यं निदधुर्वनस्पतौ गृह्यं देवाः प्रिय मणिम्।
तमस्मभ्यं सहायुषा देवा ददतु भर्तवे।।३।।

काव्यार्थ- जो गुप्त, प्रिय, प्रशंसनीय ईश, देवगण ने-
थापा गुणों के रक्षक अति श्रेष्ठ गुणी जन में,
उस ईश को ही आयु अरू पुष्टि वृद्धि हेतु,
थापें महात्मा जन हम व्यक्तियों के मन में।

मंत्र- सोमस्य पर्णः सह उग्रमागन्निन्द्रेण दत्तो वरूणेन शिष्टः।
तं प्रियांस बहु रोचमानो दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।।५।।

काव्यार्थ- ऐश्वर्यधारी देवों द्वारा दिया गया जो,
जो ज्ञान श्रेष्ठ विज्ञों ने हमको सिखाया है;
अमृत से पूर्ण, बल और विक्रम बढ़ाने वाले,
परमेश्वर का रूप जिसने कि दिखाया है।
इस ज्ञान के ही द्वारा मैं आत्मशक्ति पाकर,
अत्यन्त श्रद्धा, भक्ति, रूचि से उसे रिझाऊँ,
नित ही सुकर्म करता, आज्ञा का करूँ पालन,
सौ शरद ऋतु का दीर्घ जीवन सफल बनाऊँ।

मंत्र- आ मारूक्षत्पर्णमणिर्मह्या अरिष्टतातये।
यथाहमुत्तरोऽसान्यर्यम्ण उत संविदः।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पालनकर्ता श्रेष्ठतम प्रभुवर ज्ञानबूढ़।
मम कल्याण हित हुआ है मुझ पर आरूढ़।।

उसके प्रेरण से बनूँ श्रेष्ठों में अति श्रेष्ठ।
अरू मेंधावी ज्ञानियों में बन जाऊँ ज्येष्ठ।।

मंत्र- ये धीवानो रथकाराः कमीरा ये मनीषिणः।
उपस्तीन्पर्ण मह्यं त्वं सर्वान्कृण्वभितो जनान्।।६।।

काव्यार्थ- जो तीक्ष्ण बुद्धि वाले रथों को बनाने वाले,
अरू जो महान् ज्ञानी शिल्पी रहे तुम्हारे;
पालक प्रभू! हमारे कल्याण के लिये तू,
उन सब ही को उपस्थित चहुँ ओर कर हमारे;
मैं उनका बहुत आदर सत्कार रहूँ करता,
व्यापार आदि द्वारा उन्नति करूँ सकारे।

मंत्र- ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्य श्च ये।
उपस्तीन्पर्ण मह्यं त्वं सर्वान्कृण्वभितो जनान्।।७।।

काव्यार्थ- राजा तथा रहे जो उनको बनाने वाले,
जो ग्राम-नेता एवं सूतादि हैं तुम्हारे;
पालक प्रभू हमारे कल्याण के लिये तू,
उन सब ही को उपस्थित चहुँ ओर कर हमारे;
मैं उनसे नित यथोचित व्यवहार रहूँ करता,
अपना सखा बनाकर सहयोग लूँ सकारे।

मंत्र- पर्णोऽसि तनूपानः सयोनिर्वीरो वीरेण मया।
संवत्सरस्य तेजसा तेन बध्नामि त्वा मणे।।८।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

मुझ वीर साथ एक घर के निवासी वीर-
श्लाघनीय ईश, तुझ जैसा अन्य भूप को;
सब की ही सद्कामनाऐं पूर्ण करता तू,
तू ही तन रक्षता है, तुझ सा अनूप को।
यथानियम सबमें निवास करते है प्रभु!
धारता हूँ तेजोमय तेरे उस रूप को;

जिसमें मैं होकर पराक्रमी व तेजपूण्र,
झेलूँ नही रंच बहु कष्ट रूप धूप को।।

सूक्त ६

मंत्र- पुमान्पुंसः परिजातोऽश्वत्थः खदिरादधि।
स हन्तु शतून्मामकान्यानहं द्वेष्मि ये च माम्।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जैसे खैर वृक्ष पर पीपल का वृक्ष उग-
बढ़ता है, होता अत्यन्त गुणवान है;
वैसे वीर पुरूष से उत्पन्न सन्तान,
वीरों साथ बढ़, होती अति वीर्यवान है।
ऐसी वीर सन्तान उनका हनन करे,
मैंने जिन्हें अत्यन्त वैरी लिया मान है,
उनका भी कर दे हनन अविलम्ब, जो कि-
वैरी मानते हैं मुझे, द्वेष रहे छान हैं।।

मंत्र- तानश्वथ निः शृणीहि शत्रून्वैबाधदोधतः।
इन्द्रेण वृत्रघ्ना मेदी मित्रेण वरूणेन च।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

अश्व के समान अति ही बलिष्ठ राजन्! तू-
अन्धकार-शत्रु नभ-सूर्य के समान हो;
स्वीकार करने में जल के समान, तथा-
प्रेरणा प्रदान करने में पवमान हो।
इनके समान गुणवान बन मार डाल,
बाधक बने जो शांतिरोधी जातुधान हों;
तेरे राज्य बीच प्रजाजन हों सदैव सुखी,
होवें भय मुक्त, उन्हें तुझ पे गुमान हो।।

मंत्र- यथाश्वत्थ निरभनोऽन्तर्महत्यर्णवे।
एवा तान्त्सर्वान्निभङ्ग्धि यानहंद्वेष्मि ये च माम्।।३।।

काव्यार्थ- वीरों के बीच में सदैव घिर रहे है शूर! तू-
जैसे महत् समुद्र को नौका से भेदता;
वैसे अरि-समुद्र पार करने के हेतु,
दृढ़ होके तू उसे रहे सदैव छेड़ता;
तू नष्ट कर उसे, जिसे मैं बैरी जानता,
अरू मुझको बैरी जान जो मुझको कुरेदता।

मंत्र- यः सहमानश्चरसि सासहानइव ऋषभः।
तेनाश्वत्थ त्वया वयं सपत्नान्त्सहिषीमहि।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

गुणी वनस्पति बीच ज्यों पीपल वृक्ष अनूप।
वैसे शूरों बीच में ठहरा तू ही भूप।।
सकल वैरियों को दबा चले वृषभ की भाँति।
तव सहायता से हराऐं हम अरि-दल-पाँति।।

मंत्र- सिनात्वेनान्निर्ऋतिर्मृत्योः पाशैरमोक्यैः।
अश्वत्थ शत्रून्मामकान्यानहं द्वेष्मि ये च माम्।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

शूरवीरों बीच ठहराव लिये राजन! मैं-
जिस दुराचारी व्यक्ति को बैरी जानता;
अथवा जो मुझे निज बैरी हुआ जानता है
रखता है द्वेष, नित ही विरोध तानता।
उसको तू निर्धनता व मृत्यु के अटूट-
पाशों काँध, नष्ट कर देना रह ठानता;
अपनी प्रजा को अभय दान करने में तथा
शत्रु नष्ट करने में रख तू प्रमानता।।

मंत्र- यथाश्वत्थ वानस्पत्यानारोहन्कृणुषेऽधरान्।
एवा मे शत्रोर्मूर्धानं विष्वग्भिन्धि सहस्व च।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अन्य वृक्षों ऊपर उगे हे पीपल के वृक्ष।
उन्हें दबा, निज को उठा लेने में तू दक्ष।।
उसके सम हे वीर तू मम शत्रु-सिर तोड़।
उन्हें जीत सब ओर से, जीवित एक न छोड़।।

मंत्र- तेऽधरान्चः प्र प्लवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात्।
न वैबाध प्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम्।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ज्यों बन्धन से छिन्न हो नौका बहती जाय।
त्यों दुष्टों की पाँति बह, अधोगति को पाय।।
बाधा विविध प्रकार की डाल रहे जो लोग।
वह फिर से लौटें नहीं, रंच न रहने जोग।।

मंत्र- प्रैणान्नुद मनसा प्र चित्तेनोत ब्रह्मणा।
प्रैणान्वृक्षस्य शाखयाश्वत्थस्य नुदामहे।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मनन, ज्ञान अरू वेद की शक्ति धार भरपूर।
मैं इन पापी शत्रुओं को करता हूँ दूर।।
पीपल शाख प्रभाव से करते शत्रु विनाश।
सबलों में थिर शूर ले करते इन्हें हताश।।

सूक्त ७

मंत्र- हरिणयस्य रघुष्यदोऽधि शीर्षणि भेषजम्।
स क्षेत्रियं विषाणया विषूचीनमनीनशत्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

प्रथम अर्थ-

वेग धारकर दौड़ता जो मृग प्रकट लखाय।
मस्तक भीतर उस हिरण के औषध बन जाय।।

ऐसे अति हित से भरे मृग का सींग प्रयोग।
सब प्रकार से नष्ट कर देता क्षेत्रिय रोग।।

नोट- क्षेत्रिय- शरीर वा वंश के रोग

द्वितीय अर्थ-

शीघ्रगामी रवि सम प्रभू, हरण कर रहा अंध।
तद् आश्रय है औषधि, नाशक भय का फन्द।।
प्रभु के वेदापदेश के सींगो का कर योग।
तन के एवं वंश के नष्ट कर दिये रोग।।

मंत्र- अनु त्वा हरिणो वृषा पद्भिश्चतुर्भिरक्रमीत्।
विषाणे वि ष्य गुष्पितं यदस्य क्षेत्रियं ह्रदि।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

प्रथम अर्थ-

हे नर! बलमय हरिण जो तव औषधि का मूल।
चार पैंरो से प्राप्त वह हुआ तेरे अनुकूल।।
गुप्त अवस्था में बसा जो हृदय के बीच।
तू उस क्षेत्रिय रोग को हरिण सींग से मीच।।

द्वितीय अर्थ-दोहा

प्रभु परमैश्वर्यमय, हे नर! तेरे साथ।
पैर जमा आगे बढ़ा लेकर चार पदार्थ।।
तन का एवं वंश का हृदय गुँथा तव रोग।
नष्ट करें प्रभु-दान द्रुत, कर दें तुझे निरोग।।

मंत्र- अदो यदवरोचते चतुष्पक्षमिव च्छदिः।
तेना ते सर्वं क्षेत्रियमङ्गभ्यो नाशयामसि।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

वह जो चार पक्ष के घर समान दिखलाय।
वह हरिण का सींग है, रोग दूर बिठलाय।।
तब अंगों में रह रहे जो तब क्षेत्रिय रोग।
उनको सींग प्रयोग दे, करते तुझे निरोग।।

मंत्र- अमू ये दिवि सुभगे विचृतो नाम तारके।
वि क्षेत्रियस्य मुन्चतामधमं पाशमुत्तमम्।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अन्धकार मोचक तथा अति ऐश्वर्यवान।
वह जो रवि-शशि व्योम में होते हैं द्युतिमान।।
वंश तथा तन रोग के ऊँच नीच के पाश।
दोनो मिल देवें छुड़ा, करें न नर का नाश।।

मंत्र- आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुन्चन्तुक्षेत्रियात्।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सब रोगों में एक ही औषध जल सुखराश।
पीड़ा करता दूर है, करता रोग-विनाश।।
निश्चय ही जब औषधी, सुख को देत जुड़ाय।
तेरे मन अरू वंश का क्षेत्रिय रोग छुड़ाय।।

मंत्र- यदा सुतेः क्रियमाणायाः क्षेत्रियं त्वा व्यानशे।
वेदाहं तस्य भेषजं क्षेत्रियं नाशयामि त्वत्।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

विकृत अन्न, औषध विकृत के काढ़े को सेव।
तूने क्षेत्रिय रोग को पाल लिया स्वमेव।।
मुझे ज्ञात उस रोग की नाशक औषध खास।
तुझमें क्षेत्रिय रोग का उससे करूँ विनाश।।

मंत्र- अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत।
अपास्मत्सर्वं दुर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सूर्य प्रतापी जिस समय किरणों को ले तान।
तारे छिप जायें तथा उषा होवे म्लान।।
तब अनिष्ट सम्पूर्ण ही, हमसे होवें दूर।
तथा क्षेत्रिय रोग भी होवें चकनाचूर।।

सूक्त ८

मंत्र- आ यातु मित्र ऋतुभिः कल्पमानः संवेशयन्पृथिवीमुस्रियाभिः।
अथास्मभ्य वरूणो वायुरग्निर्बृहद्राष्ट्रं संवेश्यं दधातु।।१।।

काव्यार्थ- होकर समर्थ अपने में भली प्रकार से,
ऋतुऐं सुहावनी हमारे राष्ट्र को देता;
करता हुआ प्रकाशमान रश्मियों से भू,
आवे हमारे राष्ट्र सूर्य नाव को खेता।
जल और पवन, अग्नियाँ भली प्रकार से,
उपकार करते रहें इस हमारे राष्ट्र पर;
हमारे लिये ऐसा वृहत शांति प्रदाता,
थिर राष्ट्र करें, जैसे हो हमारा खास घर

मंत्र- धाता रातिः सवितेदं जुषन्तामिन्द्रस्त्वष्टा प्रति हर्यन्तु मे वचः।
हुवे देवी मदितिं शूरपुत्राः सजातानां मध्यमेष्ठा यथासानि।।२।।

काव्यार्थ- जो व्यक्ति ऐश्वर्यवान और हैं दानी,
जो व्यक्ति सबको पालते व पोसते रहते
जो व्यक्ति प्रेरणा प्रदान करते हैं सबको,
जो व्यक्ति विश्वकर्मा कुशल शिल्पी हैं महते।
जो स्त्रियाँ अखण्ड व्रतधारी गुणी हैं,
जो दिव्य गुणी शूरवीर पुत्रों की माता;
अरू विद्या, जिसके बिन मनुष्य एक पशु है,
यह सब मेरा स्वीकारें वचन जो मैं उठाता।
इस भाँति की सहायता यह सब करें मेरी,
जिससे मैं निज समान जन्मे बन्धुओं में रह
इस भाँति की कर पाऊँ प्राप्त योग्यता, जिससे-
स्थान अति सम्मान का पाऊँ विशेष मह।

मंत्र- हुवे सोमं सवितारं नामेभिर्विश्वानादित्याँ अहमुत्तरत्वे।
अयमग्निर्दीदायछीर्धमेव सजातैरिद्धोऽप्रतिब्रुवभ्रिदः।।३।।

काव्यार्थ- ऐश्वर्यधारी, तेजधारी, शूरवीर, औ-
जो सबको रहे प्रेरते विद्वान् व्यक्ति हो;
उन सबको है आह्वान, वे कृपालु हों, जिससे-
मुझे बीच अधिक श्रेष्ठता पाने की शक्ति हो।
आपस में रंचमात्र भी विपरीत न होते,
प्रतिकूल बोलते कभी देते न दिखाई,
उन अपने स्वजातियों का सत्कार मैं करता,
मुझमें जलाऐं अग्नि, करूँ कीर्ति कमाई।

मंत्र- इहेदसाथ न परो गमाथेर्यो गोपाः पुष्टपतिर्वआजत्।
अस्मै कामायोप कामिनीर्विश्वे वो देवा उपसंयन्तु।।४।।

काव्यार्थ- जो विद्या से सम्पन्न है, विद्या को रक्षता,
पोषण का जो स्वामी है, महावीर जो राजा;
वह तुमकों गुणों में प्रवृत्त कर यहीं रखे,
तुम भी न दूर जाओ, यहीं पर करो काजा।
पुरूषार्थी इस राजा की अरू इसके राज्य की,
कीर्ति का उदय होवे, मुख दिशाओं के खिलें;
इस कामना की पूर्ति को समस्त श्रेष्ठ गुण,
शुभ कामनाओं वाली तुम प्रजाओं को मिलें।

मंत्र- सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि।
अमी ये विव्रता स्थन तान्वः सं नमयामसि।।५।।

काव्यार्थ- हों मन तुम्हारे एक जैसे, कर्म एक समान हों,
संकल्प होवें एक जैसे, एक ही को नमान हो।
जो जन परस्पर नित विरूद्व कर्म में संलग्न हों,
सहमत बनें तुमसे, तुम्हारा साथ पाकर मग्न हों।

मंत्र- अहं गृभ्णामि मनसा मनासि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मान एत।।६।।

काव्यार्थ- मैं अपने मन के द्वारा तुम सभी के मनों को,
लेता हूँ खेंच, पूर्णतः वश में किया करूँ,
तुम भी मेरे अनुकूल अपने चित्त बना कर,
आओ यहाँ पर, मैं तुम्हें सुख को दिया करूँ,
निश्चिन्त हो दृढ़ता के साथ तुम चलो पीछे,
उस मार्ग पर, जिस मार्ग मैं चलना लिया करूँ।

सूक्त ६

मंत्र- कर्शफस्य विशफस्य द्यौः पिता पृथिवी माता।
यथाभिचक्र देवास्तथाप कृणुता पुनः।।१।।

काव्यार्थ- सबल पुरूषों! यह लीजै जान।
निर्बल पुरूष तुम्हारे ही हैं भाई, तुम्हारे समान।।
एक तुम्हारे मात-पिता हैं, पृथिवी और द्यु-लोक;
अस्तु निबल भाई के द्रुत ही नष्ट करो सब शोक;
तुम हो दिव्य, पूर्व में तुमने अरि को किया विरान।।
तद् रीति तुम पुनः अविद्या, निर्धनतादि अरि को,
जो जन कष्ट निबल को देते, मृत्यु लोक में धरि दो;
निर्बल जन की ढाल बनो तुम, उनका करके त्राण।।

मंत्र- अन्श्रेष्माणो अधारयन्तथा तन्मनुना कृतम्।
कृणोमि ब्रधि निष्कन्धं मुष्काबर्हो गवामिव।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**
जगत् को धार रहा सर्वज्ञ परमेश,
सब ही पे अपनी कृपा की छँहा करता;
उस ही प्रकार निर्वैरी धर्मात्मा भी,
करना सदैव उपकार चहा करता।
उस ही प्रकार मैं भी विघ्न कर शक्तिहीन,
जगत् की उन्नति में लीन रहा करता;
कृषक ज्यों बैल रहे अण्डकोष तोड़, उसे-
निर्बल बना कर कृषि-कर्म महा करता।।

मंत्र- पिशङ्गे सूने खृगलं तदा बध्नन्ति वेधसः।
श्रवस्युं शुष्मं काबवं वध्रिं कृण्वन्तु बन्धुरः।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**
ज्ञानी जन सर्वदा ही छोटे-छोटे सूत्रों का-
मेल कर अति दृढ़ सूत्र को महा करें;
अरू अत्यन्त कष्टदायक विपत्तियों को,
बाँध सब ओर से उन्हें सदा दहा करें।
इससे सदैव बन्धु जन सुखा देने वाले,
स्तुति-विनाशक, जो नित ही डहा करें;
ऐसे अपने कुकर्म में प्रसिद्ध शत्रुओं को,
निर्वीय कर सुख भोगते रहा करें।।

मंत्र- येना श्रवस्यवश्चरथ देवाइवासुरमायया।
शुनां कपिरिन दूषणो बन्धुरा काबवस्य च।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**
ये यशस्वी पुरूषों! प्रकाशमान ईश द्वारा,
तुममें हुई जो बुद्धि, नीति की प्रधानता;
जिसके आधार पर जयशील व्यक्ति सम,
आचरण कर प्राप्त करते महानता।
उसी नीति और बुद्धि-बल के आधार पर,
शत्रुओं का भय तुमको न रंच सानता;
जैसे वृक्ष ऊपर निवास करता जो कपि,
वह श्वान से कभी न रंच भय मानता।।

मंत्र- दृष्ट्यै हि त्वा मन्तस्यामि दूषयिष्यामि काबवम्।
उदाशवो रथाइव शपथेभिः सरिष्यथ।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**
स्तुतिनाशक! दुष्टता रहे न तेरे काँध।
अस्तु दोष कर सिद्ध मैं तुझको दूँगा बाँध।।

शीघ्रगामी रथ भाँति मम दण्ड वचन से नीच।
तुम सब द्रुत ही जाओगे दृढ़ बन्धन के बीच।।

मंत्र- एकशतं विष्कन्धानि विष्ठितां पृथिवीमनु।
तेषांत्वामग्र उज्जहरूर्मणिं विष्कन्धदूषणम्।।६।।

काव्यार्थ- राजन्। धरा पर एक सौ एक विघ्न हैं फैले,
उनके समक्ष विघ्न-विनाशक मणि तू हैं;
देवों ने कष्ट हरने में सबसे बड़ा माना,
तुझसे ही सुरक्षित रही यह सोहनी भू है।

सूक्त १०

मंत्र प्रथमा ह व्युवास स धेनुरभवद्यमे।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम्।।१।।

काव्यार्थ-- **गीत**

यह प्रथम उषा उदय को प्राप्त।
तृप्ति प्रदाता गाय दुधारु, दुखड़े करे समाप्त।।
सुनियमों के पालनकर्ता हम लोगों की यह पोषक,
देकर दुग्ध उत्तरोत्तर यह, बने हमारी तोषक;
यह अधिकाधिक शक्ति पराक्रम को सभी में व्याप्त।।

मंत्र यां देवाः प्रतिन्नदन्ति रात्रिं धेनुमुपायतीम्।
संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमंगली।।२।।

काव्यार्थ- **गीत**

रात्रि है हमको धेनु समान।
इस आगत को देख देव-जन पाते मोद महान्।।
सबको वास-प्रदाता प्रभु की यह है पालन-शक्ति,
उत्तम मंगल करे हमारा, करते इसकी भक्ति;
सबके दुःख विनाशे सारे, सुख की करे उठान।।

मंत्र- संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपास्महे।
सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज।।३।।

काव्यार्थ- **गीत**

रात्रि सुखदायिनी तू अनन्त।
मेट सभी चिन्ताऐं उनके तोड़ सभी विष दन्त।।
सबको वास-प्रदाता प्रभु की प्रतिनिधि तुझको माना,
इस हेतु हम तुझे सुमरते, स्तुति करते नाना;
आयुष्मती प्रजा को दे तू धन की पुष्टि अनन्त।।

मंत्र- इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा।
महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

रात्रि वह बेला है जो प्रकटी प्रथम बार,
अन्यों के साथ संयुक्त हुई चलती,
इस बेला भीतर भरी अनेक शक्तियाँ हैं,
अति ही महत्वपूर्ण जो कि दुःख दलतीं।
जीत कर पूर्ण रूप सब ही अनर्थ यह,
तद् रीति विजय यश को बढ़ाती फलती;
जैसे नव कुल-वधू पहली सन्तान जन,
कुल-यश को बढ़ाती हुई सदा पलती।।

मंत्र- वानस्पत्याग्रावाणो घोषमक्रत हविष्कृण्वन्तः परिवत्सरीणम्।
एकाष्टके सुप्रजसः सुवीरा वयं स्याम पतयो रयीणाम्।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे प्रकृति! वह प्रभु जो सभी को देता वास,
तेरे द्वारा उसने रचे सभी पदार्थ हैं,
उस वनपति-रक्षक प्रभु से जो जुड़े-
तत्व-ज्ञानी, जीते जो कि जगत्-हितार्थ हैं।
उनकी है घोषणा कि ज्ञान औं प्रयोग द्वारा,
देती तू ही सर्व सुख, व्यर्थ नहीं सार्थ है;
हे अकेली व्याप्ति वाली प्रकृति! हमें दे शुभ-
धन, सन्तान वीर तू ही तो यथार्थ है।।

मंत्र- इडायास्पदं घृतवत्सरीसृपं जातवेदः प्रति हव्या गृभाय।
ये ग्राम्या पशवो विश्वरूपास्तेषां सप्तानां मयि रन्तिरस्तु।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

विज्ञानवान् हे पुरुष! तू जगत् बीच,
उत्पन्न सब ही पदार्थों को जानता;
प्रकृति के सार-युत स्रवित स्थान से तू,
प्राप्त कर देने योग्य वस्तु जिन्हें मानता।
नाना रूप-रंग वाले ग्रामवासी प्राणी सब,
तेरा साथ गहें, बने प्रेम की प्रधानता;
प्रभु के बनाए सब प्राणियों को सुखी रख,
उन साथ साथ तू भी सुख रह तानता।।

मंत्र- आ मा पुष्टे च पोषे च रात्रि देवानां सुमतौ स्याम।पूर्णा दर्वे
परा पत सुपूर्णा पुनरा पत। सर्वान्यज्ञान्त्संभुंजतीषमूर्जं न आ भर।।७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

रात्रि रूप प्रकृति! विपुल पुष्टि शक्ति दे तू,
हम देव-जन की सुमति में रहा करे;
दुःख की दलक तू चमस रूप, पूर्ण भर-
आहुति के हेतु आगे बढ़ना चहा करे।
अरु तू पुनः दैवी शक्ति निज में समेट,
लौट कर शुभ साथ हमरा गहा करे;
सब पूजनीय गुण ठीक-ठीक पालती तू,
हम हेतु अन्न और बल को महा करे।।

मंत्र- आयमगन्त्संवत्सरः पतिरेकाष्टके तव।
सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज।।८।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

एक अकेली व्याप्त हे प्रकृति! तेरा पति है प्रभुवर,
जीवों को स्थान यथावत् जो कि दिया करता है;
प्रजा हमारी को तू दीर्घ आयु, तथा धन-वृद्धि,
पुष्टि साथ संयुक्त बना जो सकल कष्ट हरता है।

मंत्र- ऋतुन्यज ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान्!
समाः संवत्सरान्मासान्भूतस्य पतये यजे।।९।।

काव्यार्थ-- **कवित्त**

तव ज्ञान प्राप्त कर मैं समस्त ऋतुओं औ-
ऋतुओं के स्वामी सूर्य, चन्द्र वायु आदि करेद्ध
नाना ऋतुओं में उत्पन्न जो पदार्थ होते,
यथाविधि वास देने वाले मास आदिको।
वर्ष, सम-वर्ष औ अयन-वर्षकाल भाग,
सब अनुकूल गतिशील क्रिया आदि को;
इन सब ही को मैं जगत के पति के लिये-
करता समर्पित हूं, नाशन को व्याधि को।।

मंत्र- ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे।।१०।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे प्रकृति! जगत् को उत्पन्न करती तू,
तुझको मैं भिन्न भिन्न ऋतुओं के वास्ते,
ऋतुओं में उत्पन्न नाना पदार्थो के हेतु,
भिन्न-भिन्न बारह महीनों के वास्ते।
यथावत् वास-दाता वर्षो के सुधार हेतु,
प्रतिक्षण उपकार करते हुलासते;
अर्पित करता हूँ धाता औ विधाता तथा-
समृद्धि दाता जग-पति प्रभु वास्ते।।

मंत्र इडया जुह्वतो वयं देवान्घृतवता यजे।
गृहानलुभ्यतो वयं सं विशेमोप गोमतः।।११।।

काव्यार्थ- **गीत**

हमारे पूजनीय वह देव।
आत्मदान रूपी यज्ञ को करना जिनकी टेव।।
इसको कर्म सार युत से स्तुत्य ज्ञान ले करते,
उनको सदा पूजते हैं हम, अनुगामी हो तरते;
गउओं युत, भरे पूरे घर रहते सदा स्वमेव।।

मंत्र- एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमानमिन्द्रम्।
तेन देवा व्यसहन्त शत्रून्हन्ता दस्यूनामभवच्छचीपतिः।।१२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

व्यापक अकेली रही प्रकृति ने ऐश्वर्य-
धार ब्रह्म द्वारा लिया वैभव बिठार है;
अरू प्रकटाया परमैश्वर्यवान जीव,
जिसकी कि इन्द्रियाँ प्रकाश रहीं धार हैं।
इस जीव ने गुणों को अपनाया और किया,
दोष रूपी शत्रुओं पर भीष्म प्रहार है;
इस विधि कर्मवीर जीव ने खलों को मार,
प्राप्त किया सुख और आनन्द अपार है।।

मंत्र- इन्द्र पुत्रे सोम पुत्रे दुहितासि प्रतापतेः।
कामानस्माकं पूरय प्रति गृह्णाहि नो हविः।।१३।।

काव्यार्थ- हे सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र वाली,
हे चन्द्र के समान अति सौम्य पुत्र वाली;
तू है प्रजापति प्रभु के कार्यों की पूरक,
स्वीकार कामना हित हमने जो हवि डाली।

सूक्त ११

मंत्र- मुंचामि त्वा हविषा जीवनाय कामज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्ज ग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम्।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

तेरे सुखपूर्ण दीर्घ जीवन के हेतु, यज्ञ-
द्वारा नाशता हूँ तेरे अज्ञात रोग को,
क्षय रोग राजयक्ष्मा जो हुआ, उसके भी-
नाश हेतु करता हूँ यज्ञ के प्रयोग को।
इसे इस काल जकड़े हुए जो गठिया है,
नष्ट करता वो सिंगरे ही सुख-भोग को;
उससे इसे हे सूर्य अग्नि सम तेजवान-
सद्वैद्यों छुडाओं, नष्ट करो सोग को।।

मंत्र- यदिक्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव।
तमा हरामि निर्ऋतेरूपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय।।२।।

काव्यार्थ- यदि हो समाप्त-आयु का, या मृत्यु निकट हो,
या मृत्यु के अति समीप आ गया हो वह;
तब भी मैं उसको लौटा कर विनाश दशा से,
करता हूँ सुरक्षित उसे शत शरद ऋतुओं मह।

मंत्र- सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम्।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम्।।३।।

काव्यार्थ- सैकड़ों सामर्थ्य के, सहस्र नेत्र के,
शतशः जीवन की शक्ति वाले आत्मदान से;
मैंने उबारा आत्मा को घोर यत्न कर,
जिससे कि मनुज ऊँचा उठे निज स्थान से।
बन कर के ऐश्वर्यवान् कर्म शक्ति से,
दर्शन की शक्ति, जीविका की शक्ति धार कर;
सौ शरदऋतुओं तक पहुँचाए निज शरीर को,
इस देही को प्रत्येक कष्ट से उबार कर।

मंत्र- शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तान्छतमु वसन्तान्।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहर्षिमेनम्।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तू सौ शरद व शीत सौ, सौ वसन्त ऋतु बीच।
निज विकास करता जिये, रखे मृत्यु को भींच।।
मैं तेजस्वी विज्ञ अरू अति ऐश्वर्यवान्।
सब का गति-दाता तथा रक्षक रहा महान्।।
आत्म-दान जो है लिये जीवन-शक्ति-उजास।
उससे मैंने कर दिया, तेरा आत्म-विकास।।

मंत्र- प्र विशतं प्राणापानावनड्वावहाविव व्रजम्।
व्यभ्ये यन्तु मृत्युवो यानाहुरितरान्छतम्।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

इस नर-तन में यों करो प्राणापान प्रवेश।
ज्यों गौ-शाला में किया करते बैल प्रवेश।।
अन्य अपर अपमृत्यु इससे भागें अति दूर।
शत प्रकार की जो रहीं, करें कामना चूर।।

मंत्र- इहैव स्तं प्राणापानौ माप गातमितो युवम्।
शरीरमस्यांगानि जरसे वहतं पुनः।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

प्राण अपान तुम नित रहो, इस नर के तन साथ।
इससे दूर न जा, चलो पकड़े इसका हाथ।।
इसके तन के साथ ही इसके सारे अंग।
पूर्ण जरायु तक चलें, रहें इसी के संग।।

मंत्र- जरायै त्वा परि ददामि जरायै नि धुवामि त्वा।
जरा त्वा भद्रा नेष्ट व्यभ्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरांछतम्।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जरा-काल के हेतु मैं अर्पित करता तोय।
दीर्घ आयु देता तुझे, व्यर्थ न इसको खोय।।
जरा-काल तेरा करे तुझको सुख से पूर।
मृत्यु के कारण सभी, होवें चकनाचूर।।

अन्य अपर अपमृत्यु, लख तुझको भागें दूर।
शत प्रकार की जो रहीं, करें कामना चूर।।

मंत्र- अभित्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्जवा।
यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशयां।
तं ते सत्यस्य हस्ताभ्या मुदमुञ्चद् बृहस्पतिः।।८।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जैसे बलवान एक बैल को सदैव हम,
रस्सी से बांध देते एक स्थान पर,
वैसे तेरे साथ वृद्धावस्था की पूर्ण आयु
बांध दी गयी है पूर्ण रूप पहचान कर
तेरे उत्पन्न होते ही है बांध दिया,
जिस मृत्यु ने तुझे समीप हुआ जानकर,
उस अपमृत्यु से तुझे बृहस्पति प्रभु ने
सत्य के हाथों छुड़ा डाला भक्त मानकर।।

सूक्त १२

मंत्र- इहैव ध्रुवां नि मिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठाति घृतमुक्षमाणा।
तां त्वा शाले सर्ववीराः सुवीरा अरिष्टवीरा उप सं चरेम।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

यह थल, शाला निर्माण हेतु अति श्रेष्ठ,
अस्तु एक सुदृढ़ सी शाला यहाँ रचता;
वह शाला घी से सींचती हो मेरा परिवार,
स्वास्थ्य-प्रद भोज्य, शाला बीच रहे खचता।
थिरता गहे वह कल्याण हेतु चिर-काल,
कोई कष्ट उसमें रहे न शेष बचता;
होवें सब वीर और सुवीर अरू दृढ़ वीर,
प्राप्त कर पौरूष हरेक रहे जँचता।।

मंत्र- **इहैव ध्रुवा प्रति तिष्ट शालेऽश्वावती गोमती सूनृतावती।**
ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

घोड़े, गायें और प्रिय सत्य वाणियाँ धार।
हे शाला निज को यहीं दृढ़ता से बैठार।।
बहु अन्न, बहु घृत तथा बहु दुग्ध को काढ़।
हमें महत् सौभाग्य दे, ऊँची बनकर ठाढ़।।

मंत्र- **धरूण्यसि शाले बृहच्छन्दाः पूतिधान्या।**
आ त्वा वत्सो गमेदा कुमार आ धेनवः सायमास्पन्दमानाः।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

शाले! तू निज में रखे पूत धान्य भण्डार।
तेरे कक्षों की छतें होवें वृहदाकार।।
बछड़े, बालक घूमते होवें तेरे ठाँय।
तथा मोद में कूदती सांय गायें आँय।

मंत्र- **इमां शालां सविता वायुरिन्द्रो बृहस्पतिर्नि मिनोतु प्रजानन्।**
उक्षन्तूद्ना मरूतो घृतेन भगो नो राजा नि कृषिं तनोतु।।४।।

काव्यार्थ- इस शाला को बनाये बहु ऐश्वर्य धारी,
बहु बेगवान कर्मी कठिनाईयों के भक्षक;
निर्माण कार्य को गति देता प्रधान व्यक्ति,
अरू वृहद् कार्यो का अति ज्ञानवान रक्षक।
जल और घी के हेतु स्थान यहाँ पर हो,
अति शूर विज्ञ सींचे घी और जल के द्वारा;
सौभाग्य शाली राजा, निर्वाह हेतु कृषि का-
विस्तार करता सबको देता रहे सहारा।

मंत्र- **मानस्य पत्नि शरणा स्योना देवी देवेभिर्निमितास्यग्रे।**
तृणं वसाना सुमना असस्त्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिंदाः।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे शाले सुखदायिनी दिव्य प्रकाश युक्त।
शरण प्रदायिनी, मान की रक्षा करती ठुक्त।।
गृह-निर्माण में कुशल विश्वकर्मा विद्वान्।
तू उसके द्वारा बनी सम्मुख वर्तमान।।
तृण वसना शाले! धरे मन में मोद प्रकाम।
हमको वीरों सहित कर धन सम्पत्ति प्रदान।।

मंत्र- **ऋतेन स्थूणामधि रोह वंशोग्रो विराजन्नप वृङ्.क्ष्व शत्रून्।**
मा ते रिषन्नुपसत्तारो गृहाणां शाले शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

शाला निर्माण में लगे है बाँस, शाला को तू-
ऊँचा बनाने के हेतु सत्य-टेक चढ़ जा;
शाला निर्माण हेतु होकर विशेष दृढ़,
ज्योतिपूर्ण शाला बना, शत्रु से तू लड़ जा।
नित ही प्रसन्नता प्रदायिनी हे शाले! तेरे-
वासी न हों दुःखी, उन्हें सुख से तू मढ़ जा,
वीर पुरुषों को रखते हुए हमारे हेतु
सौ शरद ऋतुओं का जीवन तू जड़ जा।।

मंत्र- **एमां कुमारस्तरूण आ वत्सो जगता सह।**
परिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशैरगुः।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

इस शाला में आयें सब तरूण तथा सब बाल।
अरू गो-सुत चलते हुए गौ आदिक के साथ।।
शहदादि मधुरस भरे शुभ कलशों के साथ।
कलश दही का आ करे शाले! तुझे सनाथ।।

मंत्र- **पूर्णं नारि प्र भर कुम्भमेतं घृतस्य धारामृतेन संभृताम्।**
इमां पातृनमृतेना समङ्.ग्धीष्टा पूर्तमभि रक्षात्येनाम्।।८।।

काव्यार्थ- घृत, दुग्ध आदि नाना अमृत पदार्थ धारे,
हे नारी! तेरी शाला धन-धान्य पूर्ण होवे।।
पूरा भरा यह कुम्भ, अमृत से भरी धारा,
रख इसको तू संभाल कर, पूर्ण रहे सारा;
जो पी रहे हैं उनको रस-पूर किया कर तू,
दानी स्वभाव से बन सबके नयन का तारा।
यज्ञ और दान आदि सब पुण्य कर्म तेरे,
रक्षा करें शाला की, सब शत्रु चूर्ण होवें।।

मंत्र- इमा आपः प्रभराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः।
गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

शाला हित भर शुद्ध जल लाता भली प्रकार।
स्वयं रोग से रहित जो रखता रोग प्रजार।।
मृत्यु निवारक भोज्य की नित नित करके पैठ।
अग्नि सहित मैं शाला में आकर जाता बैठ।।

सूक्त १३

मंत्र- यददः संप्रयतीरहावनदता हते।
तस्मादा नद्योऽनाम स्थ ता वो नामानि सिन्धवः।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सुगमन करती नदियों मेघ हनन के बाद।
प्रमुदित होकर कर रही हो महनीय नाद।।
नदियों! इससे जो हुआ नदी तुम्हारा नाम।
वह तव गुण अनुरूप है, नाद तुम्हारा काम।।

मंत्र- यत्प्रेषिता वरूणोनाच्छीभं समवल्गत।
तदाप्नोदिन्द्रो वो यतीस्तस्मादायो अनुष्ठन।।२।।

काव्यार्थ- सुखद जलराशि हे अभिराम!
प्राप्ति योग्य वस्तु होने से आपः मेरा नाम।
मिल कर चलने लगी जिस समय तू सूर्य के जोर,
तथा फैल जाने को आयी तू पृथिवी की ओर;
तब तुझको कर प्राप्त जीव ने, तुझको किया प्रणाम।।

मंत्र- अपकामं स्यन्दमाना अवीवरत वो हि कम्।
इन्द्रो वः शक्तिभिर्देवीस्तस्माद्वार्नाम वो हितम्।।३।।

काव्यार्थ-- दिव्य गुण वाली हे जलराश!
वरणीय होने से तेरा वारि नाम खास।।
इस जीव ने निज शक्ति से कार्य विशेष हेतु;
वरण किया तुझ व्यर्थ बह रही का भर कर उल्लास।।

मंत्र एको वो देवोऽप्यतिष्टत्स्यन्दमाना यथावशम्।
उदानिषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते।।४।।

काव्यार्थ- सुखद हे जल-प्रवाह तव योग।
ऊर्ध्व श्वास लेने से कहते उदक तुझे सब लोग।।
तुझ स्वेच्छागामी का प्रभु ही एक अधिष्ठाता है,
तत् प्रताप से रवि द्वारा तू नभ पर चढ़ जाता है;
हम भी तव अनुरूप करें उस **प्रभुवर से संयोग।।**

मंत्र- आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौ बिभ्रत्याप इत्ताः।
तीव्रो रसो मधुप्रचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत्।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जल कल्याण का प्रदाता अरू घृत आदि-
रसमय पदार्थों का उत्पत्ति मूल हैं;
अग्नि और चन्द्रमा से मिल पुष्टि देता हमें,
मधु रस भरी हुई धाराओं का मूल है।
मधु रस परिपूर्ण तृप्ति करता प्रदान,
द्रुत करता प्रवेश करता न भूल है;
मुझमें बढाये यह जीवन व तेज, तथा-
आगे को बढ़ाए पहुँचाए जहाँ कूल है।।

मंत्र- आदित्पश्याम्युत वा शृणोम्या मा घोषो गच्छति वाङ्.मासाम्।
मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः।।६।।

काव्यार्थ- गतिशील हुए जल मैं तेरे शब्द को सुनता,
निश्चय से देखता हूँ सदा तुझ अनूप को;
इस भाँति चमकता है तू, जैसे हो स्फाटिक,
मोहित हुआ करता हूँ देख तेरे रूप को।
निर्मल पवित्र जल अतीव शुद्धता लिये,
जिस काल पिपासित हुआ तुझको पिया करता;
उस काल मुझे तृप्ति तू करता प्रदान है,
अमृत का पान जैसे तृप्तियाँ दिया करता।

मंत्र- इदं व आपो हृदयामयं वत्स ऋतावरीः।
इद्वेत्थमेत शक्वरीर्यत्रेदं वेशयामि वः।।७।।

काव्यार्थ- जल की हे राशियों! ये मैं तुम्हारा हृदय हूँ,
यह मैं तुम्हारा वत्स हूँ, धाराओं सलिल की;
इस भाँति यहाँ आओ, हे शक्ति से पूर्ण तुम,
नित तव प्रवेश से रहे सुख की कली खिला।

सूक्त १४

मंत्र- सं वो गोष्ठेन सुषदा सं रय्या सं सुभूत्या।
अहर्जातस्य यन्नाम तेना वः सं सृजामसि।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

गउओं! जहाँ पर सुख साथ बैठ सको, तुम्हें-
ऐसी अति श्रेष्ठ गऊ-शाला युक्त करते,
रहने न पाओ तुम प्यासी, अस्तु तुम्हें हम-
पीने योग्य अति श्रेष्ठ जल युक्त करते।
श्रेष्ठ प्रजनन शक्ति युक्त करते हैं, तव-
शुभता के नित ही प्रयत्न ठुक्त करते;
दिन के समय में तव हेतु हम श्रेष्ठतम-
खाद्य-वस्तु प्राप्त कर अवमुक्त करते।।

मंत्र- सं वः सृजत्वर्यमा सं पूषा सं बृहस्पतिः।
समिन्द्रो यो धनंजयो मयि पुष्यत यद्वसु।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

गउओं! तुम्हारा वह पालक गोपाल, जो कि-
बाँध लेता हिंसकों को, तुमको मिला रखे,
तुमको मिला रखे तुम्हारा वह गृहपति,
जो कि तुम्हें पाल-पोस तुमको जिला रखे।
रक्षक बड़ो का विज्ञ, राजा ऐश्वर्यवान्।
धन-जित गऊ वंश वृद्धियाँ दिला रखे;
दुग्ध रूपी धन की हे गउओं मुझे दो दूध,
जो कि मम स्वास्थ्य को सदैव ही खिला रखे।।

मंत्र- संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन्गोष्ठे करीषिणीः।
बिभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपतेन।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

गउओ! इस गोशाला में, तुम मिल रहतीं साथ।
विचरण करतीं निडर हो, भीत न तुम्हें लखात।।
अमृतमय रस धारती, देती गोबर खाद।
रोग हीन बन आओ तुम, दो हमको आह्लाद।।

मंत्र- इहैव गाव एतने हो शकेव पुष्यत।
इहैवोत प्र जायध्वं मयि संज्ञानमस्तु वः।।४।।

काव्यार्थ- गउओं! समर्थ एक गृह-पत्नि हो जैसे,
वैसे इसी गोशाला, यहाँ पर ही आओ तुम;
अरू जैसे वह प्रसन्न हुई करती है पोषण,
पोषण में हमारे उसी विधि मन लगाओ तुम।
सन्तान जनो तुम यहाँ रहते, यहीं बढ़ो,
मुझ पर सदैव नेह की वर्षा किया करो;
अरू मैं तुम्हारी भाँति त्याग धार, तुम्हारे-
पालन के हेतु नित करूँ अपना जिया खरो।

मंत्र- शिवो वो गोष्ठो भवतु शारिशाकेव पुष्यत।
इहैवोत प्र जायध्वं मया वः सं सृजामसि।।५।।

काव्यार्थ- गोशाला तुम्हारी तुम्हें हितकारिणी होवे,
सन्तान जनो तुम यहाँ, रह कर यहीं बढ़ो;
साठी की फ़सल मात्र साठ दिन में पके ज्यों,
लघु सेवा से वैसे हमें दुग्धादि से मढ़ो।
तुम गउओं के स्वामी जो बने हम मनुष्य हैं,
वह हम स्वयं तुम्हारी व्यवस्थाऐं देखते,
हम अपने साथ तुमको मिलाये हुए रखते,
संकट जो आते तुमपे, उन्हें दूर फेंकते।

मंत्र- मया गावो गोपतिना सचध्वमयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णु।
रायस्पोषेण बहुला भवन्तीर्जीवा। जीवन्ती रूप वः सदेम।।६।।

काव्यार्थ- मुझ गोपति के साथ हे गउओं! मिली रहो,
पोषण तुम्हारा करने को गोशाला यहाँ है;
शोभा बढ़ाती, बढ़ती तथा जीवती हुई,
पाते रहें तुमको, तुम्हारे जैसा कहाँ है।

सूक्त १५

मंत्र- इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि स न एतु पुरएता नो अस्तु।
नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम्।।१।।

काव्यार्थ- मैं महत् ऐश्वर्यवान्, सूझ-बूझ के,
व्यापार में कुशल रहे वाणिक् को प्रेरता;
वह आये हमारे लिये, अगुआ बने अपना,
व्यापार के शत्रु को रहे नित्य घेरता।
मार्ग पर लूट करने वाले पशु-प्रवृत्ति के,
जो डाकू लुटेरे हमारे धन को लूटते;
उन सबको कर दे नष्ट वह समर्थ, और हमें-
बहु धन प्रदाने, हम न रहें रंच टूटते।

मंत्र- ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति।
ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमाहराणि।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**
विद्वान् व्यापारियों के यानों के हेतु।
द्यु पृथिवी में संचरित मार्ग दिखाई देतु।।
मुझको दे घी दूध वह तृप्त करें सब पाथ।
उनसे कर व्यापार मैं लौटूँ धन के साथ।।

मंत्र- इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम्।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**
अग्नि सम हे अतीव तेजवान् विद्वान!
लाभ प्राप्ति की मैं मन बीच चाह करता;
अरू बल प्राप्ति हेतु यज्ञ करता हुआ मैं,
समिधा, सामग्री पूत घृत दाह करता।
जिससे परम ब्रहम दत्त व्यवहार पटु-
थिर बुद्धि की मैं वन्दना अथाह करता;
सैकड़ों वाणिज्य अरू उद्योगों में हो समर्थ,
दीनता को नाश, ऐश्वर्य रहूँ धरता।।

मंत्र- इमामग्ने शरणिं मीमृषो नो यमध्वानमगाम दूरम्।
शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु।
इदं हव्यं संविदानौ जुषेथां शुनं नो अस्तु चरितमुत्थिंत च।।४।।

काव्यार्थ- अग्नि के समान तेजस्वी हे विद्वान्! वणिक हम,
अपने घर से बहुत दूर चलकर विदेश आये हैं;
यहाँ कोई हमसे त्रुटि होती तो उसको हम अपनी-
चूक मानकर तव सम्मति द्वारा सुधार लाये हैं।
जो व्यापार यहाँ पर हम कर रहे, लाभप्रद होवे,
क्रय में होवे लाभ हमें, विक्रय में लाभ कमायें;
हमको अपना तथा अपर-व्यवहार लाभदायक हो,
हम दोनों मतैक्य द्वारा इस हवि से आभ जमाऐं।

मंत्र- येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः।
तन्ये भूयो भवतु मा कनीयोऽग्ने सातघ्नो देवान्हविषा नि षेध।।५।।

काव्यार्थ- हे व्यवहार कुशल व्यापारी! सुनो, मूलधन से धन-
पाने हित मैं जिस धन से व्यापार चलाया करता;
वह धन मम व्यापार कर्म के लिये नहीं कम होवे,
मेरे कोष को वह दिन प्रतिदिन अधिकाधिक हो भरता।
हे अग्नि समान तेजस्वी, प्रखर बुद्धि के विद्वन्!
मैं जो यह व्यापार कर्म रूपी कर हवन रहा हूँ,
इससे हो संतुष्ट, मेरे व्यापार-लाभ के नाशक,
मति मन्धों को दूर भगा, मैं **तेरी** शरण लहा हूँ।

मंत्र- येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः।
तस्मिन्म इन्द्रो रूचिमा दधातु प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः।।६।।

काव्यार्थ- हे व्यापारी जनो! मूलधान से धन अर्जन इच्छुक
मैं अपने जिस धन के द्वारा निज व्यापार चलाता;
उस धन में मुझको ऐश्वर्यवान, शान्त, तेजस्वी,
अति समर्थ प्रधान पुरु, रूचि देकर रहे ढलाता।

मंत्र- उप त्वा नमसा वयं होतर्वैश्वानर स्तुमः।
स नः प्रतास्वात्मसु गोषु प्राणेषु जागृहि।।७।।

काव्यार्थ- हे दानशील! सबके नायक! तुझे नमन है,
पहनाते तुझे सादर हम स्तवन का गहना;
वह तू हमारी आत्मा, प्राण तथा प्रजाजन,
गौ आदि के रक्षण को नित जागते ही रहना।

मंत्र- विश्वाहा ते सदमिद्धरेमाश्वायेव तिष्ठते जातवेदः।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम।।८।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

शुभ धन वाले हे प्रधान! हम सब दिन,
तव लक्ष्य कारण समाज भरते रहें;

अग्नि सम विज्ञ! हम धन-पुष्टि, अन्न द्वारा,
शुभ रीति आनन्द अपार करते रहें।
जैसे अश्व-शाला मध्य, एक स्थान बँधे-
अश्व का हम नित नित पेट भरते रहें,
वैसे हम प्रतिदिन व्यापार द्वारा तेरी-
शक्ति बढ़ा आनन्द के बीच तरते रहें।।

सूक्त १६

मंत्र- प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरूणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रूद्रं हवामहे।।१।।

काव्यार्थ- प्यारे प्रभु की स्तुति हम प्रातः काल करते।।
वह अग्नि-रूप प्याारा परमैश्वर्य धारी,
वरणीय सर्वव्यापक, वह मित्र है हमारा;
वह सर्वशक्तिमान, भजनीय, जगत्-पोषक,
सबका ही श्रेष्ठ पालक, भक्तों की सोम धारा।
दुष्टों को रूद्र भारी, उससे हैं दुष्ट डरते।।

मंत्र- प्रातर्जितं भगमुग्रं हवामहे वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह।।२।।

काव्यार्थ- जयशील, तेजधारी, ब्रह्मण्ड, पूतकर्ता,
धाता विशेष विधि से, सब वैभवों का दाता;
धारक सकल दिशाओं का, सभी का स्वामी,
दुष्टों को दण्ड देता, भजनीय, सर्व-ज्ञाता।
सेवक उसी के बनकर, उसको बरवान तरते।।

मंत्र- भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र वृभिर्नृवन्तः स्याम।।३।।

काव्यार्थ- हे सबके बड़े नेता, हे सत्य-सिद्धि दाता,
प्रभुवर! हमारी शुद्ध इस बुद्धि को बढ़ाऐं;
रक्षा करें हमारी, गौर अश्व वृद्धि से मढ़ाऐं।
हम श्रेष्ठ व्यक्तियों से युत हो रहें विचरते।।

मंत्र- उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रयित्व उत मध्ये अह्नाम्।
उतोदितौ मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम्।।४।।

काव्यार्थ- प्रभुवर! हमारे ऐसे शुभकर्म रहें, जिनसे-
इस प्रातः के समय में हम भाग्यवान् होवें;
जिससे हों भाग्यवान् मध्यह्न और सांय,
हममें सदैव ऐसा शुभ-कर्म-ज्ञान बोवें।
नित भोर देव-मति में बुद्धि को रहें धरते।।

मंत्र- भग एव भगवाँ अस्तु देवस्तेना वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीमि स नो भग पुरएता भवेह।।५।।

काव्यार्थ- भगवान् हे भगदेव! हम सबके साथ रहिये,
करिये सहायता, हम हो जाँय भाग्यशाली;
ऐसे तुम्ही को भगवत्, हम सर्वरीति भजते,
हमको सुमार्ग डालें, बन पाऐं ना कुचाली।
मुखिया बनो हमारे, तुमको भूपाल वरते।।

मंत्र- समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय।
अर्वाचीनं वसुविदं मे रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु।।६।।

काव्यार्थ- पग थापने को चाहे शुभ भूमि अश्व जैसे,
वैसे सुकर्म मेरे धनपति प्रभु से जोड़े;
शुभ रीति यज्ञ हेतु झुकती रहें उषाऐं,
ऐश्वर्यवान् प्रभु प्रति, मुझको सुकर्म मोड़े।।
जैसे कि अश्व रथ को लाने में नहीं टरते।।

मंत्र- अश्वातीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।७।।

काव्यार्थ- गौ, अश्व, वीर-जन युत कल्याण-दा उषाऐं,
करती रहें प्रकाशित आवास को हमारे;
करती रहें सदा ही घृत प्राप्त यह उषाऐं,
पय पान करा हमको, करती रहें उजारे।।
रक्षा करें हमारी, दुःख-दैन्य रहें डरते।।

सूक्त १७

मंत्र- सीरा युंजन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक्। धीरा देवेषु सुम्नयौ।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

व्यवहारी जन कर सुखी, सुख पाने के हेतु।
कृषक बुद्विमान सदा उपज अन्न की लेतु।।
करके खेत तैयार वह, अपने हल के जोर।
अलग अलग कर जुओं को फैलाते दुहु ओर।।

मंत्र- युनक्त सीरा वि युगा तनोज कृते योनौ वपतेह बीजम्।
विराजः इनुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमा यवन्।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे शोभाधारी कृषक! अपने हल लो जोड़।
अरू फैलाओ जुओं को, रखिये कमी न छोड़।।
भूमि को तैयार कर, बीज बोइये पूर।
हम हेतु तव अन्न की फसल होय भरपूर।।
हँसुए भी लाऐं निकट शुभ परिपक्व अन्न।
भरे खेत खलिहान लख तव मन होय प्रसन्न।।

मंत्र- लाङ्गलं पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरू।
उदिद्वपतु गामविं प्रस्थावद् रथवाहनं पीवरीं च प्रफर्व्यम्।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

कृषि कर्म हतु हल हो कठोर फार वाला,
अमृत से पूर्ण लकड़ी की लगी मूठ हो;
जिसको चलाना होवे सरल व सुखदायी,
भूमि को बढ़ाता, पुष्ट करता अटूट हो।
यह हल शीघ्रगामी रथवाह अश्व आदि-
को प्रदाने चारा, पेट भरने की छूट हो;
गाय-बैल, भेड़-बकरी व नर-नारियों को-
भोजन दे पुष्ट करें, रंच नहीं रूठ हो।।

मंत्र- इन्द्र सीतां नि गृह्णातु तां पूषाभि रक्षतु।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम्।।४।।

काव्यार्थ- हल में लगी फार द्वारा जब रेखाओं को खोद,
बीज बो चुके यथा-रीत से भूमि जातने वाला;
तब वह दबा पटेले द्वारा करे खेत को चौरस,
अरू रखवाली करे खेत की पोषण करने वाला।

काव्यार्थ- **दोहा**

यथा समय सिंचित हुई धरती धन की खान।
उत्तम उत्तम क्रिया भर, हमें करे धीमान।।

मंत्र- शुनं सुफाला वि तुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अनु यन्तु वाहान्।
शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्ला ओषधीः कर्तमस्मै।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सुख से खोदें भूमि को हल के सुन्दर फाल।
बैलों पीछे कृषक हो, चलता सुखकार चाल।।
हे वायु अरू सूर्य पर-उपकारी अति सुष्ट।
जल से करते हो सकल जीवों को संतुष्ट।।
तुम दोनों इस कृषक को करने को सम्पन्न।
धान्यादि औषधि सुफल युत करिये उत्पन्न।।

मंत्र- शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लांगलम्।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गयः।।६।।

काव्यार्थ- होवें किसान सब सुखी, अरू बैल सुख को प्राप्त हों,
जो रस्सियाँ हल में बाँधी, उन बीच भी सुख व्याप्त हो;
उपकार करते हल सदा, कृषि कर्म को सुख से करें,
चाबुक चले सुख पूर्वक, वह तुष्टि दे, दुःख को हरे।

मंत्र- शुनासीरेह स्म पे जुषेथाम्। यछिवि चक्रथुः पयस्तेनेमामुप सिंचतम्।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

वायु, सूर्प! स्वीकारिये मेरी विनय तव बीच।
स्वयं बनाये गगन-जल से दो भूमि सींच।।

मंत्र- सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव।
यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः।।८।।

काव्यार्थ- सौभाग्यवती, ऐश्वर्यवान् हे धरती,
तू हम सभी के सामने हर काल रहा कर,
हमने तुझे जोता है कृषि कर्म के लिये,
करते हैं तेरी स्तुति, वन्दन को लहा कर।
जिससे तू हमारे लिये हर काल, हर दशा,
हम पर प्रसन्न होवे श्रेष्ठ भाव को धारे
मिलते रहें तुझसे सदैव श्रेष्ठ फल
धन-धान्य भरे हों, अभाव दूर हों सारे।

मंत्र- घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरूद्भिः।
सा नः सीते पयसाभ्या ववृत्स्वोर्जेस्वती घृतवत्पिन्वमाना।।९।।

काव्यार्थ- बोने के लिये बीज को, मधु और घी द्वारा-
सींचा तुझे शुभ रीति से, भली प्रकार से;
सब कर्म-कुशल विज्ञ देवताओं के द्वारा,
अनुकूलता को प्राप्त तू कृषि के विचार से।
ऐसी हे जुती भूमि हमें सींच तू सदा,
घृत युक्त शक्ति दाता अन्न के प्रसार से;
सम्मुख हमारे सर्वादिशि वर्तमान रह,
तू दुग्ध पूर्ण धान्य औं फल को बिठार दे।

सूक्त १८

मंत्र- इमां खनाम्योषधिं वीरूधां बलवत्तमाम्।
यथा सपत्नीं बाधते यथा संविन्दते पतिम्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

उगती हुई लताओं में बलमय औषधि रूप।
जगत् पदार्थो बीच है, ब्रह्म विद्या अनूप।।
जैसे ज्ञानी खोदते हैं औषधि सयत्न।
वैसे मैं हूँ, खोदता ब्रह्म-ज्ञान का रत्न।।
मैं विरोधिनी अविद्या करता इससे दूर।
अरूलभता परमेश्वर सर्व गुणों से पूर।।

मंत्र- उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति।
सपत्नीं से परा णुद पतिं मे केवलं कृधि।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

विस्तृत पालन कर रही अति एश्वर्यवान।
विज्ञों से सेवित है तू, ब्रह्म-विद्या बल खान।।
तू विरोधिनी अविद्या को कर मुझसे दूर।
तथा जगत्-पति को मेरा सेवनीय कर भूर।।

मंत्र- नहि ते नाम जग्राह नो अस्मिन् रमसे पतौ।
परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि।।३।।

काव्यार्थ- तेरा नाम तक भी न लिया है मैंने कभी अविद्या!
तू इस जगत्-पति में किंचित रमण नहीं करती हैं;
बैरिन बनी अविद्या मैंने तुझ विरोध करती को,
पहुँचा दिया बहुत ही दूर, जहाँ अंध तरती है।

मंत्र- उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः। अद्यः सपत्नी या ममाधरा साधरभ्यः।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ब्रह्म-विद्या! अति श्रेष्ठ तू अन्य श्रेष्ठों के बीच।
अरू मैं उत्तम प्राणियों में अति उत्तम चीज।।
ब्रह्म-विद्या! पाकर तुझे सर्वोत्तम हो जाऊँ।
तथा अविद्या नीचतम को लख कर ठुकराऊँ।।

मंत्र- अहमस्मि सहमानाथो त्वमसि सासहिः।
उभे सहस्वती भूत्वा सपत्नीं मे सहावहै।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ब्रह्म-विद्या! जयशील मैं तू भी है जयशील।
दोनों ही जयशील मिल लेंय अविद्या लील।।

मंत्र- अभि तेऽधां सहमानामुप तेऽधां सहीयसीम्।।
मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे मनुष्य! मुझ परमात्मा ने तव हेतु,
प्रबल अविद्या हरा कर रखा हुआ;
तव हेतु अधिक प्रबल ब्रह्म-विद्या का,
विजय रस आदर के साथ है ढका हुआ।
अस्तु तेरा मन मेरी शक्ति जान, मेरे पीछे,
इस भाँति दौड़ता रहे, न हो थका हुआ;
जैसे गाय बछड़े के पीछे दौड़ती है, तथा-
जल निज मार्ग जैसे दौड़ता लखा हुआ।।

सूक्त १९

मंत्र- संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्य१ बलम्।
संशितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुर्येषामस्मि पुरोहितः।।१।।

काव्यार्थ- इन वीरों के इस धन को तथा वेद-ज्ञान को,
मम हेतु बनाया गया है तेज से भरा,
मेरे लिये ही वीर्यत्व और सैन्य-दल,
को सिद्ध किया है, जो शत्रु-नाश में खरा।
इनका विधि से सिद्ध किया श्रेष्ठ राज्य यह-
हो शक्ति से सम्पन्न, नहीं क्षीण हो जरा;
विजयी प्रधान इनका मैं सदैव चाहता,
फूले-फले यह वीर-भोग्या वसुन्धरा।

मंत्र- समहमेषां राष्ट्र स्यामि समोजोवीर्य१बलम्।
वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन कविषाहम्।।२।।

काव्यार्थ- इन निज वीर पुरूषों के इस राष्ट्र को मैं,
अत्यन्त तेजपूर्ण औं सशक्त करता;
इनके पराक्रम व ओज तथा सैन्य-बल,
को मैं जोड़ता हूँ, द्वेष को अशक्त करता;
इस भाँति इस शक्ति वर्द्धन यज्ञ द्वारा,
शत्रुओं के भुजदण्ड काट काट धरता।

मंत्र- नीचैः पद्यन्तामधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान्।
क्षिणामि ब्रह्मणा मित्रानुन्नयामि स्वानहम्।।३।।

काव्यार्थ- हमारे शूरवीर और धनी भूप पर,
जो शत्रु सैन्य साथ ले करते चढ़ाई हैं,
वह होंगे अद्योगति को प्राप्त, नीचे रहेंगे,
उनसे मेरी शक्ति सदैव ही अढ़ाई है।
जो द्वेष-भाव रखते हैं, अमित्र, उनको मैं-
निज वेद-ज्ञान द्वारा यम की भेंट चढ़ाता;
अरू जो हमारे शूरवीर देशभक्त हैं,
मैं उच्च पद प्रदान, उनका मान बढ़ाता।

मंत्र- तीक्ष्णीयांसः परशोरग्नेस्तीक्ष्णतरा उत।
इन्द्रस्य वज्रात तीक्षणीयांसो येषामस्मि पुरोहितः।।४।।

काव्यार्थ- मैं जिनका पुरोहित हूँ या मुखिया बना हुआ,
उनके सभी शस्त्रास्त्र परशु से भी तेज हैं;
वह तीव्र तेज धारती अग्नि से भी हैं दाहक,
अरू इन्द्र के कठोर वज्र से भी तेज हैं।

मंत्र- एशामहूयुधा सं स्याम्येषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि।
एशां क्षत्रमजरमस्तु जिष्णवेऽशां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**
इन साहसी, निडर, अतीव ही पराक्रमी,
वीरों के शस्त्र करता मैं सुतीक्ष्ण और सुदृढ़;

धन-धान्य पूर्ण इनके सबल राष्ट्र को उत्तम,
वीरों से युक्त करके बढ़ाता प्रत्येक क्षण।
इनका सु-क्षात्र तेज हो जयशील व अक्षय,
अरू चित्त बीच दिव्यजन उछाहदेय जड़।।

मंत्र- उद्धर्षन्तां मघवन्वाजिनान्युद्वीराणां जयतामेतु घोषः।
पृथग्घोषा उलुलयः केतुमन्त उदीरताम्।
देवा इन्द्रज्येष्ठा मरूतो यन्तु सेनया।।६।।

काव्यार्थ- हे अतीव धनवान राजन्। तेरा समस्त-
सैन्य-बल सर्वदा उमंग में भरा रहे;
विजय को प्राप्त तेरे सैनिकों का जय घोष,
ऊँचा उठ नील नभ-क्षेत्र में जड़ा रहे।
ध्वज को उठाये सैनिकों का जयकार शब्द,
नाना रूप प्रजा-कर्ण बीच में खड़ा रहे;
दलपति लोगों का समूह सेनापति की-
आज्ञानुसार सैन्य संग में चला रहे।।

मंत्र- प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः।
तीक्ष्णोषवोऽबलधन्वनो हतोग्रायुधा अबलानुग्रबाहवः।।७।।

काव्यार्थ- हे वीरों! चलो, आगे बढ़ो, आक्रमण करो,
जयशील बनो, युद्ध-क्षेत्र में विजय लभो;
तुम्हारे बाहु शौर्य, उग्रता से युक्त हैं,
इन बाहुओं से शत्रु-सैन्य काट दो सभो।
हे तीक्ष्ण बाण वालों, उग्र आयुधों वालों,
बल युक्त भुजा वालों कभी सर्प न पालो;
निर्बल धनुष्य वाले निबल शत्रुओं को तुम,
मारो सदैव, उनको काट काट के डालो।

मंत्र- अवसृष्टा परा पत शख्ये ब्रह्मसंशिते।
जयामित्रान्प्र पद्यस्व जह्मेषां वरं वरं मामीषां मोचि कश्चन।।८।।

काव्यार्थ- युद्ध के आचार्यों द्वारा तीक्ष्ण बनी औ-
धनुर-कला प्रवीण बनी है चतुर सेना;
सेनापति की आज्ञा से छूटी हुई तू,
आगे बहादुरी से झपट, द्वन्द्व है लेना।
तू शीघ्रता से आगे बढ़, शत्रु घेर ले,
कालाग्नि के समान बनी उनको जा निगल;
शत्रु का एक एक मुख्य वीर काट दें,
बचने न पाए कोई भी, जाए नही निकल।

सूक्त २०

मंत्र- अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः।
तं जानन्नग्न आ रोहाधा नो वर्धया रयिम्।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

अग्नि सम विज्ञ सुन, सब ऋतुओं से जुड़ा-
सर्व व्याप्त परमेश्वर जग टेक है;
उससे प्रकट हो प्रकाशमान तू है हुआ,
तेरा उत्पत्ति-स्थान वही एक है।
वह जो कि सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक है,
उसको तू पहचान, वह जग-मेख है;
हम हेतु ऐश्वर्य वृद्धि, निज का विकास-
करता हुआ तू सोच, प्रभु रहा देख है।।

मंत्र- अग्ने अच्छा वदेह न प्रत्यङ्. नः सुमना भव।
प्र णो यच्छ विशां पते धनदा असि नस्त्वम्।।२।।

काव्यार्थ- हे अग्नि के समान विद्वान्! यहाँ हमसे-
स्पष्ट वाणी द्वारा अच्छे प्रकार बोल;
सम्मुख हमारे होकर, हम बीच तू सदा ही,
उत्तम प्रसन्न मन से अपनी मिठास घोल;

रक्षक प्रजा जनो के, तू है धनों का दाता,
हम हेतु धन की गठरी को जरा खोल।

मंत्र प्र णो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्रबृहस्पतिः।
प्र देवीः प्रोत सूनृता रयिं देवी दधातु मे।।३।।

काव्यार्थ- वह वीर व्यक्ति जो नियामक है बैरियों का,
हमको प्रदाने दिव्य शक्तियाँ सुरीति से;
ऐश्वर्यधारी धनवान-व्यक्ति, दानी बहु,
हमको प्रदाने दिव्य शक्तियाँ सुनीति से।
बड़ी-बड़ी विधाऐं धारता जो ज्ञानी, वह-
हमको प्रदाने दिव्य शक्तियाँ सु-प्रीति से;
अरू दिव्य गुण वाली सत्य वाणी शुभ रीति,
ऐश्वर्य को प्रदान, दूर करे भीति से।।

मंत्र- सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे।
आदित्यं सूर्यं ब्रह्मणं च बृहस्पतिम्।।४।।

काव्यार्थ- **गीत**

प्रभू का स्तुतियों द्वारा।

अपनी रक्षा हित करते हैं आवाहन प्यारा।।
ऐश्वर्यो का मूल, वही सबका शासक विद्वान्,
महत् दीप्तिमय, सर्वव्याप्त वह, चला रहा संसार,
बड़ो-बड़ों को वही रक्षता, उससे भय हारा।।
सबसे बडे वेद का वह ही एक प्रकाशक प्रभु है,
सत्य मार्ग अपने भक्तों को वही दिखाता विभु है;
हमको आश्रित रखे, प्रदाने सामर्थ्य-न्यारा।।

मंत्र- त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय।
त्वं नो देव दातवे रयिं दानाय चोदय।।५।।

काव्यार्थ- हे प्रभु! तू विज्ञों द्वारा मम बृद्धि में बहु ज्ञान जड़ा।
संगति-करण, देव-पूजा अरू दान यज्ञ का रंग चढा।।

हममें से जो अति उदार जन दानशील बन रहे खड़ा।
उसके हित हे दाता! तू कर धन प्रेषित पर्याप्त बड़ा।।

मंत्र- इन्द्रवायू उभाविह सुहवेह हवामहे।
यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असछानकामश्च नो भुवत्।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सुख से बुलाने योग्य हैं जैसे रवि, पवमान।
वैसे द्वय स्त्री-पुरूष हैं उनही के समान।।
उन्हें बुलाते हम यहाँ, हमरी संगति पॉय।
उत्तम मन वाले बनें, दान-वृत्ति को लॉय।।

मंत्र- अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय।
वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम्।।७।।

काव्यार्थ- प्रभु देव! दान करने के हेतु इन्हें प्रेरें।।
सक्षम महीप को जो वैरी को रोक देता,
रक्षक बड़ों का वह जो हर सर्व शोक लेता;
नर ऐश्वर्य धारी जिसको कि दीन टेरें।।
सूर्य को, जो है वेग धारक व लोक चालक,
यज्ञ, पवन को जो कि सबके ही रहे पालक;
वेदापदेश जो कि मन की कुवृत्ति फेरें।।

मंत्र- वाजस्य नु प्रसवे सं बभूविमेमा च विश्वा भुवनान्यन्तः।
उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानन् रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हम बल की उत्पत्ति हित ही होते एकत्र।
उस बल भीतर ही बसे सब भुवनों के सत्र।।
प्रभु! अदानी को भी दो दान-शक्ति प्रकाम।।
हमको, निज वीरों सहित बहु धन करो प्रदान।।

मंत्र- दुह्रां मे पंच प्रदिशो दुह्रामुर्वीयथाबलमम्।
प्रापेयं सर्वा आकूतीर्मनसा हृदयेन च।।९।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पाँच दिशाऐं दूर तक फैली हुई प्रकाम।
यथाशक्ति पोषक स्वरस मुझको करें प्रदान।।
जिससे मैं निज हृदय अरू मन को कर बलवान।
पूर्ण करूँ संकल्प सब, जग में बनूँ महान्।।

मंत्र- गोसनिं वाचमुदेयं वर्चसा माभ्युदिहि।
आ रून्धां सर्वतो वायुस्त्वष्टा पोषं दधातु मे।।१०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मुझे प्रकाशित कर प्रभो, पूर्ण तेज के साथ।
मेरी वाणी बीच दे, मोद दायिनी गाथ।।
प्राण वायु घेरे मुझे, सर्वदिशि सब ओर।
जगत्-रचयिता प्रभु मेरे, पुष्ट करे सब छोर।।

सूक्त २१

मंत्र- ये अग्नयो अप्स्वृतर्ये वृत्रे ये पुरूषे ये अश्मसु।
ये आविवेशौषधीर्यो वनस्पतींस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्वेतत्।।१।।

काव्यार्थ- जो अग्नियाँ हैं जल में, जो मेघ में समाईं,
जो हैं शिलाओं भीतर, नर तन में जो जमाईं;
जो वनस्पतियों एवं औषधियों में प्रविष्ट,
उन हेतु है हमारी प्रणाम की कमाई।

मंत्र- यः सोमे अन्तर्यो गोष्वन्तर्य आविष्टो वयः सु यो मृगेषु।
य आविवेश द्विपदो पश्चतुष्पदस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्।।२।।

काव्यार्थ- शुभ अग्नियाँ जो सोम, गौओं में हैं समाई,
जो पक्षियों के भीतर, मृग-तन में हैं, जमाई;
जो हैं द्विपादों एवं चतुष्पादों में प्रविष्ट,
उन हेतु सदा ही हम प्रणाम करते भाई।

मंत्र- य इन्द्रेण सरथं याति देवो वैश्वान्तर उत विश्वदाव्यः।
यं जोहवीमि पृतनासु सासहिं तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्तवेतत्।।३।।

काव्यार्थ- सब कुछ जो जलाता पर, हित भावना समाई,
रथ बैठ धनी सूर संग करता जो चढ़ाई;
करता हूँ आहृवान जिस विजय प्रदाता का,
उस अग्नि को सदा ही करता प्रणाम भाई।

मंत्र- यो देवो विश्वाद्यमु काममाहुर्यं दातारं प्रतिगृह्णन्तमाहुः।
यो धीरः शक्रः परिभूरदाभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्।।४।।

काव्यार्थ- जो ज्योतिमान अग्नि सब वैरियों को खाता,
जन द्वारा कामनाओं का पूर्ति-दा कहाता;
दाता तथा ग्रहाता भी जिसको कहा जाता,
उस अग्नि को सदा ही मैं स्वस्तियाँ सुनाता।

दोहा

सर्वव्याप्त वह शक्तिमय, दबना उसे न भाय।
जो जन उसको सेवता, विपुल शक्तियाँ पाय।।

मंत्र- यं त्वा होतारं मनसाभि संविदुस्त्रयोदश भौवनाः पंच मानवाः।
वर्चोधसे यशसे सूनृतावते तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जो कि भिन्न-भिन्न शरीरांगो रूपी त्रयोदश-
भुवनों के बीच रहा निज को बिठार है;
पृथिवी, जल, अग्नि, आकाश अरू वायु, इन-
पाँच वत्वों से सम्बन्ध रहा धार है।
वह सत्य-प्रिय वाणी वाले तेजधारी यश-
हेतु तुझे दानी हुआ रखता विचार है;
मानता तुझे है सब ही प्रकार ठीक, ऐसी-
अग्नि तुझे नमन-दान बार-बार है।।

मंत्र- उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे।
वैश्वानरज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्।।६।।

काव्यार्थ- प्रबलों के अन्नदाता, निबलों के अन्नदाता,
अमृत जो सींचते हैं, उत्पादनों में राता;
इन चतुर्वर्ग लोगों की अति प्रधान हितकर,
शुभ अग्नियों के हेतु मैं स्तुति सुनाता।

मंत्र- दिवं पृथिवीमन्वन्तरिक्षं ये विद्युतमनुसंचरन्ति।
ये दिक्ष्वप्न्तर्ये वाते अन्तस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्।।७।।

काव्यार्थ- जो अग्नि सूर्य-लोक में, पृथिवी लोक में, अरू-
जो अन्तरिक्ष भीतर करता सतत गमन है;
जो अग्नि विद्युत् में अरू जो दिशाओं भीतर,
गतिशील वायु भीतर करता सदा रमण है;
ईश्वर का तेज जिनके भीतर समाया रहता,
उन अग्नियों का मेरा सम्मान से नमन है।

मंत्र- हिरण्यपाणिं सवितारमिन्द्रं बृहस्पतिं वरूणं मित्राग्निम्।
विश्वान् देवानङ्गिरसो हवामहे इमं क्रव्यादं शमयन्त्वग्निम्।।८।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सूर्य आदि द्वारा स्तुत्य, ऐश्वर्यवान्,
भक्तों के घर जो अतुल धन भर दें;
सर्वलोक रक्षक जो, सबमें अतीव श्रेष्ठ,
मित्र सबके ही, सबको ही कान्तकर दें।
ऐसे ज्ञान रूप प्रभु से यह प्रार्थना है, हमें-
विजय प्रदाता पुरूषार्थों से भर दें;
वह इस माँस खाने वाले, अग्नि के समान-
तापकारी दुःख को हमारे शान्त कर दें।।

मंत्र- शान्तो अग्निः क्रव्याच्छान्तः पुरूषरेषणः।
अथो यो विश्वदाव्यश्त क्रव्यादमशीशमम्।।९।।

काव्यार्थ- है प्रार्थना कि शान्त हों दुःख तापकारी,
जो अग्नि माँस-भक्षक जैसे हैं कष्ट दाता;
करके सुखी सभी को, होऊँ स्वयं सुखी मैं,
पुरूषों को जो सताता है कष्ट, रहे जाता;
दुःख माँसाहारी अग्नि समशान्त किया मैंने,
जो अन्य दूसरे सब ही सुख को रहा खाता।

मंत्र- ये पर्वताः सोमपृष्ठा आप उत्तानशीवरीः।
वातः पर्जन्य आदग्निस्ते क्रव्यादमशीशमन्।।१०।।

काव्यार्थ- विस्तार लिये पर्वत, जो अपनी पीठ ऊपर,
अमृत मयी औषधियाँ किये हुए हैं,
जल, वायु, मेघ, अग्नि ऊपर को मुँह उठाये,
जाने को सूर्य-दिशि में गतियाँ लिये हुए हैं;
यह सब ही माँस-भक्षी अग्नि स्वरूप दुःख को;
कर शान्त हमें नाना बहु सुख दिये हुए हैं।

सूक्त २२

मंत्र- हस्तिवर्चसं प्रथतां बृहद्यशो अदित्या यत्तन्वः संबभूव।
तत्सर्वे समदुर्मह्यमेतद्विश्वे देवा अदितिः सजोषाः।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सदा सदा जो वेद की वाणी रही अदीन।
उसके शुभ विस्तार से यश उपजा लवलीन।।
मुझे ज्योतिमय गुणों से यह यश मिला प्रचण्ड।
अरू लभ प्रभु की प्रीति युत वेद-वाणी अखण्ड।।
सब प्रकार यह यश मिला मुझे प्रकृति के जोर।
हाथी के बल सम सदा यह फैले चहुँ ओर।।

मंत्र- मित्रश्च वरूणश्चेन्द्रो रूद्रश्च चेततुः
देवासो विश्वधायसस्ते मान्जन्तु वर्चसा।।२।।

काव्यार्थ- अति श्रेष्ठ, परम ऐश्वर्यवान्, दुःख विनाशक
जग मित्र प्रभू मुझ पर चेतावनी तनाऐं;
अरू सब जगत् के पोषक दिव्य पदार्थ ख्यात,
मुझ बीच तेज, बल भरकर कान्तिमय बनाऐं।

मंत्र- येन हस्ती वर्चसा संबभूव येन राजा मनुष्ये ष्वप्स्वन्तः
येन देवा देवतामग्र आयन्तेन मामद्य वर्चसाग्ने वर्चस्विनं कृणु।।३।।

काव्यार्थ- **गीत**

हे तेजवान् परमेश! मुझे तेजवान् कर दो।।
जिस तेज से हाथी और ऐश्वर्यवान् राजा,
का विक्रम मनुजों में, जल नभ में है बाजा;
वही ज्योतिमान तेज, मेरे अंग-अंग भर दो।
देवत्व प्राप्त ऋषियों, अति पावन पुरूषों ने,
जिस तेज को पाया था, पहले के वर्षो में;
वही अग्नि सम तेज, मेरे अन्दर भी घर दो।।

मंत्र यत्ते वर्चो जातवेदो बृहद्भवत्याहुतेः। यावत्सूर्यस्य वर्च असुरस्य च हस्तिनः।
तावन्मे अश्विना वर्च आ धत्तां पुष्करस्रजा।।४।।

काव्यार्थ- ज्ञाता जनित जगत् के प्रभुदेव तेजधारी,
है प्रार्थना मेरे हित कीजेगा तेज जारी।
आत्माहुति प्रदान करते तेरे लिये हैं,
प्रतिक्षण इसी से बढ़ता यह तेज बड़ा भारी।
जग-प्राणियों का एवं मेघों का हितू सूर्य,
उन हेतु हुआ करता अत्यन्त तेजकारी।
अरू जो पशु धरा पर धारक हैं बुद्धि बल के,
उन बीच बुद्धि बल में हाथी रहा अगारी।
प्रभु-आज्ञा के पालन में प्रेर, मुझमें पोषक-
सूर्य व चन्द्र उतना बल तेज दें बिठारी।

मंत्र- यावच्चतस्रः प्रदिशश्चक्षुर्यावत्समश्नुते।
तावत्समैत्विन्द्रियं मयि तद्धस्तिवर्चसम्।।५।।

काव्यार्थ- फैली हुई चतुर्दिशाऐं जितनी दूर तक,
अरू जितनी दूर तक ये मेरी दृष्टि है जाती;
हाथी समान शक्ति का उतनी ही दूर तक,
विस्तार करती इन्द्रियाँ सबको रहें भातीं।

मंत्र- हस्ती मृगाणां सुषदामतिष्ठावान्बभूव हि।
तस्य भगेन वर्चसाऽभि षिन्चामि मामहम्।।६।।

काव्यार्थ- शुभरीति बैठने में सर्वश्रेष्ठ, हाथी से-
जैसे अतीव तेज, ऐश्वर्य झर रहा;
वैसा ही ऐश्वर्य और तेज धार कर,
मैं आज अपने आपको अभिषिक्त कर रहा।

सूक्त २३

मंत्र- येन वेहद् बभूविथ नाशयामसि तत्तवत्।
इदं तदन्यत्र त्वदप दूरे नि दध्मसि।।१।।

काव्यार्थ-

बाँझ स्त्री से-

दोहा

जिस कारण तू झेलती बन्ध्यापन का कष्ट।
उस कारण को दूर कर करते हैं हम नष्ट।।

मंत्र- आ ते योनिं गर्भ एतु पुमान्बाणइवेषुधिम्।
आ नीरोऽत्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः।।२।।

काव्यार्थ-

स्त्री से-

दोहा

पुरूष-गर्भ इस भाँति तव गर्भाशय आ जाय।
ज्यो बाण तूरीण में रह कर शोभा पाय।।
यहाँ तेरा दस माह रह गर्भ बीच, हो पुष्ट।।
वीर पुत्र उत्पन्न हो, तुझे करे संतुष्ट।।

मंत्र- पुमांसं पुत्रं जनयं तं पुमाननु जायताम्।
भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च यान्।।३।।

काव्यार्थ-

दोहा

जननी! रक्षक पुत्र जन करके हृदय प्रसन्न।
तथा बाद में पुत्र ही करती रह उत्पन्न।।
हे जननी! तू हो सभी उन पुत्रों की मात।
जो जन्मे हैं, और जो होंगे तत्पश्चात्।।

मंत्र- यानि भद्राणि बीजान्यृषभा जनयन्ति च।
तैरत्वं पुत्रं विन्दस्व सा प्रसूर्धेनुका भव।।४।।

काव्यार्थ-

दोहा

ऋषभ वनस्पति जो कि है प्रजनन गुण सम्पन्न।
मंगलदायक बीज यह करती है उत्पन्न।।
उसके सेवन द्वारा तू पैदा कर शुभ जात।
अरू बन उत्तम गाय सम प्रसू दुधारु मात।।

मंत्र- कृणोभि ते प्राजापत्यमा योनिं गर्भ एतु ते।
विन्दस्व त्वं पुत्रं नारि यस्तुभ्यं शमसच्छमु तस्मै त्वं भव।।५।।

काव्यार्थ-

दोहा

प्राजापत्य संस्कार से रक्षक रेखा खींच।
करता हूँ थिर गर्भ को तव गर्भाशय बीच।।
जिससे तू पैदा करे पुत्र रूप सन्तान।
वह तुझको अरू तू उसे होवे सुख की खान।।

मंत्र- यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरूधां बभूव।
तास्त्वा पुत्रविद्याय दैवीः प्रावन्त्वोषधयः।।६।।

काव्यार्थ-

दोहा

जिनकी माँ पृथिवी, पिता पालन-कर्ता सूर।
जिन्हें जनम हित जलों का सहयोग भरपूर।।
वह औषधियाँ विविध बहु दिव्य गुणों को लेतु।
तुझे सुरक्षें सर्व विधि पुत्र प्राप्ति के हेतु।।

सूक्त २४

मंत्र- पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं वचः।
अथो पयस्वतीनामा भरेऽहं सहस्रशः।।१।।

काव्यार्थ- औषधियाँ सार युक्त रहें, और मैं अपनी-
वाणी से सार युक्त उच्चारण किया करूँ,
जो अन्य अन्य सार युक्त औषधियाँ हैं,
उनको सहस्र भाँति से धारण किया करूँ।
(औषधियां.- चावल, जौ आदि)

मंत्र- वेदाहं पयस्वन्तं चकार धान्यं बहु।
संभृत्वा नाम यो देवस्तं वयं हवामहे योयो अयज्वनो गृहे।।२।।

काव्यार्थ- उत्तम पदार्थों का जो भण्डार रहा है
मैं उस उपास्य देव दयालु को जानता।।
खाने के लिये जिसने हम सभी को बहुत सा-
रसयुक्त धान्य दे दिया नाना प्रकार का;
जो दानशील सबको यथावत् परोसता,
जो यज्ञहीन पर भी दिखाता उदारता।
समुद्धियाँ पहुँचाता उसे, देता गति है,
ऐसे प्रभु का करता यजन हूँ, बखानता।।

मंत्र- इमा याः पंच प्रदिशो मानवीः पन्च कृष्टयः।
वृष्टे शपं नदीरिवेह स्फातिं समावहान्।।३।।

काव्यार्थ- जैसे कि वर्षा होने पर जल से भरी-नदियाँ,
अकाल नाश, खोलतीं समृद्धि की थैली;
वैसे ही पाँच भूतो पृथिवी आदि से जुड़ी,
विस्तीर्ण पाँच दिशाओं में दूर तक फैली;
सब मानवी प्रजाऐं वृद्धि औ विकास ला,
बहु शाप करें नष्ट, जो करते धरा मैली।

मंत्र- उदुत्सं शतधारं सहस्रधारमिक्षतम्।
एवास्माकेदं धान्यं सहस्रधारमक्षितम्।।४।।

काव्यार्थ- जैसे कि वर्षा होने पर, हजारों सैकड़ों-
धाराओं वाले अक्षय झरने, ताल आदि सब;
अनिष्ट औ' दरिद्रतादि नष्ट करने को,
जल पूर्ण हुआ करते हैं, दिखाते दिव्य छब;
वैसे ही सहस्रों प्रकार धारणीय यह-
बहुधान्य हो अक्षय, कलुष समस्त जायं दब।

मंत्र- शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर।
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे शतहस्त मनुष्य! तू नित करता पुरूषार्थ।
निरालस्य एकत्र कर बहु धनधान्य पदार्थ।।
हे सहस्र-हस्त मनुज! पर-दुःख को निज जान।
अरू अपना धन-धान्य उन में करता रह दान।।
तू अपने कर्तव्य में मत ले कभी विराम।
पुण्य कर्म के मार्ग पर उन्नति आठों धाम।।

मंत्र- तिस्रो मात्रा गन्धर्वाणां चतस्रो गृहपत्न्याः।
तासां या स्फातिमत्तमा तया त्वाभि मृशामसि।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सुख-शान्ति प्राप्त करने के लिये, हे गृहस्थ!
दस मात्राओं बीच बाट निज धन को;
अर्जित किया जो धन-धान्य उसमें की तीन-
मात्राऐं हों तेरी विपत्तियों के क्षण को।
तीन मात्राऐं विद्या की वृद्धि, शासन को,
चार मात्राऐं खान-पान औ वसन को;
उनमें से समृद्धशाली विद्या की तीन-
से तू संयुक्त रख तन और मन को।।

मंत्र- उपोहश्च समूहश्च क्षत्तारौ ते प्रजापते।
ताविहा वहतां स्फातिं बहुं भूमानमक्षितम्।।७।।

काव्यार्थ- हे गृहस्थ! जो अप्राप्त है उसे तू प्राप्त कर,
प्राप्त हुआ दृढता से उसको सुरक्ष तू;
यह दोनों योग-क्षेम क्षति से बचायें तुझे,
ऋद्धि-सिद्धि देवें, बने देव समकक्ष तू।

सूक्त २५

मंत्र- उत्तुदस्त्वोत्तुदतु मा धृथाः शयने स्वे।
इषुः कामस्य या भीमा तया विध्यामि त्वा हृदि।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे नारी! सबको हिला रखता है जो काम।
तेरा अंतःकरण भी हिला रखे वह वाम।।
वाण भयानक काम का देता भीषण पीर।
उसमें तव उर भेद मैं करता तुझे अधीर।।
वाण-विद्धता मुक्ति के यत्न तेरे हों व्यर्थ।
सुख से निद्रा हेतु तू हो जाये असमर्थ।।

मंत्र- आधीपर्णां कामशल्यामिषुं संकल्पकुल्मलाम्।
तां सुसंनतां कृत्वा कामो विध्यतु त्वा हृदि।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

काम-वाण निज लक्ष्य पर पहुँच मारता डंक।
व्यथा मानसिक का लगा होता उसमें पंख।।
तीक्ष्ण शल्य बन अग्र में होता काम-विकार।
तथा दण्ड संकल्प का जुड़ता सोच-विचार।।
सकल रीति जिस वाण को किया बहुत ही तेज।
वह जा अपने लक्ष्य पर, तेरा हृदय दे छेद।।

मंत्र- या प्लीहानं शोषयति कामस्येषुः सुसंनता।
प्राचीनपक्षा व्योषा तया विध्यामि त्वा हृदि।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तेरे हृदय को बेधता काम-वाण को छोड़।
जो अचूक जा लक्ष्य पर, देता उसको तोड़।।
यह नर को देता जला धारे रीति विशेष।
अरू तिली देता सुखा धार अग्नि का वेश।।
व्यथा मानसिक का लगा अपने तन में पंख।
जाता जिसके पास है उसे मारता डंक।।

मंत्र- शुचा विद्धा व्योषया शुष्कास्याभि सर्प मा।
मृदुर्निमन्युः केवली प्रियवादिन्यनुव्रता।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

देता दाह विशेष जो, मुख को देत सुखाय।
जिसको लग जाता उसी के मन शोक बढ़ाय।।
ऐसे काम वाण से बिंध करके तू नार।
चल कर मेरे पास आ और मुझे स्वीकार।।
क्रोध रहित, कोमल, मृदु, अनुकूलन की गाथ।
मुझमें ही अनुरक्त होकर रह मेरे साथ।।

मंत्र- आजामि त्वाजन्या परि मातुरथो पितुः।
यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तेरे मात-पितु पास से करके पूर्ण प्रयत्न।
तुझको लाता हूँ यहाँ हे नारी शुभ रत्न।।
जिससे तू मम बुद्धि अरू कर्मों के अनुरुप।
पहुँचे मेरे चित्त में बन कर गंध अनूप।।

मंत्र- व्यस्यै मित्रावरूणौ हृदश्चित्तान्यस्यतम्।
अथैनामक्रतुं कृत्वा ममैव कृणुतं वशे।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे प्राण-अपान इस नारी-हृदय के बीच।
फैला मेरे विचार ही भरो चित्त में प्रीत।।
जिससे मम वश में रहे धर्म-पत्नि यह नार।
अरू इसके मन में पलें मेरे प्रति सु विचार।।
नित ही चाहे कर्म को करना मम अनुकूल।
कार्य नहीं किंचित करे जो होवे प्रतिकूल।।

सूक्त २६

मंत्र- येऽस्यां स्थ प्राच्यां दिशि हेतयो नाम देवास्तेषां वो अग्निरिषवः।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा।।१।।

काव्यार्थ- दक्षिण दिशा के हे हमारे देश के रक्षक,
डस-डस के शत्रुओं को मारते रहे तक्षक;
रक्षा की इच्छा करते ही रहने से ख्यात तुम,
हम बीच प्रेरणा भरो, हमरे बनो शिक्षक।
निज शस्त्र अपना पक्का मनोरथ किये हुए,
कर देते शत्रु नष्ट, न दिखते जिये हुए;
इस हेतु तुम्हें देते प्रशंसाऐं हैं सदा,
सम्मान में तुम्हारी भेंट को लिये हुए।

मंत्र- येऽस्यां स्थ प्रतीच्यां दिशि वैराजा नाम देवास्तेषां व आप इषवः।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा।।३।।

काव्यार्थ- पश्चिम दिशा के हे हमारे देश के रक्षक,
डस डस के शत्रुओं को मारते रहे तक्षक;
ऐश्वर्यधारी क्षत्रिय नामी प्रसिद्ध तुम,
हम बीच प्रेरणा भरो, हमरे बनो शिक्षक।
जल-विद्या से जलास्त्र को धारण किये हुए,
तुम शत्रु नाशते हो, न दिखते जिये हुए;
इस हेतु हम तुम्हारी प्रशंसाऐं करते हैं,
सम्मान में तुम्हारी भेंट को लिये हुए।

मंत्र- येऽस्यां स्थोदीच्यां दिशि प्रविध्यन्तो नाम देवास्तेषां वो वात इषवः।
ते नो मृडत ते नोऽधिब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा।।४।।

काव्यार्थ- उत्तर की दिशा के, हे अपने देश के रक्षक!
वायव्य शस्त्र द्वारा शत्रु मारते तक्षक;
हे बेध देने वाले नाम से प्रसिद्ध तुम,
हम बीच प्रेरणा भरो, हमरे बनो शिक्षक।
हे वायु रूपी तीर को धारण किये हुए,
तुम कर दो शत्रु भस्म, न दीखें जिये हुए;
इस हेतु हम तुम्हारी प्रशसाऐं करते हैं,
सम्मान में तुम्हारी भेंट को लिये हुए।

मंत्र- येऽस्यां स्थ ध्रुवायां दिशि निलिम्पा नाम देवास्तेषां व ओषधीरिषवः।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा।।५।।

काव्यार्थ- हे थिर दिशा के वैद्यराज, सैन्य के रक्षक,
सेना के स्वास्थ्य दाता, सकल रोग के भक्षक;
लेपन कुशल सुवैद्य नाम से प्रसिद्ध तुम,
हम बीच प्रेरणा भरो, हमरे बनो शिक्षक।
हे औषधि के वाण को धारण कये हुए,
तुम रोग करो भस्म, न दीखे जिये हुए;
इस हेतु हम तुम्हारी प्रशंसाऐं करते हैं,
सम्मान में तुम्हारी भेंट को लिये हुए।

मंत्र- येऽस्यां स्थोर्ध्वायां दिश्यवस्वन्तो नाम देवास्तेषां वो बृहस्पतिरिषवः।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा।।६।।

काव्यार्थ- ऊपर की दिशा के हमारे देश के रक्षक,
डस-डस के शत्रुओं को मारते रहे तक्षक;
रक्षाधिकारी नाम से सबमें प्रसिद्ध तुम,
हम बीच प्रेरणा भरो, हमरे बनो शिक्षक।
हे मुख्य सेनापति सरीखे वाण को लिये,
तुम शत्रु नाशते, न वे दिखते जिये हुए;

इस हेतु हम तुम्हारी प्रशंसाऐं करते हैं,
सम्मान में तुम्हारी भेंट को लिये हुए।

सूक्त २७

मंत्र- प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो
नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।१।।

काव्यार्थ- **सेना-व्यूह का उपदेश-**

सेनाधिकारी अग्नि-ज्ञान में प्रवीण हो,
हो शस्त्रों बीच अग्नि का प्रयोग जानता;
वह होवे अधिष्ठाता सामने की दिशा का,
वह सूर्य-शक्ति युक्त रहे तीर तानता।
वह काले सर्प के समान विष-भरी बनी-
सेना के द्वारा जन सभी को रक्षता रहे;
जन-जन में अधिष्ठाता, रक्षकों, धनुर्धरों-
का मान करने हेतु बनी दक्षता रहे।
हे शूरवीरों! हमसे वैर करता जो वैरी,
या जिससे वैर हम किया करते हैं घोरतम;
वह दुष्ट धरा पर नहीं जीने के योग्य है,
उसको तुम्हारे जबड़ो बीच डालते हैं हम।

मंत्र- दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम ऐभ्यो अस्तु।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विस्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।२।।

काव्यार्थ- **सेना-व्यू हा उपदेश-**

दक्षिण का अधिष्ठाता रहे सैन्य पति सदा,
महनीय ऐश्वर्य वैभवों को धारता;
खग-वृन्द तिरछी पंक्तियों उड़ते समान वह,

सैन्य-व्यूह रक्षणार्थ हो संचारता।
बहु तीव्र-धार वाण हों नाना प्रकार के,
रक्षा गुणों से पूर्ण, भरी हो प्रहारता;
इन वाणों, अधिष्ठाता तथा रक्षकों प्रति,
जन-जन करे सम्मान, नमन, प्राण वारता।
हे शूरवीरों! हमसे वैर करता जो वैरी,
या जिससे वैर हम किया करते हैं घोरतम;
वह दुष्ट धरा पर नहीं जीने के योग्य है,
उसको तुम्हारे जबड़ों बीच डालते हैं हम।

मंत्र- प्रतीची दिग् वरूणोऽधिपतिः प्रदाकू रक्षितान्नमिषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।३।।

काव्यार्थ- **सेना-व्यूह का उपदेश-**

पीछे की ओर अधिष्ठाता वरूण पद लिये-
सेनापति होवे जो शत्रुओं को रोक दे;
अजगर व साँप, बाघ, चीता, हाथी के समान,
रच सैन्य व्यूह रक्षा करें, अभयलोक दे।
हों अन्न उसके वाण, अन्न के भण्डार भर,
लेकर अपार सैन्य, शत्रुओं को ठोक दें;
इन वाणों, अधिष्ठाता तथा रक्षकों प्रति,
जन नमन, मान करता, उन्हें कर अशोक दे।
हे शूरवीरो! हमसे वैर करता जो वैरी,
या जिससे वैर हम किया करते हैं घोरतम;
वह दुष्ट धरा पर नहीं जीने के योग्य है,
उसको तुम्हारे जबड़ों बीच डालते हैं हम।

मंत्र- उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिता शनि रिषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।

योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।४।।

काव्यार्थ- **सेना-व्यूह का उपदेश-**

उत्तर दिशा का होवे अधिष्ठाता सेनापति,
जो सोम पद को धारता, देता हो प्रेरणा;
वह स्वयं-सिद्ध श्रेष्ठ सैन्य व्यूह के द्वारा,
रक्षा के कर्म में कभी करता हो देर ना।
विद्युत् के वाण होवें, इनसे शत्रु जीत कर-
धर्मात्माओं की सदा रक्षा किया करे;
इन वाणों, अधिष्ठाता तथा रक्षकों प्रति,
धर्मात्मा सम्मान, स्वस्तियाँ दिया करें।
हे शूरवीरों! हमसे वैर करता जो वैरी,
या जिससे वैर हम किया करते हैं घोरतम;
वह दुष्ट धरा पर नहीं जीने के योग्य है,
उसको तुम्हारे जबड़ों बीच डालते हैं हम।

मंत्र- ध्रुवा दिग् विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरूध इषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम ऐभ्यो अस्तु।
योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।५।।

काव्यार्थ- **सेना-व्यूह का उपदेश-**

स्थिर व दृढ़ दिशा का अधिष्ठाता वैद्य हो,
जो कामों में व्यापक हो, रोग नाशता रहे;
चितकबरे वा काले गले के सर्प के समान,
सेना के व्यूह द्वारा अरि को डासता रहे।
हों वाण सभी जड़ी अरू बूटियाँ, इनसे-
वह सैनिकों की रोग से रक्षा किया करे;
इन वाणों, अधिष्ठाता तथा रक्षकों प्रति,
धर्मात्मा सम्मान, स्वस्तियाँ दिया करें।
हे शूरवीरों! हमसे वैर करता जो वैरी,
या जिससे वैर हम किया करते हैं घोरतम;
वह दुष्ट धरा पर नही जीने के योग्य है,

उसको तुम्हारे जबड़ों बीच डालते हैं हम।

मंत्र- ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिराधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षभिषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम ऐभ्यो अस्तु।
योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।६।।

काव्यार्थ- **सेना-व्यूह का उपदेश-**

ऊपर की दिशा का हो अधिष्ठाता सेनापति,
बृहस्पति पद धारी, महत् शूरों का स्वामी;
जनता की सुरक्षा में श्वेत वर्ण साँपों सम-
सेनापति का लगा सैन्य-व्यूह हो नामी।
हो वृष्टि-विद्या वाण, वारूणेय शस्त्रों से-
शत्रु को मिटा करके कीर्तियाँ लिया करे;
इन वाणों अधिष्ठाता तथा रक्षकों प्रति,
धर्मात्मा सम्मान, स्वास्तियाँ दिया करें।
हे शूरवीरों! हमसे वैर करता जो वैरी,
या जिससे वैर हम किया करते हैं घोरतम;
वह दुष्ट धरा पर नहीं जीने के योग्य है,
उसको तुम्हारे जबड़ों बीच डालते हैं हम।

सूक्त २७ के मंत्रों का प्रभु भक्ति परक अर्थ-

सर्वज्ञ प्रभो! करूणाकर हो,
दिशि पूरब के अधिकारी हो;
सब भाँति सदा करते रक्षा,
निर्बन्ध तुम्हीं जब स्वामी हो।
तुमने यह सूर्य बनाया जो,
पृथिवी पर जीवन लाता है;
जीवन-रक्षा, अधिपत्य हेतु,
यह शीश सदा झुक जाता है।

दोहा

द्वेष भावना ग्रस्त जो अपना नहीं हितेश।
अरू जिस पापी से सदा हम करते हैं द्वेष।।
हे प्रभु! हम रखते सदा ही वह पापी नीच।
दुष्टों को खाते रहे तब जबड़े के बीच।।१।।

दक्षिण दिशि में समृद्ध पिता,
रहता निज राज तुम्हारा है;
विषधारी कीट भुजंगम से-
रक्षा, प्रभु काम तुम्हारा है।
देते जब ज्ञान-सुधा, मन का
सब मैल तभी मिट जाता है;
जीवन-रक्षा, अधिपत्य हेतु,
यह शीश सदा झुक जाता है।।२।।

(शेष मंत्र एक का दोहा)

सर्वेश्वर हे! सर्वोत्तम हे!
तुम हो जगदीश प्रतीची में;
तुम देते अन्न तथा करते,
रक्षा, विषवान शरीरी से।
तुमसे डरता हर पाप तथा-
हर पुण्य सदा मुस्काता है;
जीवन रक्षा अधिपत्य हेतु,
यह शीश सदा झुक जाता है।।३।।

(शेष मंत्र एक का दोहा)

तुम सोम कहा कर वाम दिशा,
हमको नित शांति प्रदाता हो;
सुखदायक नाथ यही वर दो,
मन में बस ध्यान तुम्हारा हो।

तुमसे ही नाशक तत्वों का,
नर्तन करना रूक जाता हें;
जीवन-रक्षा, अधिपत्य हेतु,
यह शीश सदा झुक जाता है।।४।।

(शेष मंत्र एक का दोहा)

हे पिता! जो लोक नीचे की दिशा में बस रहे,
आप व्यापक हो वहाँ, आलोक अपना कर रहे;
रंग वाले वृक्ष, बेलों को बनाकर आपने,
प्राण रक्षा प्राणियों की, की प्रभू जी आपने।
आपने अधिपत्य, रक्षा से हमें जीवन दिया,
नमन करने आपको, निज आज मस्तक नत किया;
आपसे सम्पर्क या, निज द्वेष का हम धो रहे,
प्रेम-सागर में लगा गोते, मगन मन हो रहे।।५।।

(शेष मंत्र एक का दोहा)

हे प्रभो! ऊपर हमारे जो अनेकों लोक हैं,
आप व्यापक हो वहाँ, हरते हमारे शोक हैं;
नाथ पावन! आप ही हमको बचाने आ रहे,
सींचने कृषि को गगन पर मेघ बढ़ते जा रहे।
आपने अधिपत्य, रक्षा से हमें जीवन दिया,
नमन करने, आपको, निज आज मस्तक नत किया;
आपसे सम्पर्क पा, निज द्वेष को हम धो रहे,
प्रेम-सागर में लगा गोते, मगन मन हो रहे।।६।।

(शेष मंत्र एक का दोहा)

सूक्त २८

**मंत्र- एकैकयैषा सृष्ट्या सं बभूव यत्र गा असृजन्त भूतकृतो विश्वरूपाः।
यत्र विजायते अमिन्यपर्तुः सा पशून्क्षिणाति रिफती रूशती।।१।।**

काव्यार्थ- **दोहा**

सर्वशक्तिमत्ता द्वारा बिन किये प्रयास।
प्रभु ने सृष्टि रच किया लोकों का निर्माण।।
नर-बुद्धि प्रभु-नियम तज, जब हो जाती भ्रष्ट।
तब वह पीड़ित कर उसे, कर देती है नष्ट।।

मंत्र- एषा पशून्त्सं क्षिणाति क्रव्याद् भूत्वा व्यद्वरी।
उतैनां ब्रह्मणे दद्यात्तथा स्योना शिवा स्यात्।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जब नर की बुद्धि चले प्रभु-नियमों विपरीत।
तब बन माँस-भक्षणी करती उसे गलीत।।
प्रभू वेद अरू विज्ञ पर नाशक-बुद्धि छाँड।
इससे होगी शुद्ध यह, कर देगी कल्याण।।

मंत्र- शिवा भव पुरूषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यः शिवा।
शिवास्मैं सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा न इहैधि।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

प्रभु-नियमों को पालती हे बुद्धि! दे ध्यान।
तू जन-जन का सर्वदा, करती रह कल्याण।
कल्याणी हम हेतु हो, अरू गौ घोड़ों हेतु।
तथा इस सभी क्षेत्र हित, बन कल्याणी सेतु।।

मंत्र- इह पुष्टिरिह रस इह सहस्रसातमा भव। पशून्यमिनि पोषय।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

बुद्धि शुभ-नियम पालती! शुभता को दे बोय।
तव कारण पुष्टि यहाँ, तथा यहाँ रस होय।।
सहस्र भाँति के धन यहाँ, हमको कर प्रदान।
जीव-जन्तु सबको यहाँ, दे पुष्टि का दान।।

मंत्र- यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्व१ स्वायाः।
तं लोकं यामिन्यभिसंबभूव सानो मा हिंसीत्पुरूषान्पंशूंश्च।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

शुभ कर्मी, अति ही सुहृद होते जिस थल लोग।
अरू निज तन का रोग तज, करते आनन्द भोग।।
वहाँ सुबुद्धि शीघ्र ही, आ मिलती साक्षात्।
अरू जीवों के कष्ट हर, सिगरे सुख दे जात।।

मंत्र- यत्रा सुहार्दां सुकृतामग्निहोत्रहुतां यत्र लोकः।
तं लोकं यामिन्यभिसंबभूव सा नो मा हिंसीत्पुरूषान्पशूंश्च।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सुहृद व्यक्ति शुभ कर्मों से, जिस थल करते योग।
अग्नि-होत्र कर्मी जहाँ होते हैं सब लोग।।
वहाँ सुबुद्धि शीघ्र ही आ मिलती साक्षात्।
करें न हिंसित वह हमें, सुख की दे बरसात।।

सूक्त २९

मंत्र- यद्राजानो विभजन्त इष्टापूर्तस्य षोडशं यमस्यामी सभासदः
अविस्तस्मात् प्र मुंचति दत्तः शितिपात्स्वधा।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

यह राजा नियम से पालता प्रजा को, किन्तु,
सच्चे राजा बने, यह सभासद समस्त हैं;
कर रूप लेते हैं प्रजा से सोलहवाँ भाग,
भाग राष्ट्र-रक्षा-मार्ग करता प्रशस्त है।
जो भी आततायी, खल उनको सताते, उन्हें-
दण्ड दे दबातां, कर देता अति त्रस्त हैं;
भय-मुक्त करता, बनाता निर्भीक प्रजा,
धारणा बढ़ाता, कर देता कर्म-व्यस्त है।।

मंत्र- सर्वान्कामान्पूरयत्याभवन्भवन्। आकूतिप्रोऽविर्दत्त शितिपान्नोप दस्यति।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

प्रजा द्वारा कर रूप दिया सोलहवाँ भाग,
उसके समस्त संकल्प पूर्ण करता;
सर्वदिशि वीरों के प्रभाव को बढ़ाता हुआ,
दुष्टों का दमन कर, गर्व चूर्ण करता।
सुष्टों को पाल, करे जाति अस्तित्व थिर,
राष्ट्र का विकास, विस्तार तूर्ण करता;
करता नहीं है किसी भाँति भी प्रजा का नाश,
मनोरथ पूर्ति में गति घूर्ण भरता।।

मंत्र- यो ददाति शितिपादमविं लोकेन संमितम्।
स नाकमभ्यारोहति यत्र शुल्को न क्रियते अबलेन बलीयसे।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हर कोई राजा को सोलहवाँ भाग, कर रूप-
भेंट करने की भावना सहेज धरता;
जो भी सुष्ट पालक या दुष्ट संहारक, यह-
कर देता मानो सुख थल में विचरता।
उस थल निबल का धन कोई बलवान,
बल का प्रयोग कर रंच नहीं हरता;
न ही शक्ति हीनता के वशीभूत कोई जन,
बलवान व्यक्ति को धन भेंट करता।।

मंत्र- पंचापूपं शितिपादमविं लोकेन संमितम्।
प्रदातोप जीवति पित्तृणां लोकेऽक्षितम्।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

यह कर जनता के पाँचों वर्गों को कभी-
गिरने न देता, तत् बाँह को गहा करे;
सबको ही नित्य नव भोजन दिलाता यह,
सबके ही द्वारा सम्मान को लहा करे।

हिंसकों को नष्ट कर, अपने जनों को यह-
रक्षकों के द्वारा रक्ष, उन पर छँहा करे;
इस भाँति कर दाता, रक्षकों के लोक बीच,
भोग क्षय हीनता को जीवित रहा करे।।

मंत्र- पंचापूपं शितिपादमविं लोकेन संमितम्।
प्रदातोप जीवति सूर्यामासयोरक्षितम्।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

यह कर जनता के पाँचों वर्गों को कभी-
गिरने न देता, तत् बाँह को गहा करे;
सबको ही नित्य नव भोजन दिलाता यह,
सबके ही द्वारा सम्मान को लहा करे।
हिंसकों को नष्ट कर, अपने जनों को यह-
रक्षकों के द्वारा रक्ष, उन पर छँहा करे;
जन-जन सूर्य अरू चन्द्र के प्रकश तले,
भोग क्षय-हीनता को जीवित रहा करे।।

मंत्र- इरेव नोप दस्यति समुद्र इव पयो महत्।
देवौ सवासिनाविव शितिपान्नोप दस्यति।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

भूमि के समान जो कि सबका आधार रहा,
आश्रय सभी का, सब ही को ठहीं घरता;
महनीय जलनिधि सागर समान जो कि-
शान्ति का प्रदाता, सब ही पे छँही करता।
साथ साथ पास रहे प्राण औं अपान सम,
जन-जन की जो रक्षणा भी यहीं करता;
घातकी को नष्ट करता जो ऐसा कर भाग,
कभी श्रेष्ठ व्यक्ति का विनाश नहीं करता।।

मंत्र- क इदं कस्मा अदात्कामः कामायादात। कामो दाता कामः
प्रतिग्रहीता कामः समुद्रमा विवेश। कामेन त्वा प्रति गृह्णामि कामैतत्ते।।७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

यह कर किसने दिया है? दिया किसको है?
काम ने ही यह किया काम को प्रदान है;
इस जग बीच एक काम ही हैं देने वाला,
अरू लेने वाला एक काम ही प्रधान है।
एक काम ही से नर सागर से फैले हुए-
कार्यो प्रति मन बीच भरता उठान हैं;
तुझको मैं काम ही से स्वीकार करता हूँ,
यह सब तेरी महिमा का ही बखान है।।

मंत्र- भूमिष्ट्वा प्रति गृह्णात्वन्तरिक्षमिदं महत्।
माहं प्राणेन मात्मना मा प्रजया प्रतिगृह्य विराधिषि।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

विस्तृत नभ, पृथिवी करें, काम तुझे स्वीकार।
इन सब में होता रहे, तेरा ही विस्तार।।
तुझको पा तन आत्मा में हो बल संचार।
तथा प्रजा बल दृढ़ बने, सब सुख लूँ बैठार।।

सूक्त ३०

मंत्र- सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यभि हर्यत वत्सं जातमिवाध्न्या।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

करता हूँ मैं तव हृदय प्रेमभाव से पूर्ण।
अरू करता हूँ एक मन, द्वेष-भाव कर चूर्ण।।
निज बछड़े को गाय ज्यों करती बहुत दुलार।
वैसे तुम भी सर्व जन, करो परस्पर प्यार।।

मंत्र- अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमना।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पुत्र पिता का अनुव्रती हो कर्मों को बोय।
तथा मात संग एक मन होकर रहता होय।।
पत्नि, पति संग नित करे मधुर मधु सनी बात।
शान्ति पूर्ण वाणी रहे, करे नहीं आघात।।

मंत्र- मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
समयन्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

द्वेष भाइयों बीच अरू बहनों बीच न होय।
कर्म तथा मत एक कर, बोल हितैषी बोय।।

मंत्र- येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत् कृण्मोब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरूषेभ्यः४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

द्वेष न करके जो करें सदा विजय श्री भोग।
वेद-मार्ग विपरीत वह चलते कभी न लोग।।
तव घर के सब व्यक्तियों के संज्ञान हेतु।
वही वेद-पथ कर रहे, सर्व सुखों का सेतु।।

मंत्र- ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः
अन्यो अन्यस्मैवल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

चृद्धों को सम्मान दो, रखिये उत्तम चित्त।
अलग अलग होकर नहीं तोड़ो अपनी भित्त।।
उत्तम सिद्धि तक सतत करते रहो प्रयत्न।
एक धुरा होकर करो प्राप्त सफलता-रत्न।।
तुम्हें बनाता एक मत, मिल करते पुरूषार्थ।
बोल प्रेम के बोलते, जीते जगत हितार्थ।।

मंत्र- समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यन्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तुम सबका जल पीने का होवे एक स्थान।
अन्न भाग का भोग भी होवे एक समान।।
ज्यों चक्र की नाभि में जुड़े अरों की गाथ।
त्यों मैं तुमकों जोड़ता एक जोत के साथ।।
मिल जुल कर उद्योग को करने वाले लोग।
करो एक थल मिल सभी प्यारे प्रभु से योग।।

मंत्र- सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्।
देवाइवामृतं रक्षमाणा सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु।।७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

तुमको मैं मिल उद्योग करने के हेतु,
करता हूँ ऐसा, एक मत तरते रहो,
एक साथ पुरूषार्थकर्ता बनाता तुम्हें,
एक साथ भोजन से पेट भरते रहो।
मिल पुरूषार्थ कर अमर हुए जो दिव्य,
उन पुरूषों की राह पैर धरते रहो;
सांय व प्रातः प्रभु स्तुति उपासना से,
तुम निज चित्त को प्रसन्न करते रहो।।

सूक्त ३१

मंत्र- वि देवा जरसावृतन्वि त्वमग्ने अरात्या।
व्यꣳहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

विजय-कामी दिव्य जन ब्रह्मचर्य को सेव।
वृद्धावस्था दूर रख, रहते तरूण स्वमेव।।
विज्ञ नहीं रहता कभी, कृपण तथा अरि साथ।
सदा हितैषी, दानी का पकड़े चलता हाथ।
वैसे ही मैं रोगो अरू पापों से रह दूर।
दीर्घ आयु को प्राप्त कर, रखूँ सुखों को पूर।।

मंत्र- व्यार्त्या पवमानो वि शक्रः पापकृत्यया।
व्यꣳहंसर्वेण पप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

शोधनकर्ता नर रहे पीड़ाओं से दूर।
अरू पुरूषार्थी नर रहे, पाप कर्म से दूर।।
वैसे ही मैं रोगों अरू पापों से रह दूर।
दीर्घ आयु को प्राप्त कर, सुख भोगूँ भरपूर।

मंत्र- वि ग्राम्याः पशव आरण्यैर्व्यापस्तृष्ण्यासरन्।
व्यꣳहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

रहें ग्राम्य पशु जंगली पशुओं से अति दूर।
अरू जल रहता ज्यों सदा तृष्णा से अति दूर।।
वैसे ही मैं रोग अरू पापों से रह दूर।
दीर्घ आयु को प्राप्त कर, सुख भोगूँ भरपूर।

मंत्र- वी३मे द्यावापृथिवी इतो वि पन्थानो दिशंदिशम्।
व्यꣳहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अलग अलग द्यु भूमि चल, जग को सुख पहुँचत।
अरू दिशि-दिशि के मार्ग सब, अलग अलग हैं जात।।
वैसे ही मैं रोग अरू पापों से रह दूर।
दीर्घ आयु को प्राप्त कर, सुख भोगूँ भरपूर।।

मंत्र- त्वष्टा दुहित्रे वहतुं युनक्तीतीदं विश्वं भुवनं वियाति।
व्यꣳहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सूक्ष्म-दर्शी पिता ज्यों, सुख पहुँचाने हेत।
निज पुत्री को अलग से दायज धन है देत।।
जैसे सब नाना भुवन जो चलते गति धार।
अलग-अलग रहते हुए करते हैं उपकार।।

वैसे ही मैं रोग अरू पापों से रह दूर।
दीर्घ आयु को प्राप्त कर, सुख भोगूँ भरपूर।।

मंत्र- अग्निः प्राणान्त्सं दधाति चन्द्रःप्राणेन संहितः।
व्यꣳहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ज्यों जठराग्नि प्राण को धारण करता सुष्ट।
तथा चन्द्रमा प्राण संग करे इन्द्रियाँ पुष्ट।।
वैसे ही मैं रोग अरू पापों से रह दूर।
दीर्घ आयु को प्राप्त कर, सुख भोगूँ भरपूर।।

मंत्र- प्राणेन विश्वतोवीर्यं देवाः सूर्यं समैरयन्।
व्यꣳहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

लिये जितेन्द्रिय दिव्य जन विजय चाह मन माह।
आत्म ज्ञान अरू आत्म बल जिनमें रहा अथाह।।
जिस रीति से उन्होंने सब सामर्थ्य व्याप्त।
सूर्य आदि तक गमन कर किया परम पद प्राप्त।।
उस रीति मैं रोग अरू पापों से रह दूर।
दीर्घ आयु को प्राप्त कर, सुख भोगूँ भरपूर।।

मंत्र- आयुष्मतामायुष्कृता प्राणेन जीव मा वृथाः।
व्यꣳहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

दीर्घ आयु नर, जो करें अन्यों को तद्रूप।
तू उनका कर अनुसरण, बन जा दिव्य अनूप।।
वैसी अपनी प्राण-शक्ति को कर ले बलपूर।
दीर्घ-काल जीवन बिता, मत कर जीवन घूर।।
वैसे ही मैं रोग अरू पापों से रह दूर।
दीर्घ आयु को प्राप्त कर, सुख भोगूँ भरपूर।।

मंत्र- प्राणेन प्राणतां प्राणेहैव भव मा मृथाः।
व्यꣳहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा।९।।

काव्यार्थ- **दोहा**

प्राण-शक्ति जो है रही प्राण धारियों बीच।
उसमें भरता बल सदा जीवन कर व्यतीत।
इसी जगत् में यश कमा, कीर्ति करे नभ गान।
मत जी जीवन निष्प्रभा, निष्क्रिय मरे समान।।
वैसे ही मैं रोग अरू पापों से रह दूर।
दीर्घ आयु को प्राप्त कर, सुख भोगूँ भरपूर।

मंत्र- उदायुषा समायुषोदोषधीनां रसेन।
व्यꣳहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा।१०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

विक्रम दीर्घ आयु से, आयु से उत्कर्ष।
औषधि रस के पान से, कर उन्नति का दर्श।।
वैसे ही मैं रोग अरू पापों से रह दूर।
दीर्घ आयु को प्राप्त कर, सुख भोगूँ भरपूर।।

मंत्र- आ पर्जन्यस्य वृष्ट्योदस्थामातृता वयम्।
व्यꣳहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा।।११।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ज्यों पर्जन्य वृष्टि से, होता जीवन व्याप्त।
त्यों हम उन्नति लाभ करें, अमरत्व को प्राप्त।।
वैसे ही मैं रोग अरू पापों से रह दूर।
दीर्घ आयु को प्राप्त कर, सुख भोगूँ भरपूर।।

चतुर्थ काण्ड

सूक्त १

मंत्र- ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरूचो वेन आवः।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः।।१।।

काव्यार्थ- प्रथम उपस्थित होने वाले अन्न, तथा अति रूचिकर,
लोकों का निर्माण किया प्रभुवर ने सीमाओं से;
उपमा देने योग्य पिण्ड नभ में रचकर के उसने,
दृश्य-अदृश्य जगत् के घर को खोला लीलाओं से।

मंत्र- इयं पित्रया राष्ट्र्येत्वग्रे प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठाः।
तस्मा एतं सुरूचं ह्वारमह्वं धर्मं श्रीणन्तु प्रथमाया धास्यवे।।२।।

काव्यार्थ- जगत्-पिता परमेश्वर द्वारा मानव-हित में आयी,
वेद-वाणी रुपी शक्ति जो सब भुवनों में ठहरी;
सबसे उत्तम जन्म हेतु वह हम सबके हृदयों में,
रहती रहे सदा ही थिर हो, पैठ करे अति गहरी।
सर्वोपरि विराजते, जग के धारक पोषक प्रभु हित,
अति ही रूचिर, अनिष्ट निवारक, प्राप्ति योग्य विमल जो;
तथा वेद सम्मत जो, ऐसे पुरूषार्थ-यज्ञ को,
सिद्ध करें सब, जिससे सबका मानव जन्म सफल हो।

मंत्र- प्र यो यज्ञे विद्वानस्य बन्धुर्विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति।
ब्रह्म ब्रह्मण उजभार मध्यान्नीचैरूच्चैः स्वधा अमि प्र तस्थौ।।३।।

काव्यार्थ- इस जग का हितकारी बन्धु विज्ञ प्रभू जिसने कि-
निज शक्तियों रुप में अपने को कर प्रकट दिया था;
सब दिव्यों के जनम बताने वाले उसी प्रभू ने,
अपने ब्रह्मरु स्वरूप मध्य से वेद प्रकट किया था;
उसने नीचे अरू ऊँचे लोकों की सृष्टि अनुकूल,
उपजा नाना अन्न, सभी को निज में अर्हन् किया था।

मंत्र- स हि दिनः स पृथिव्या ऋतस्था महीक्षेमं रोदसी अस्कभायत्।
महान्मही अस्कभायद्वि जातो द्यां सद्म पार्थिवं च रजः।।४।।

काव्यार्थ- वही एक ईश द्यु अरू, पृथिवी को अपने अपने-
स्थान में स्थित करता है सत्य नियमों द्वारा;
द्यु लोक पृथिवी लोक घर जैसा बना उसने,
निज निज स्थान इनको दृढ़ करके है बिठाया।
उस महत प्रभु ने कर्षण की डोरी को लगा कर,
किया इनको महत् विस्तृत, अलगाव कर अपारा;
ऐसी अपार महिमा अवलोक कर सदा हम,
पुरूषार्थ रहें करते, उसका ही ने सहारा।

मंत्र- स बुध्न्यादाष्ट्र जनुषोऽग्यग्रं बृहस्पतिर्देवता तस्य सम्राट्।
अहर्यच्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्टाथ द्युमृन्तो वि वसन्तु विप्राः।।५।।

काव्यार्थ- वह प्रभुवर इस जनित् जगत् में आदि अन्त तक व्याप रहा।
अरू सर्वत्र समा कर इसको पूर्ण रीति से ढाप रहा।।
वह ज्योतिमय प्रभु इस जग का सार्वभौम सम्राट रहा।
बड़ों-बड़ों का स्वामी वही हैं, छाया महा प्रताप रहा।।
उसी ज्योति से सूर्य चमक कर, नभ में आभा ज्ञाप रहा।
उसी ज्योति से ज्ञानी बसें अरू नाशें जग में पाप रहा।।

मंत्र- नूनं तदस्य काव्यो हिनोति महो देवस्य पूर्व्यस्य धाम।
एष जज्ञे बहुभिः साकमित्था पूर्व अर्धे विषिते ससान्तु।।६।।

काव्यार्थ- परमेश्वर इस सकल जगत् के हितकारी सूर्य को,
उसमें अतुलित तेज समा, निश्चय से भेजा करता,
यह सोता सा प्रलय काल में, प्रवृद्ध जगत् खुलने पर,
सूर्य सरीखे बहु लोकों संग होकर प्रकट विचरता।
उस जगदीश्वर की भाँति सामर्थ्य बढ़ा कर हम भी,
उपकारी बन, कष्ट निवारक कर्मों को दें वरता।

मंत्र- योऽथर्वाणं पितरं देवबन्धुं बृहस्पतिं नमसाव च गच्छात्।
त्वं विश्वेषां जनिता यथासः कविर्देवो न दभायत्स्वधावान्।।७।।

काव्यार्थ-प्रभुवर बड़ो बड़ों का स्वामी, उनको रक्षण दिया करे।
सत्य स्वभाव रुप, विज्ञों प्रति बन्धु भाव में हिया करे।।
रच कर सारी सृष्टि, उसी के कण कण में निज ठिया करे।
सर्व शक्ति सम्पन्न दिव्य लोकों का नियमन किया करे।।
जीव पूर्ण विश्वास साथ निज विनत प्रार्थना किया करे।।
"प्रभु! तू सर्व सुखों का दाता, सिगरे दुःख हर लिया करे।।
सब सामर्थ्य पूर्ण है, तुझमें परम ज्ञान का दिया जरे।
दबता नही किसी से भी तू, तुझे देख खल हिया डरे।।"

सूक्त २

मंत्र- य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।१।।

काव्यार्थ-विविध बलों का दाता है जो आत्म-ज्ञान का दाता है।
विद्वत् वर्ग मानता जिसका अनुशासन मर्यादा है।
प्राणी, अप्राणी, जड़-चेतन हो मूरख या बहु ज्ञाता है।
पालन करता नियम, उल्लंघन कोई नही कर पाता है।।
जो इन द्विपद चतुष्पद जीवों का स्वामी कहलाता है।
जिसकी कृपा-दृष्टि से वंचित कष्ट पड़ा पछताता है।।
भक्ति करें उसकी सद्मित्रों वही परम सुख दाता है।
मानें नहीं उपास्य और को वही मात-पितु भ्राता है।।

मंत्र- यः प्राणतो निमिषतो महित्वैको राजा जगतो बभूव।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।२।।

काव्यार्थ-प्राणवान् अप्राणि जगत् यह जितना भी दिखलाता है।
इस सबका जो एक अकेला ही राजा कहलाता है।
जिसका आश्रय अमर बनाता मृत्यु अनाश्रय लाता है।
वह है सबका ईश प्रजापति सर्व सुखों का दाता है।
उसको पाने हेतु करें हम भक्ति, वही जग-त्राता है।
मानें नहीं उपास्य और को वही मात, पितु भ्राता है।।

मंत्र- यं क्रन्दसी अवतश्चस्कभाने भियसाने रोदसी अह्वेयाम्।
यस्यासौ पन्था रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।३।।

काव्यार्थ-रहीं परस्पर लड़ती भिड़ती दो सेनायें युद्ध तले।
जिसे विजय के हेतु प्रकाश करती हैं अति आर्त गले।।
हे भयभीत सूर्य अरू पृथिवी घूम रहे जो प्रति पले।
निज सहायता हेतु जिसको तुम पुकारते गगन तले।।
जिसके घर का मार्ग सदा ही भक्तों को इस भाँति फले।
जैसे जगत् नापने हेतु कोई एक विमान चले।।
वह है सबका ईश, कभी हम तद् भक्ति से नहीं टलें।
और न कोई उसे छोड़कर जो भक्तों के कष्ट दले।।

मंत्र- यस्य द्यौरूवी पृथिपी चं मही यस्याद उर्वन्तरिक्षम्।
यस्सासौं सूरो विततो महित्वा कस्मै देवाय हविषा विधेम।।४।।

काव्यार्थ- जिसकी महिमा से विस्तृत द्यु अरू विशाल भूलोक बना।
अन्तरिक्ष लम्बा चौड़ा यह जिससे है बेरोक तना।।
जिसकी महिमा से यह सूरज करता है आलोक घना।
एक अकेला वह प्रभुवर जो रहता है जग नोक बना।।
सबका पूजनीय वह ही है करता वही अशोक मना।
अस्तु सभी का हृदय रहे तद् भक्ति में बेरोक सना।।

मंत्र- यस्य विश्वे हिमवन्तो महित्वा समुद्रे यस्य रक्षामिदाहुः।
इमाश्च प्रदिशो यस्य बाहु कस्मै देवाय हविषा विधेम।।५।।

काव्यार्थ- जिनकी महिमा से सब के सब यह पर्वत हिमवान खड़े।
जिनकी महिला से समुद्र में भी नदी कहते सदा सुजान बड़े।।
जो हैं फैली बड़ी दिशाओं रूपी बाहु प्रधान बड़े।
जन जन के वह ही रक्षक हैं वेद रूप बहु ज्ञान जड़े।।
सबके पूजनीय वह, उनसे सुख के रहें वितान गड़े।
दिव्य गुणों के लिये रहें हम उनके वास स्थान पड़े।।

मंत्र- आपो अग्रे विश्वमावन्गर्भं दधाना अमृता ऋतज्ञाः।
यासु देवीष्वधि देव आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम।।६।।

काव्यार्थ- आदि सृष्टि में सत्य नियम से चालित जीवन शक्ति रही।
उस शक्ति से युक्त बीज की जल भीतर अभिव्यक्ति रही।।
जल ने धारा गर्भ, तभी से होती गति विज्ञप्ति रही।
सृष्टि हुई उत्पन्न प्रथम थी निष्क्रियता से मुक्ति रही।।
एक मात्र प्रभु था संचालक यह सब उसकी युक्ति रही।
वह ही था विराजता जगता अन्यों की सुसुप्ति रही।।
दिव्य गुणों की प्राप्ति हेतु हम उसको ढूँढे भक्ति छँही।
वह देता है उन्हें, जिन्हें है अन्यों से विरक्ति रही।।

मंत्र- हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीमुत द्यां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।७।।

काव्यार्थ-तेजपूर्ण सूर्योदिक पिण्डों की जिससे उत्पत्ति हुई।
सृष्टि पूर्व चेतन स्वरूप था गर्भ रुप बस एक वही।।
रचना करके धारण करता वह सूर्यादिक और मही।
इस जन्मे सम्पूर्ण जगत् का स्वामी भी है एक वही।।
आत्मादिक पदार्थ से, केवल उसका पूजन मात्र सही।
उससे भिन्न और की पूजा करिये आप कदापि नहीं।।
सुख पाया उसने ही जिसने निराकर की बाँह गही।
अन्य किसी को पूजा जिसने उसकी है दुर्दशा रही।।

मंत्र- आपो वत्सं जयन्तीर्गर्भमग्रे समैरयन्। तस्योत जायमानस्योल्ब आसीद्धिरण्ययः
कस्मै देवाय हविषा विधेम।।८।।

काव्यार्थ-

दोहा

सृष्टि के प्रारंभ में, थीं नाना जलधार।
जो शिशु रूपी जगत् का गर्भ रहीं थीं धार।।
जल-धाराओं ने किया, प्रेरित पावन गर्भ।
तब जरायु रुपी प्रभु, से रक्षित था अर्भ।।
जो पावन परमात्मा, ढके हुए था सृष्टि।
वह हम पर रखता रहे, सदा कृपा की दृष्टि।।
दिव्य गुणों की प्राप्ति को, पूर्ण भक्ति के साथ।
हम उस दाता ईश को, सदा झुकाऐं माथ।।

सूक्त ३

मंत्र- उदितस्त्रयो अक्रमन्व्याघ्रः पुरूषोः।
हिरूग्धि यन्ति सिन्धवो हिरूग्देवो वनस्पतिर्हिरूड्. नमन्तु शत्रवः।।१।।

काव्यार्थ-

दोहा

दिव्य वनस्पति रोग को जैसे अधः भगाय।
जैसे सब नदियाँ सदा अधः दिशा को जॉय।।
वैसे ही करते नमन शत्रु भगें सब दूर।
भाग गये हैं चोर सब, बाघ, भेड़िया क्रूर।।

मंत्र.- परेणैतु पथा वृकः परमेणोतु तस्करः
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु।।२।।

काव्यार्थ-

दोहा

जय भेड़िया दूर के मारग रहे न पास।
अरू उससे भी दूर के मारग चोर हतास।।
दूर सांप जाये, कभी दे न सके विष ताप।
अरू पापी भी दूर हो, व्यापे यहां न पाय।।

मंत्र- अक्ष्यौ च ते मुखं च ते व्याघ्र जम्भयामसि। आत्मसर्वान्विंशतिं नखान्।।३।।

काव्यार्थ-

दोहा

बाघ तेरी आँखें दुहु तथा तेरे मुख-दन्त।
अरू बीसों नख नष्ट कर तुझे बनाते सन्त।।

मंत्र- व्याघ्रं दत्वतां वयं प्रथमं जम्भयामसि।
आदु ष्टेनमथो अहिं यातुधानमथो वृकम्।।४।।

काव्यार्थ-

दोहा

दाँत वालों में हम प्रथम साँप, भेड़िया, बाघ।
अरू दुष्टों में राक्षसों का करते हैं नाश।।

मंत्र- यो अद्य स्तेन आयति स संपिष्टो अपायति।
पथामपध्वंसेनैत्विन्द्रो वज्रेण हन्तु तम्।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

आज अगर आवे कोई चोर हमारे ठाँव।
चूर-चूर होकर त्वरित भागे उल्टे पाँव।
मार्गों को भूला हुआ भटके हो लाचार।
वीर व्यक्ति निज वज्र से उसको देवे मार।।

मंत्र- मूर्णा मृगस्य दन्ता अपिशीर्णा उ पृष्टवयः।
निम्रक्ते गोधा भवतु नीचायच्छशयुर्मृगः।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जिस गोह की तू मदद लेता है हे चोर।
उस घरों में फेंकता बाँध पूँछ में डोर।।
तेरी सहायक गोह के टूट जाँय सब दाँत।
चूर चूर हो पसलियाँ गिरें रेत की भाँत।।
नीचे होकर गिर पड़े तेरी सहायक गोह।
फिसले हो निर उद्यमी ले न सके तू टोह।।

मंत्र- यत्संयमो न वि यमो वि यमो यन्न संयमः।
इन्द्रजाः सोमजा आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम्।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पूर्ण रूप से हो गया संयम में जो जीव।
अब उस पर रखिये नहीं अंकुश आप अतीव।।
किन्तु रखा जिसको नहीं है संयम से भींच।
उसको भली प्रकार से रखिये संयम बीच।।
प्रभुवर एवं आप्त जन तथा नियंत्रक राय।
दुष्ट-दमन के हित दिया सबने यही उपाय।।
हे नर! धार विवेक तू तथा व्याघ्र सम लोग।
अरू विघ्न निर्मूल कर सुख आनन्द को भोग।।

सूक्त ४

मंत्र- यां त्वा गन्धर्वो अखनद्वरूणाय मृतभ्रजे।
तां त्वा वयं खनामस्योषधिं शेपहर्षणीम्।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वेद-विद्या के धारण करने वाले विज्ञ पुरूष ने,
जिस तुझको शुभ-गुणी, शक्ति से हीन, पुरूष हित खोदा;
उस सामर्थ्य बढ़ाने वाली हे औषधि हम तुझको,
खनते हैं, जिससे बन जायें बली विक्रमी योद्धा।

मंत्र- उदुषा उदु सूर्य उदिदं मामकं वचः।
उदेजतु प्रजापतिर्वृषा शुष्मेण वाजिना।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

शक्ति और बल के प्रभाव से उषा की बेला,
जैसे जीवों बीच क्रियाशीलता बिठार दें;
जैसे सूर्य होकर उदय चढ़े ऊपर को,
कर्मठ जनों में भर पौरूष अपार दे।
जैसे मेरा वचन हो उच्चता को प्राप्त, तथा-
कान पड़ सबही का जीवन सँवार दे;
वैसे प्रजापालक औं शक्ति की प्रदाता वृषा-
औषधि, बढ़ाए बल, आनन्द अपार दे।।

मंत्र- यथा स्म ते विरोहतोऽभितप्तमिवानति।
नतस्ते शुष्मवत्तरमियं कृणोत्वोषधिः।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तेरा विकासोन्मुख हुआ मन, कर विद्याभ्यास।
हो प्रताप युत् चेष्टा करता भर उल्लास।।
वैसे ही यह औषधि जिसे लिये तू पास।
तुझे अधिक बलयुत् करे तुझको दे सुखरास।।

मंत्र- उच्छुष्मौषधीनां सार ऋषभाणाम्।
सं पुंसामिन्द्र वृष्ण्यमस्मिन्धेहि तनूवशिन्।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ऋषभ आदि औषधियों का अति बलवर्धक सार।
नर को वीर्यवान कर भर दे शक्ति अपार।।

महनीय ऐश्वर्य के धारक सद्-वैद्य।
तू नर-तन वश में करे ले औषधि नैवेद्य।।
इस नर में शक्ति अतुल स्थित कर अविराम।
अरू शूरों के बीच में कर दे इसका नाम।।

मंत्र- अपां रसः प्रथमजोऽथो वनस्पतीनाम्।
उत सोमस्य भ्रातास्युतार्शमसि वृष्ण्यम्।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे औषध! जल भाग जो रहा वनस्पति बीच।
तू उनका उत्पन्न रस रखे रोग को भींच।।
औषध! तू ऐश्वर्य का पोषक, परम प्रबुद्ध।
शूर-वीर पुरूषों का तू हितकारी-बल शुद्ध।

मंत्र- अद्याग्ने अद्य सवितारद्य देवि सरस्वति।
अद्यास्य ब्रह्मस्पते धनुरिवा तानया पसः।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे अग्नि! तू आज अरू हे सूर्य! तू आज।
तथा दिव्य विज्ञान मय विद्या! तू कर काज।।
आज वेद अरू ब्राह्मण के रक्षक परमेश।
इस नर की इन्द्रियों का कर धनु समान उन्मेष।।

मंत्र- आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि।
क्रमस्वर्शइव रोहितमनवग्लायता सदा।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ज्यों धनु पर डोरी चढ़े अति दृढ़ता के साथ।
वैसे तेरी इन्द्रियाँ फैला करूँ सनाथ।।
यथा हिम्र पशु हिरण पर धावा करता होय।
वैसे अरि को नष्ट कर बाकी बचे न कोय।।

मंत्र- अश्वस्याश्वतरस्याजस्य अजस्य पेत्वस्य च।
अथ ऋषभस्य ये वाजास्तानस्मिन्धेहि तनूवशिन्।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जो बल अश्व, अश्वतर मेढ़े, बैल, अज बीच।
उससे वीर जितेन्द्रिय! तू यह व्यक्ति सींच।।

सूक्त ५

मंत्र- सहस्रशृंगो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत्।
तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि।।१।।

काव्यार्थ- किरण सहस्रों से धरती पर सुख बरसाने वाला,
चन्दा उदय हुआ है नभ पर, मन हर्षाने वाला;
यहीं रात भर रहता यह, इसकी सहायता लेकर,
हम जन-जन को प्यारी-प्यारी मीठी नींद सुला दें।।

मंत्र- न भूमिं वातो अति वाति नाति पश्यति कश्चन।
स्त्रियश्च सर्वाः स्वापय शुनश्चेन्द्रसरवा चरन्।।२।।

काव्यार्थ- इस निशि काल भूमि पर वायु तेज नहीं चलता है,
ऊपर से न देखता कोई, न ही कोई खलता है;
जीवात्मा को सखा बनाती, बहती हुई हवाओं,
सभी स्त्रियों अरू कुत्तों को मीठी नींद सुला दें।।

मंत्र- प्रोष्ठेशयास्तल्पेशया नारीर्या वत्यशीवरीः।
स्त्रियों याः पुण्यगन्धयस्ताः सर्वाः स्वापयामसि।।३।।

काव्यार्थ- बड़े आँगना खाट, हिंडोले आदि में जो सोतीं,
ऐसी सब स्त्रियाँ तथा जो पुण्य गन्ध की होती;
जो हितकारी, अति उदार, मृदु, पावन उर वाली हैं,
हम उन सबको सुखद नींद के पलने बीच झुला दें।।

मंत्र- एजदेजदजग्रभं चक्षुः प्राणमजग्रभम्।
अंगान्यजग्रभं सर्वा रात्रीणामतिशर्वरे।।४।।

काव्यार्थ- मैंने निज भटकीली चक्षु निग्रह बीच रखी है,
तथा प्राण-शक्ति भी मैंने निज आधीन रखी है;
बीच रात्रियाँ घारे अंध में सब अंगों को थामा,
जिससे शांत चित्त सोऊँ, मन अपने द्वन्द्व भुला दे।।

मंत्र- य आस्ते यश्चरति यश्च तिष्ठन्विपश्यति।
तेषां सं दध्मो अक्षीणि यथेदं हर्म्यं तथा।।५।।

काव्यार्थ- व्यक्ति कोई जो बैठ रहे, अथवा वह जो चलता है,
विविध भाँति जो खड़े देखता, रंच नहीं टलता है;
हम उनकी आँखों को ऐसे मूँद रखें, ज्यो कोई-
मन्दिर द्वार बन्द कर जाये, लौटे नहीं, भुला दे।।

मंत्र- स्वप्तु माता स्वप्तु पिता स्वप्तु श्वा स्वप्तु विश्पतिः।
स्वपन्त्वस्यै ज्ञातयः स्वप्त्वयमभितो जनः।।६।।

काव्यार्थ- इस बालक की सुखद नींद के कारण माता सोवे,
सोवे पिता व कुत्ता सोवे, प्रजा सुरक्षक सोवे;
इसकी ज्ञाति के जन इस विधि नित ही सोवें, जिससे-
जागे नहीं नींद से बालक, कोई नहीं रूला दे।।

मंत्र- स्वप्न स्वप्नाभिकरणेन सर्वं नि ष्वापया जनम्।
ओत्सूर्यमन्यान्त्स्वापयाव्युषं जागृतादहमिन्द्रइवारिष्टो अक्षितः।।७।।

काव्यार्थ- निद्रे! सकल नींद के साधन द्वारा सुला सभी को,
तथा अन्य को, जब तक देखें रवि की सुखद छवि को;
लेकिन मैं क्षय रहित, नाश से रहित शूर नर जैसा-
हुआ भोर तक जागूँ, मुझको कोई नहीं डुला दे।।

सूक्त ६

मंत्र- ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः
स सोमं प्रथमः पपौ स चकरारसं विषम्।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

ऐसा वेद-वेत्ता पुरूष हुआ, जो कि दस-
वर्णों में सर्वोच्च होकर डटा किया;
जो कि दस शक्तियों में रखता था निज पैठ,
दस दिशि जिसने कि रोग को कटा दिया।

धार दृढ़ संकल्प, खोज सोम औषधि का-
प्राप्त किया रस, जग बीच में छटा किया;
उसने समस्त ही निरोगता के शत्रु बने,
तन के विकार दाता विष को हटा दिया।।

मंत्र- यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावत्सप्त सिन्धवो वितष्ठिरे।
वाचं विषस्य दूषणीं तामितो निरवादिषम्।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

प्रभु के रचित द्यु-लोक अरू भूमि-लोक,
जितने भी दिखते हैं निज विस्तार से;
सात गतिवान् सरिताओं के समान, सात-
इन्द्रियाँ गमनशील जितनी प्रसार से।
वहाँ तक विष को जो दूर करती है, तथा-
उपयोगी औषधीय ज्ञान के विचार से;
ऐसी वाणी को यहाँ से मैंने है उचार दिया,
जिससे कि व्यक्ति बचें विष के प्रहार से।।

मंत्र- सुपर्णस्त्वा गरूत्मान् विष प्रथममावयत्।
नामीमदो नारुपय उतस्मा अभवः पितुः।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सुन्दर पंखों का गरूण, जो कि शीघ्र गति धाय।
हे विष! वह सबसे प्रथम, तुझ प्रसिद्ध को खाय।।
उसको तूने रंच भी किया नहीं बेहोश।
न ही बढ़ाया रंच भी, उन्मत्तता दोष।।
अपितु बना उस हेतु तू, पुष्टिकारक अन्न।
तुझको खा उसने किया, दृढ़ता को उत्पन्न।।

मंत्र- यस्त आस्यत् पन्चांगुरिर्वक्राच्चिदधि धन्वनः।
अपस्कम्भस्य शल्यान्निरवोचमहं विषम्।।४।।

काव्यार्थ- पाँचों ही अपनी उँगुलियाँ जमा कर शत्रु ने,
वक्र धनुष से, तीर के बन्धन की अणि से;
तुझ पर चलाया विष से बुझा तीव्र तीर है,
वह विष दिया निकाल मैंने इस ही घड़ी से।

मंत्र- शल्याद् विषं निरवोचं प्रान्जनादुत पर्णधेः।
अपाष्ठाच्छृंगात् कुल्मलान्निरवोचमहं विषम्।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

शल्य, निम्न अरू पंख का विषमय वाण भाग।
मैंने इनका विष मिटा, वाण किया बेदाग़।।
फाल, सींग अरू अन्य भी जो जो वाण भाग।
मैंने इनका विष मिटा, वाण किया बेदाग़।।

मंत्र- अरसस्त इषो शल्योऽथो ते अरसं विषम्।
उतारसस्य वृक्षस्य धनुष्टे अरसारसम्।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे बैरी! तव वाण-अणि, तेरा विष सम्पूर्ण।
सार रहित अरू निबल बन कर हो जाये चूर्ण।।
निबल वृक्ष की काष्ठ से बना धनुष यह तोर।
सार रहित निर्बल रहे, किंचित रहे न जोर।।

मंत्र- ये अपीषन्ये अदिहन्य आस्यन्ये अवासृजन्।
सर्वे ते वध्रयः कृता वध्रिर्विषगिरिः कृतः।।७।।

काव्यार्थ-हमारे जिन शत्रुओं ने विष को है पीसा,
अरू वाण पर जिन्होंने उसे लेप दिया है;
हम पर जिन्होंने उस विषैले वाण को फेंका,
वह भी जिन्होंने पास ही से लक्ष्य किया है;
हम वीरों द्वारा उनको निबल कर दिया गया,
विष का खड़ा पर्वत भी उनका टूट लिया है।

मंत्र- वध्रयस्ते खनितारो वध्रिस्त्वमस्योषधे।
वध्रिः स पर्वतो गिरिर्यतो जातमिदं विषम्।।८।।

काव्यार्थ- हे विष! तू है निर्वीय, तुझे खोदता है जो-
वह भी रहे निर्वीय, कर्म-शक्ति खो रखें;
तुझको बनाए रखने में, वह अवयवों वाला,
पर्वत रहे असमर्थ जो कि तुझको बो रखे।

सूक्त ७

मंत्र- वारिदं वारयातै वरणावत्यामधि।
तत्रा मृतस्यासिक्तं तेना ते वारये विषम्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

वरूण नाम की औषधि भीतर जो जल होय।
विष संहारक वह तेरे तन के विष को खोय।।
गुण से पूरित रह रहा अमृत रस तद् बीच।
उस ही द्वारा मैं तेरे विष को रहा उलीच।।

मंत्र- अरसं प्राच्यं विषमरसं यदुदीच्यं अथेदमधराच्यं करम्भेण विकल्पते।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

बने पूर्व का विष वरूण के जल से रसहीन।
उत्तर का विष भी बने इसी रीति से क्षीण।
अब यह नीचे की दिशा जो कि हुई विष लीन।
दही मिले सत्तू उसे कर देवें रस-हीन।।

मंत्र- करम्भ कृत्वा तिर्यं पीबस्पाकमुदारथिम्।
क्षुधा किल त्वा दुष्टनो जक्षिवान्त्स न रुरूपः।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

दही मिले वह सत्तू सब चर्बी देत पचाय।
जठराग्नि देय बढ़ा रोग न रहने पाय।।
दुःखदायी विष! रोगी जो खाता सत्तू बनाय।
उस नर को तू मूर्छित रंच न करने पाय।।

मंत्र- वि ते मदं मदावति शरमिव पातयामसि।
प्र त्वा चरूमिव येषन्तं वचसा स्थापयामसि।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

देती है जो मूर्छा तू हे विष की पीर।
हम उसको अविलम्ब ही रख देते हैं चीर।।
लक्ष्य भेदने के लिये छूटे तीर सकाश।
हम रोगी की मूर्छा का कर देते नाश।।
हम टप-टप कर टपकने वाले पात्र समान।
अपनी वाणी मात्र से करते तुझे विरान।।

मंत्र- परि ग्राममिवाचितं वचसा स्थपयामसि।
तिष्ठा वृक्षइव स्थाम्न्यभ्रिखाते न रुरुपः।।५।।

काव्यार्थ- हे विष की जनक औषधि! तू स्वस्थ जनों को,
है, जैसे शत्रुओं का एक दल हो अपारा;
उन सबको बचाने के लिये श्रेष्ठ वैद्य मैं,
तुझको हूँ घेरता स्व-वचन मात्र के द्वारा।
तू उनको रंच मात्र भी मूर्छित न कर सके,
मैंने उन्हें औषधि दे विष विहीन कर दिया;
तू वृक्ष के समान स्व-स्थान पर थिर हो,
खुद कर कुदाल द्वारा है जीवन वृथा किया।

मंत्र- पवस्तैस्त्वा पर्यक्रीणन्दूर्शेभिरजिनैरुत।
प्रक्रीरसि त्वमोषधेऽभ्रिखाते न रुरूपः।।६।।

काव्यार्थ- हे औषधि! वस्त्रालयों, मण्डप व चर्म हित-
करते तेरा व्यापार लोग द्रव्य को लेकर।
दाहक हे औषधि! तू एक बिकाऊ चीज है,
तुझको खरीदते हैं लोग वस्तुऐं देकर।
तुझको निब बनाए रखते विज्ञ लोग हैं,
मूर्छा दे उनको तू कभी रहती नहीं भयप्रद।

मंत्र- अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे।
वीरान्नो अत्र मा दमन्तद्व एतप्पुरो दग्धे।।७।।

काव्यार्थ- ज्ञानी प्रधान वैद्यों ने नित ही बचाव को,
रक्षा के योग्य कर्म चिकित्सा के किये हैं।
वह वैद्य हम वीरों की यथावत् करें रक्षा,
मरने से बचाऐं हमें, हम उनके लिये हैं।
अस्तु यह सब रखता हूँ तुम्हारे समक्ष मैं,
विष नाश से ही स्वस्थ हो हम लोग जिये हैं।

सूक्त ८

मंत्र- भूतो भूतेषु पय आ दधाति स भूतानामधिपतिर्बभूव।
तस्य मृत्युश्चरति राजसूयं स राजा राज्यमनु मन्यतामिदम्।।१।।

काव्यार्थ- वह ऐश्वर्यवान् जो प्रजाओं को सदा,
उपभोग के पदार्थ पेय आदि है देता;
करता प्रजा के धन की तथा प्राण की रक्षा,
उन द्वारा बना करता है अधिपति तथा नेता।
मृत्यु जो अन्त करता है सबका, वही होता,
तत् राज-तिलक-यज्ञ में अनुचर तथा हेता;
इस भाँति का प्रतापी पुरूष, विज्ञ जनों की,
अनुमति से करे राज्य बने सबका अगेता।

मंत्र- अभि प्रेहि माप वेन उग्रश्चेत्ता सपन्नहा।
आ तिष्ठ मित्र वर्धन तुभ्यं देवा अधि ब्रुवन्।।२।।

काव्यार्थ- तेजस्वी, चेतना भरे, चैतन्यता दाता,
राजन्! हितैषियों की मित्र-मण्डली बढ़ा;
शत्रु विनाश करता हुआ अग्र-अग्र बढ़,
पीछे न पैर रख, सदा दृढ़ता से रह खड़ा
विद्वान्, दिव्य लोग, विजय चाहने वाले,
तुझको सदैव मंत्रणा का पाठ दें पढ़ा।

मंत्र- आतिष्ठन्तं परि विश्वे अमूषज् छियं वसानश्चरति स्वरोचिः।
महत्तद् वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरुपो अमृतानि तस्थौ।।३।।

काव्यार्थ- लोगों को, गद्दी पर विराजमान जिस राजा-
को करना अलंकृत सदैव रोचता रहता;
वह राज-लक्ष्मी को धार, अपने तेज से-
होकर प्रकाशमान, अंध रोकता रहता।
महनीय यश होता यही उस शक्तिमान का,
रक्षण प्रजा का वह सदैव सोचता रहता;
ऐसा ही राजा, राज्य के अधिकारियों युत हो,
नाना प्रकार के सुखों को भोगता रहता।

मंत्र- व्याघ्रो अधि वैयाघ्रे वि क्रमस्व दिशो महीः।
विशस्त्वा सर्वा वांछन्त्वापो दिव्याः पयस्वती।।४।।

काव्यार्थ- हे बाघ के समान पराक्रम लिये राजन्!
रख बाघ के समान प्रवृत्ति प्रहार की;
तू सब महत् दिशाऐं पराक्रम से जीत ले;
जल की सभी धारायें रहें दिव्य सार की;
तू जल समान बन सदा उपकारी जनों का,
जल में भी रहे भावना प्रीति अपार की।

मंत्र- या आपो दिव्याः पयसा मदन्त्यन्तरिक्ष उत वा पृथिव्याम्।
तासां त्वा सर्वासामपामभि विंचाअज्चामि वर्चसा।।५।।

काव्यार्थ- राजन्! जो अन्तरिक्ष तथा पृथिवी लोक पर-
धाराऐं दिव्य जल की निरन्तर हैं बह रहीं,
जो अपने रस से प्राणियों को करती तृप्त हैं,
उपकार कर्म करने का सन्देश कह रहीं।
अभिषेक तेरा करता हूँ इस काल मैं उससे-
जो बल-प्रदाता सार वह निज बीच लह रहीं;
जिसमें तेरा तन पुष्ट रहे, कर्म हो जल सा,
देखा करूँ, प्रजाऐं हैं सुख बीच रह रहीं।

मंत्र- अभि त्वा वर्चसासिचन्नापो दिव्याः पयस्वतीः।
यथासो मित्रवर्धनस्तथा वा सविता करत्।।६।।

काव्यार्थ- राजन्! अतीव सार युक्त, बल की प्रदाता,
दिव्य जलों की धार से, सींचा गया तुझको;
जिससे तू अपने मित्रों का वर्द्धन रहे करता,
प्रेरक प्रभु दिलायें तुझे जल से ही गुण को।

मंत्र- एनाव्याघ्रं परिषस्वजानाः सिंह हिन्वन्ति महते सौभगाय।
समुद्रं न सुभुवस्तस्थिवांसं मर्मृज्यन्ते द्वीपिनमप्स्वन्तः।।७।।

काव्यार्थ- विक्रम में इस नर-सिंह औ नर-व्याघ्र राजा का-
राज्याभिषेक पूर्ण हो गया सुरीति से;
करते हुए राजा की प्रशंसाऐं प्रजा ने,
ऐश्वर्य प्राप्ति को दिया उत्साह प्रीति से।
राजा जलों के मध्य में स्थित समुद्र-सा,
विक्रम में चीते सा जो कर्म करता नीति से;
सुन्दर जनम के लोगों ने, नाना विधि ऐसे-
राजा को सजाया जो रहे दूर भीति से।

सूक्त ६

मंत्र- एहि जीवं त्रायमाणं पर्वतस्यास्यम्।
विश्वेभिर्देवैर्दत्तं परिधिर्जीवनाय कम्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**
हे जग-रक्षक! मेघ सम जग जीवों के नाथ।
हे हृदयों में रह रहे दिव्य गुणों के साथ।।
हे अविनाशी ब्रह्म! हे सुख आनन्द स्वरूप!
जीवन रक्षा हेतु है तू पर कोटा रूप।।
(परकोटा-किले के रक्षा के लिये, किले के चारों ओर बनाई दीवार)

मंत्र- परिपाणं पुरूषाणां परिपाणं गवामसि।
अश्वानामर्वतां परिपाणाय तस्थिषे।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अग्रगामी जन को सदा तू ही रक्षा हेतु।
अरू रक्षा साधन तुही हितकर गौओं हेतु।।
अति द्रुतगामी अश्व वह जिन्हें न भाती टेक।
उनकी पूर्ण सुरक्षा हित तू ही स्थित एक।।

मंत्र- उतासि परिपाणं यातुजम्भनमान्जन।
उतामृतस्य त्वं वेत्थाथो असि जीवभोजनमथो हरिमभेषजम्।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे ब्रह्म! तुझसे सकल जगत् हुआ है व्यक्त।
तू इसके सब जीवों की करता पीर अशक्त।।
तू है हमारी रक्षा का सच्चा साधन, और।
जीवों का पालक तू ही सब रहते तव पौर।।
पीत रोग की औषधि भी तू ही है, और।
तू ही दिलाता मोक्ष-सुख जो आता तव ठौर।।

मंत्र- यस्यान्जन प्रसर्पस्यंगमंग. परूष्परूः।
ततो यक्ष्मं वि बाधस उग्रो मध्यमशीरिव।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे ब्रह्म! तूने प्रकट किया सकल संसार।
तुझसे ही है जीवों में प्राणों का संचार।।
जब जीव भक्ति भरा तेरा करता जाप।
तू उसके प्रति रोम में, द्रुत जाता है व्याप।।
तू उसकी देता हटा राज-रोग की कीच।
नष्ट करे मध्यस्थ ज्यों झगड़ा दो के बीच।।

मंत्र- नैनं प्राप्नोति शपथो न कृत्या नाभिशोचनम्।
नैनं विष्कन्धमश्नुते यस्त्वा बिभर्त्यान्जन।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जगत्-जनक हे ब्रह्म! यह व्यक्ति सुकर्मी होय।
अपनी पावन आत्मा में धारे है तोय।।
अब न इसे क्रोध वचन न ही हिंसा कर्म।
न ही विघ्न है व्यापता चलता है सद्-धर्म।।
न ही कभी होता है यह महा शोक को प्राप्त।
अतुलित शांति प्राप्त कर हुआ व्यक्ति यह आप्त।।

मंत्र- असन्मन्त्राद्दुष्वप्न्याद्दुष्कृताच्छमतादुत।
दुर्हार्दश्चक्षु सो घोरात्तस्मान्नः पाह्यांजन।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मुझे अशुद्धि से बचा जगत् जनक हे ब्रह्म!
करूँ असत् भाषण नहीं करूँ नहीं दुष्कर्म।।
दुष्ट हृदय व्यक्ति तथा बुरे स्वप्न हों दूर।
मम इन्द्रिय नेत्रादि के सब विकार कर चूर।।

मंत्र- इदं विद्वानान्जन सत्यं वक्ष्यामि नानृतम्।
सनेयमश्वं गामहमात्मानं तव पूरूष।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जगत् जनक हे ब्रह्म! तब महिमादेख अपार।
मैं बोलूँगा सत् सदा तज कर असत् विचार।।
हे सबके अगुआ पुरूष! प्रभु! तब दिये पदार्थ।
घोड़े, गौ, भू, आत्म-बल होंगे जगत् हितार्थ।।

मंत्र- त्रयो दासा आन्जनस्य तक्मा बलास आदहिः।
वार्षिष्ठः पर्वतानां त्रिकुन्नाम ते पिता।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ज्वर, कफ एवं सर्प जो जीवन लेता डास।
जगत् जनक हे ब्रह्म! यह तीनों हैं तब दास।।
लोकपाल! तुझसे मिले तीनों सुख का दान।
त्रि-लोकों त्रिकाल में गति वाला तव नाम।।

मंत्र- यदान्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि।
यातूंश्च सर्वान्जम्भयत्सर्वाश्च यातुधान्यः।।९।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तिहु लोकां तिहु काल में गति रखते जो लोग।
तथा ब्रह्म जग-जनक से करते हैं निज योग।।
ब्रह्म, सभी में ख्यात जो हिंसा से जो दूर।
जो परपीड़क दुष्टों को कर देता है चूर।।
वह पीड़ाकर शत्रुओं की सेना कर नाश।
भक्तों को तिहुँ भाँति की देता है सुख राश।।

मंत्र- यदि वासि त्रैककुदं यदि यामुनमुच्यसे।
उभे ते भद्रे नाम्नी ताभ्यां नः पाह्यांजन।।१०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे त्रिकाल त्रिलोकों में गति वालों के धाम।
तीन सुखों के दान हित तेरा त्रैकुद नाम।।
न्यायविदों अरू यमों का हित नित तुझे सुहाय।
इस कारण तू जगत् में यामुन भी कहलाय।।
जगत् जनक हे ब्रह्म दुहु कल्याणी यह पक्ष।
इन दोनों ही नामों के द्वारा हमको रक्ष।

सूक्त १०

मंत्र- वाताज्जातो अन्तरिक्षाद्विद्युतो ज्योतिषस्परि।
स नो हरिण्यजाः शंख कृशनः पात्वंहसः।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

वायु, नभ, विद्युत तथा सूर्य आदि के लोक।
जो इनसे ऊपर प्रकट होता है बेटोक।।
वह रचता सब सूक्ष्म औ सब स्थूल पदार्थ।
अरू उपजाता तेज को जग के जीव हितार्थ।।
वह प्रतिपल है देखता रहता मानव कर्म।
अस्तु पाप को छोड़ हम किया करें सद् धर्म।।

मंत्र- यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादिध जज्ञिषे।
शंखेन हत्वा रक्षांस्यत्त्रिणो वि षहामहे।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे प्रभु! जो तू ज्योतिमय लोकों आगे, और।
सागर से भी उपरि हो प्रकट हुआ सिरमौर।।
रहा सभी का विवेचक सब का न्यायाधीश।
दृष्टा सबके कर्मों का शांति प्रदाता ईश।
हम तव आश्रय से प्रभो! दुष्ट दनुज-दल मार।
सकल भक्षकों को दबा कर देते हैं खार।।

मंत्र- शंखेनामीवाममतिं शंखेनोत सदान्वाः।
शंखे नो विश्वभेषजः कृशनः पात्वंहसः।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जो प्रभु सबके कर्मों का रखे यथावत् ज्ञान।
हम सब उस गुणवान का नित करते हैं ध्यान।।
उस प्रभु से पीड़ा तथा रखते कुमति दबाय।
अरू शुभ-कर्मों हेतु हम करते सभी उपाय।।
दनुज-सखा विपदाएँ जो नर के सुख को खाँय।
उन्हें दबाते पूर्णतः सिर न उठाने पाँय।।
रचना करता सूक्ष्म जो ऐसा प्रभू महान्।
सकल भयों को जीतता करता शांति प्रदान।।
वह रक्षा करता हुआ हमको पथ दिखलाय।
दुर्गुण रूपी शत्रुओं से नित हमें बचाय।।

मंत्र- दिवि जातः समुद्रजः सिन्धुतस्पर्याभृतः
स नो हिरण्यजाः शंख आयुष्प्रतरणो मणिः।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सूर्य-मण्डल में प्रकट अन्तरिक्ष में व्याप्त।
अरू समुद्र ऊपर रहा प्रभु पुष्टि को प्राप्त।।
तेजस्वी प्रभु तेज को करता है उत्पन्न।
अतुल शांति कारक, किया करता दुःख अवसन्न।।
प्रभु प्रशंसा योग्य ज्यों मणि प्रशंसा पाय।
वह सत्कर्मी कर हमें जीवन देत बढ़ाय।।

मंत्र- समुद्राज्जातो मणिर्वृत्राज्जातो दिवाकरः।
सो अस्मान्त्सर्वतः पातु हेत्या देवासुरेभ्यः।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

घिरे बादलों से प्रकट होते सूर्य समान।
प्रभो गगन से प्रकट हो करता ज्योति प्रदान।।
वह मणि सम दुःख नाशता हमरा बने सहाय।
देवों को करते पतित अरि से हमें बचाय।।

मंत्र- हिरण्यानामेकोऽसि सोमात्वमधि जज्ञिषे।
रथे त्वमसि दर्शत इषुधो रोचनस्त्वं प्र ण आयूंषि तारिषत्।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तू ही अकेला ज्योतिमय ज्योतिधारियों बीच।
सूर्यादि से उपरि तू रहता अंध उलीच।।
रथारूढ़ शूरों में तू रहता दृश्यमान।
तत् तूणीरों को सदा करता ज्योतिवान।।
हे प्रभु! अपना आश्रय नित कर हमें प्रदान।
बढ़ा हमारी आयु को करके धर्म-प्रधान।।

मंत्र- देवानामस्थि कृशनं बभूव तदात्मन्वच्चरत्यप्स्वृभ्न्तः।
तत् ते बदध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय
शतशारदाय कार्शनस्त्वार्भि रक्षतु।।७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

नाना दिव्यताओं का प्रकाशक हुआ जो ब्रह्म,
जो कि सूक्ष्म रचनाऐं करता रहा करें;
वह अन्तरिक्ष मध्य ठहरा हुआ जो, उस-
आत्मा वाले जग में विचरता रहा करे।
वह ब्रह्म तव साथ बाँधता हूँ, जिससे कि
तेज, बल, शतवर्ष आयु तू लहा करे;
स्वर्ण आदि नाना धनो अरू तेजों वाला प्रभु,
तुझको सभी प्रकार पालता रहा करे।।

सूक्त ११

मंत्र- अनडवान्दाधार पृथिवीमृत द्यामनडवान्दाधारोर्वन्तरिक्षम्।
अनडवान्दाधार प्रदिशः षडुर्वीरनडवान्विश्वं भुवनमा विवेश।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

प्राण और जीविका को पहुँचाने वाला प्रभु,
धारण किये जो द्यु, पृथिवी विशिष्ट है;
प्राण और जीविका को पहुँचाने वाला प्रभु,
जो कि बड़ा अन्तरिक्ष धारता विशिष्ट है।
प्राण और जीविका को पहुँचाने वाला प्रभु,
जो कि छः बड़ी दिशाऐं धारता विशिष्ट हैं;
वही प्राण औं अपान पहुँचाने वाला प्रभु,
सब भुवनों में सब भाँति से प्रविष्टहै।।

मंत्र- अनडवानिन्द्रः स पशुभ्यो वि चष्टे त्रया छक्रो वि मिमीते अध्वनः।
भूतं भविष्द्भुवना दुहानः सर्वा देवानां चरति व्रतानि।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

प्राण और जीविका को पहुँचाने वाला प्रभु,
नाना भाँति के परम ऐश्वर्य धारता;
वह सर्वव्याप्त प्रभु, जीवों के समस्त कर्म,
प्रतिक्षण विविध प्रकार से निहारता।
वह समर्थ भूमि, द्यु और अन्तरिक्ष रहे,
तीनों मार्ग को विशेष रूप नाप डारता;
सकल पदार्थ त्रय-काल के बनाता वह,
इन्द्रियों में कर्म हेतु सिद्धियाँ बिठारता।।

मंत्र- इन्द्रो जातो मनुष्येऽष्वन्तर्धर्मस्तप्तश्चरति शोशुचानः।
सुप्रजाः सन्त्स उदारे न सर्षद्यो नाश्नीयादनडुहो विजानन्।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

परमैश्वर्य धारी वह परमेश्वर,
तप्त सूर्य सम अति ही प्रकाश धारता;
वह नर भीतर प्रकट हो चिवरता है,
अरू उसके समस्त कर्मों को निहारता।
प्राण और जीविका पहुँचाते प्रभु को न जान,
नर जो स्वयं हेतु भोग स्वीकारता;
उस दुष्ट को समस्त साथी प्रजागण साथ,
प्रभु रह कष्टो दुःखों के बीच डारता।।

मंत्र- अनडवान्दुहे सुकृतस्य लोक एवं प्याययति पवमानः पुरस्तात्।
पर्जन्यो धारा मरूत अधो अस्य यज्ञः पयो दक्षिणा दोहो अस्य।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

प्राण, जीविका जो पहुँचाता ईश, वह पवित्र-
व्यक्तियों की चाह हेतु नित्य वर्तमान है;
सृष्टि के आदि में ही वेद उसने हैं दिये,
जिससे कि व्यक्ति बना नित्य वर्धमान है।

सबको ही पावन बनाता है सदैव वह,
धारणा की शक्ति मेघ, पवन समान हैं;
संगति-क्रिया वह रखता है दूध के समान,
दान शक्ति दोहन के पात्र के समान है।।

मंत्र- यस्य नेशे यज्ञपतिर्न यज्ञो नास्य दातेशे न प्रतिग्रहीता।
यो श्वि जिद्विश्वभृद्विश्वकर्मा धर्मं नो ब्रूत यतमश्चतुष्पात्।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जिसका न यज्ञपति बनता है स्वामी, तथा-
यज्ञ को भी जिसका न स्वामी बना पाइये;
जिसका न दाता, न ग्रहीता रहा स्वामी कभी,
सर्वजित बना सर्व-पोषक ही पाइये।
सृष्टि के सब कर्म करता स्वयं रहे,
चारों दिशा गति करता जिसे लखाइये;
आप उस नभ बीच सूर्य सम ज्योतिपूर्ण,
परमात्मा का ज्ञान हमको कराइये।।

मंत्र- येन देवाः स्वऽरारूरूहुर्हित्वा शरीरममृतस्य नाभिम्।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं धर्मस्य ब्रतेन तपसा यशस्वः।।६।।

काव्यार्थ- जिसकी सहायता से तन को त्यागने के बाद,
दिव्य पुरूष अमरत्व केन्द्र स्वर्ग पर चढ़े;
उसके ही सहारे से यश को चाहते हम लोग,
आलस्य त्याग सूर्य से उठ कर रहें खड़े;
अरू होकर दीप्तिमान कर्म औं सामर्थ्य से,
निज पुण्य लोक प्यारा प्रभु खोजते बढ़ें।

मंत्र- इन्द्रो रूपेणाग्निर्वहेन प्रजापतिः परमेष्ठी विराट्।
विश्वारे अक्रमत वैश्वानरे अक्रमतानडुह्यक्रमत।
सोऽदृहंयत सोऽधारयत।।७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

रक्षक पदार्थों का, पालक प्रजा का बन,
मुख्यतः प्रकाशमान, अग्नि को हाथ ले;
सूर्य जग नायक प्रभू में है प्रविष्ट हुआ,
चालन सामर्थ्य अरू निज रूप साथ ले।
प्राप्त कर सब नायकों का अति हितकारी,
स्थित हुआ वह सूर्य, प्रभु की ही गाथ ले;
अपने स्थान पर दृढ़ता प्रदान कर,
धारण किया है वह सूर्य जग-नाथ ने।।

मंत्र- मण्ध्यमेतदनडुहो यत्रैष वह आहितः।
एतावदस्य प्राचीनं यावान्प्रयड्.समाहितः।।८।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जीविका प्रदाता प्रभु का है यह मध्य भाग,
जहाँ यह रक्खा हुआ सारा विश्व-पाग हैं;
उतना ही प्रभु का है प्राचीन काल भाग,
जितना समाहित भविष्य काल भाग है।
देख सर्वव्यापकता, नित्यता प्रभु की यह,
तत् प्रति जागता हृदय में अनुराग है;
मन, कर्म, वचन से निज को पवित्र कर,
करते सदैव श्रद्धा भक्ति रूप याग हैं।।

मंत्र- यो वेदानडुहो दोहान्त्सप्तानुपदस्वतः
प्रजां च लोकं चाप्नोति तथा सप्तऋषयो विदुः।।९।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

नेत्र, त्वचा, कान, जिह्वा व नाक, बुद्धि, मन,
सात ऋषि नर तन बीच वास करते;
सात सर्वव्यापी हैं प्रवाह, प्रभु धारता जो,
जो कि प्राण, जीवन प्रदानते विचरते।

व्यक्ति जो कि सात ऋषियों से परमेश्वर के,
पूर्ति के प्रवाह द्वारा मन बृद्धि भरते;
वह सुप्रजा व पुण्य-लोक प्राप्त करते हैं,
कष्ट हरते हैं अरू आनन्द को वरते।।

मंत्र- यद्भिः सेदिमवक्रामान्निरां जडधभित्खिदन्।
श्रमेणान डवान्कीलालं कीनाशश्चाभि गच्छतः।।१०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पहुँचाता है प्राण अरू जीवन जो परमेश।
निन्दित कर्म विनाशता बनकर सदा हितेश।।
उसकी भूमि को दबा लेकर हल अरू बैल।
कृषक हटाते हैं लगा जग जीवन का मैल।।
जंघाओं से अन्न को उपजाते वह लोग।।
अरू रस उपजा स्वेद से सुख का करते भोग।।

मंत्र- द्वादश वा एता रात्रीर्व्रत्या आहुः प्रजापतेः।।
तत्रोप ब्रह्म यो वेद तद्वा अनडुहो व्रतम्।।११।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मन, बुद्धि, कर्मेन्द्रियाँ पाँच, ज्ञान की पाँच।
द्वादश रात्रियाँ यह प्रभु के व्रत को दीं बाँच।।
नर, प्रभु-गुण कर्म स्वभाव इनसे बुद्धि में लाय।
यह उस प्रभु का व्रत रहा जो जीवन पहुँचाय।।

मंत्र- दुहे सांय दुहे प्रातर्दुहे मध्यंदिनं परि।
दोहा ये अस्य संयन्ति तान्विद्मानुपदस्वतः।।१२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सांय को सब ओर से पूर्ण करे परमेश।
प्रातः को भी पूर्ण वह करता प्रभु हितेश।।
मध्याहन में पूर्ण वह करता जीवन सार।
वह प्रभु पूर्ति प्रवाह का है अक्षय भण्डार।।
होते रहते प्राप्त जो पूर्ति प्रवाह अनूप।
हम हैं उनको जानते अविनाशी के रुप।।

सूक्त १२

मंत्र- रोहण्यसि रोहण्यस्थ्नश्छिन्नस्य रोहणी।
रोहयेदमरून्धति।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

रोहणी औषधि टूट के उपचार में नीक।
यह खण्डित अवयव बढ़ा कर देती है ठीक।।
टूटी हड्डी जोड़ती रोक न डाले रंच
भर कर टूटे भाग को कर देती है टंच।।

मंत्र- यत्ते रिष्टं यत्ते घुत्तमस्ति पेष्ट्रं त आत्मनि।
घाता तद्धया पुनः सं दधत्परूषा परूः।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे नर! तेरे शरीर का जला हुआ जो अंग।
चूर-चूर जो अंग या टूट हो गया भंग।।
यह औषधि उस अंग का खण्डित एक भाग।
दूसरे खण्डित भाग से जोड़ करे बेदाग।।

मंत्र- सं ते मज्जा मज्ज्ञा भवतु समु ते परूषा परूः।
सं ते मांसस्य विस्रस्तं समस्थ्यपि रोहतु।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे नर! खण्डित मज्जा तव मज्जा से मिल जाय।
बढ़कर टूटा पोरू भी पोरू से मिल जाय।।
छिन्न माँस का भाग, हो ठीक पुनः जुड़ जाय।
टूटी हड्डी भी तेरी ठीक-ठाक जुड़ जाय।।

मंत्र- मज्जा मंज्ञा सं धीयतां चर्मणा चर्म रोहतु।
असृक्ते अस्थि रोहतु मांस मांसेन रोहतु।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

इस औषधि द्वारा मिले मज्जा मज्जा साथ।
तथा चर्म भी चर्म से बढ़ कर मिले प्रगाढ़।।
रूधिर और अस्थि बढ़ें, माँस माँस के साथ।
करे औषधि यह सदा सुखमय तेरा पाथ।।

मंत्र- लोम लोम्ना सं कल्पया त्वचा सं कल्पया त्वचम्।
असृक्ते अस्थि रोहतु च्छिन्नं सं धेह्योषधे।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तेरे रोम को रोम संग औषधि देय जमाय।
तथा त्वचा के संग मिल कर तब त्वचा समाय।।
तेरा रूधिर हड्डी बढे कच्चे पन को छोड़।
औषधि टूटे अंग को भली भाँति दे जोड़।।

मंत्र- स उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रव रथः सुचक्रः सुपविः सुनाभिः।
प्रति तिष्ठोर्ध्वः।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे नर! औषधि ने दिया है तुझको आरोग्य।
सो तू उठ कर अग्र बढ़ लभ कल्याणी भोग्य।।
जैसे रथ शुभ नाभि युत दृढ़ पहियों का होय।।
अरू लौह पट्टी चढ़ी तत् पहियों पर होय।।
अन्य रथों को वह बहुत पीछे देता छोड़।
वैसे तू चल वेग से सब में बन बेजोड़।।

मंत्र- यदि कर्तं पतित्वा संशश्रे यदि वाश्मा प्रहृतो जघान।
ऋभू रथस्येवाडंगानि सं दधत्परूषा परूः।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

आरा गिर कर यदि हुआ तब शरीर में घाव।
या पत्थर की चोट से हुआ रक्त का स्राव।।
तब क्षत भाग जोड़ दे औषधि उसी प्रकार।
ज्ञानी अवयव जोड़ ज्यों रथ का करे सुधार।

सूक्त १३

मंत्र- उत देवारा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः। उतागश्च-
कुंश देवा जीवयथा पुनः।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

दिव्य गुणी विद्वान् तुम धारे हितू सुभाय।
अवनति पाये मनुज को फिर से देत उठाय।।
अरू वह पाप लिप्त नर जो हैं मृतक समान।
तुम उनके पाप छुड़ा देते जीवन दान।।

मंत्र- द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आवातु व्यान्यो वातु यद्रपः।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

बहने वाले आयु यह दोनों प्राण अपान।
चलते इन्द्रिय देश अरू बाहर दूर स्थान।।
बह कर बल को बढ़ाता है उनमें से एक।
तथा अपर बह दोषों को बाहर देता फेंक।।

मंत्र- आ वात वाहिभेषजं वि वात वाहि यद्रपः।
त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत इयसे।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे वायु! लो रोग की नाशक औषधि एक।
हे वायु/बहकर सभी दोषों को दे फेंक।।
सर्व-रोग-हर वायु तू देव-दूत समान।
पहुंचाता संदेश है नर के उर स्थान।।

मंत्र- त्रायन्तामिमं देवास्त्रायन्तां मरूतां गणाः।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत्।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

स्वस्थ इन्द्रियाँ जीव को रक्षण करें प्रदान।
पवनों का आवागमन हो रक्षा प्रधान।।
पाँच भूत भू, जल तथा तेज, वायु, आकाश।
साम्यावस्था धार कर देवें रक्षण-राश।।

मंत्र- आ त्वागमं शंतातिभिरथो अरिष्टतातिभिः।
दक्षं त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मैं विनाश को नाशते सामर्थ्यों के साथ।
तथा शांति-दा कर्म ले आया हूँ तब पास।।
हे नर! तेरे हेतु मैं लिये उग्र बल साथ।
महारोग तेरा हटा करता उज्ज्वल पाथ।।

मंत्र- अयं ते हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

भाग्यवान यह हाथ मम अधिक अधिक वह हाथ।
सर्वरोग यह नाशता उससे मंगल छात।।

मंत्र- हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्व वाचः परोगवी।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभि मृशामसि।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

दस शाखाऐं धारते दोनो हाथों साथ।
वाणी द्वारा बोलती जिह्व प्ररेण बात।।
यह दोनों ही हाथ जो करें, निरोगी गात।
इनसे हम छूकर तुझे करें सुखों के साथ।।

सूक्त १४

मंत्र- अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात्सो अपश्यज्जनितारमग्रे।
तेन देवा देवतामग्र आयन्तेन रोहान् रूरूहुर्मेदध्यासः।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जगत्-प्रकाशक प्रभु के तेज से अजन्मा-
जीव-आत्मा धरा पे आया तन धार कर;
उसने विलोका निज जनक प्रभु को, जो कि-
पूर्व से था वर्तमान रचना प्रसार कर।

पूर्वकाल देवत्व को पाया देवताओं ने था,
उसकी ही महिमा को मन में उतार कर;
मेघावी पवित्र पुरुषों ने लभा उच्च पदख
उसकी उपासना में निज को बिठार कर।।

मंत्र- क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यान्हस्तेषु बिभ्रतः।
दिवस्पृष्ठं स्वः गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम्।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे मनुष्यों! पर-उपकार करने के लिये,
अन्न आदि धन-धान्य प्राप्त करते रहो;
प्रभु की सहायता व निज पुरूषार्थ द्वारा,
जग बीच पूर्ण सुख व्याप्त करते रहो।
विद्वान् पुरूषों की संगति से निज बीच,
व्यवहार-ज्ञान पर्याप्त भरते रहो;
अरू सुख-स्वरूप परमात्मा को लभ,
दुःख-द्वन्द्व अपने समाप्त करते रहो।।

मंत्र- पृष्ठात्पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारूहमन्तरिक्षाद्दिवमारूहम्।
दिवो नाकस्य पृष्ठात्स्वर्ज्योतिरगामहम्।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्राप्त करने को किया,
मैंने योग-अभ्यास, विद्या-विकास हैं;
तद् द्वारा दृढ़ता से पृथिवी के पृष्ठ चढ़ा,
पृथिवी से किया अन्तरिक्ष को प्रवास है।
अन्तरिक्ष पष्ठ से चढ़ा मैं द्यु-लोक पृष्ठ,
जो है सुखदायी, जहाँ रहता प्रकाश हैं;
द्यु-लोक-पृष्ठ से किया, प्रभु को प्राप्त मैंने,
जो हैं ज्योति स्वरूप, सर्व सुख राश है।।

मंत्र- स्वर्ग्यन्तो नापेक्षन्त आ द्यां रोहन्ति रोदसी।
यंज्ञ ये विश्वतोधारं सुविद्वांसो वितेनिरे।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

मन, कर्म औं वचन में सदैव सत्य धार,
जो महत् ज्ञानी विद्याभ्यास करते;
अरू योग-अभ्यास द्वारा पृथिनी के लोक,
अन्तरिक्ष, द्यु-लोक को स-हास चढ़ते।
देता सब भाँति की जो धारणा की शक्ति, ऐसा-
ब्रह्म पूजने का जग में प्रसार करते;
वे ही आत्म-ज्योति प्राप्त कर, सुख रूप ब्रह्म-
को हृदय से चाहते हैं, यश प्राप्त करते।।

मंत्र- अग्ने प्रेहि प्रथमो देवतानां चक्षुर्देवानामुत मानुषाणाम्।
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्ऽयन्तु यजमानाः स्वस्ति।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

अग्नि रूप प्रभुदेव! हमको हो प्राप्त, तू ही-
सब विज्ञों में मुख्य, जग में कला करे;
तू ही सूर्य आदि लोकों, सब मानवों का नेत्र,
सब को ही सब काल देखता रहा करे।
दानशील यजमान लोग, ब्रह्म-ज्ञानियों-
महात्माओं, योगियों की संगति पला करें;
औ' तपस्वियों से सम प्रीति करते हुए वे,
पर-ब्रह्म प्राप्त कर अपना भला करें।।

मंत्र- अजमनज्मि पयसा घृतेन दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तम्।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमत्तमम्।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हम शुभ लक्षणों से युक्त, गतिमान, अरू-
अत्यन्त शक्तिशाली आत्मा महत् को;
अग्नि रूप प्रभु-देव की प्रदत्त शक्तियों से,
जोड़ लभते हैं ज्योतिमान ज्ञान-नद को।

उस ज्ञान द्वारा सुख स्वरूप परम ब्रह्म-
देखें अरू खोजें तत् महिमा वृहद् को;
उन्नति की सीढ़ी पर चढ़ते सतत हम,
पुण्य लोक पहुँचें व धारें मोक्ष पद को।।

मंत्र- पन्चौदनं पन्चभिरंगुलिभिर्दव्योद्वर पन्चधैतमोदनम्।
प्राच्यां दिशि शिरो अजस्य धेहि दक्षिणामां दिशि दक्षिणं धेहि पार्श्वम्।।७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

पाँच भूत भूमि, जल, तेज, वायु, अन्तरिक्ष-
द्वारा बना हुआ यह मानव शरीर है;
इस बीच पाँच इन्द्रियों के साथ अविनाशी,
सूक्ष्म तन धारी बैठा आत्मा का कीर है।
इसको तू भौतिक-शरीर से जुड़ा न देख,
तू विवेक शक्ति रखे योगियों में हीर है;
सम्मुख दिशा में रख सिर जीव-आत्मा का,
दक्षिण में दक्ष कक्ष भाग, जो कि क्षीर है।।

मंत्र- प्रतीच्यां दिशि भसक्ष्मस्य घेद्युत्तरस्यां दिश्युत्तरं धेहि पार्श्वम् ऊर्ध्वायां दिश्य १ जस्यानूंकं धेहि दिशि ध्रवायां धेहि
पाजस्यमन्तरिक्षे मध्यतो मध्यमस्य।।८।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे मनुष्यों! योग-साधना से पा विवेक दृष्टि,
और पृथक्करण की शक्ति प्राप्त कर तू,
जीव-आत्मा के सूक्ष्म अवयवों में से एक,
कटि भाग पश्चिम दिशा की ओर धर तू।
उत्तर दिशा में बाँए पाश्व का अंतः भाग,
ऊर्ध्व दिशा में तत् रीढ़ भाग धर तू;
ध्रुव की दिशा में बल का प्रदाता उदर औ,
अन्तरिक्ष बीचों बीच मध्य भाग घर तू।।

मंत्र- शृतमजं शृतया प्रोर्णुहि त्वचा सर्वेरंगै संभृतं विश्वरुपम्।
स उत्तिष्ठेतो अभि नाकमुत्तमं पद्मिश्चतुर्भिः प्रति तिष्ठ दिक्षु।।९।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे मनुष्य! आत्म-विवेक द्वारा परिपुष्ट-
ज्ञानी बन कर परिपक्वताऐं व्याप तू;
निज जीव-आत्मा अजन्मा को शुभ-रीति,
परिपक्व परमात्मा से रख ढाप तू।
स्वर्ग प्राप्ति हेतु ब्रह्म में तू लवलीन रह,
योगियों की भाँति नित अपने को ताप तू;
अरू धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, रूप पाँवों चल,
सब ही दिशाओं बीच अपने को थाप तू।।

सूक्त १५

मंत्र- समुन्पतन्तु प्रदिशो नभस्वतीः समभ्राणि वातजूतानि यन्तु।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो बाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु।।१।।

काव्यार्थ- सारे संसार को सौगात खुशी की देते,
मेघ चारों ही दिशाओं से घुमड़ कर आयें।।
वायु जोरों से बहे, जल भरे बादल लायें,
छाऐं आकाश में बादल ये बहुत उमगाये;
घड़घड़ाते हुए बरसायें जल की धाराऐं।
सारी दुनिया के लिए तृप्ति-प्रदाता बनकर,
प्यास को नष्ट करें, ताप से लड़ कर आयें।।

मंत्र- समीक्षयन्तु तविषाः सुदानवोऽयां रसा ओषधीभिः सचन्ताम्।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग्जायन्तामोषधयो विश्वरुपाः।।२।।

काव्यार्थ- श्रेष्ठ गुण के, जलों का श्रेष्ठ दान देते जो,
मेघ ऐसे, धरा के हेतु जलों को ढोवें;
जलों के रस तथा अन्नादि ओषधि के रस,
वर्षा द्वारा सदा संयुक्त धरा पर होवें।
नाना रूपों भरी औषधियाँ यव व चावल सी,
होवें उत्पन्न, परिश्रम को अमर कर जायें।।

मंत्र- समीक्षयस्व गायतो नभांस्यपां वेगासः पृथगुद्विजन्ताम्।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग्जायन्तां वीरुधो विश्वरूपाः।।३।।

काव्यार्थ- हे प्रभो! गायकों को तू उमड़ उमड़ आते,
गरजने वाले बादलों का दरस करवा दे;
प्रवाह जल के निरन्तर यहाँ चलते ही रहें;
इन प्रवाहों से तू भूमि समृद्ध करवा दे।
अनेक भाँति की फसलें उगें अधिकता से,
भूमि पर मेघ के जल ऐसा असर कर जायें।

मंत्र- गणास्त्वोप गायन्तु मारुताः पर्जन्य घोषिणः पृथक्।
सर्गा वर्षस्य वर्षतो वर्षन्तु पृथिवीमनु।।४।।

काव्यार्थ- दयालु मेघ! गरजते हुए अंधड़ के गण,
पृथक् पृथक् तेरा आदर से गान करते हों;
धड़धड़ाते हुए वर्षा के रूप तेरे जल,
प्राणियों के हृदय भीतर मिठास भरते हों।
तेरी अनुकूल हो वर्षा हमारी भूमि पर,
इसके पुत्रों का कहीं पर न उजड़ घर जाये।

मंत्र- उदीरयत मरुतः समुद्रातस्त्वेषो अर्को नभ उत्पातयाथ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु।।५।।

काव्यार्थ- सूर्य-किरणों की मदद लेते हुए वायु तुम,
जल को सागर से उठाओ, गगन कोले जाओ;
गगन के छाए, घुमड़ते, गरजते मेघा से,
धड़धड़ाती हुई जलधार को तुम बरसाओ।
प्यासी धरती की बुझे प्यास, तृप्त हो जए,
बरसते जल से नदी, ताल सकल भर जायें।।

मंत्र- अभि क्रन्द स्तनयार्दयोदधिं भूमिं पर्जन्य पयसा समङ्.ग्धि।
त्वमा सृष्टं बहुलमैतु वर्षमाशारैषी कृशगुरेत्वस्तम्।।६।।

काव्यार्थ- मेघ तू गर्जना कर, बिजलियों को कड़का दें,
नीले सागर को हिला, भूमि तृप्त करवा दें;
तेरा भेजा हुआ, बहु-बहु पदार्थ वाला जल,
हमारे पास चला आवे, ताल भरवा दे।
सहारा चाहते किसान, दुबली गायों को,
चरा कर घर को चले जायें, बहुत हर्षाऐं।।

मंत्र- सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत।
मरूद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनु।।७।।

काव्यार्थ- हे मनुष्यों! जो सदा श्रेष्ठ जल दिया करते,
जो कि आकार में अजगर समान लगते हैं;
ऐसे जल-स्रोत करें रक्षा, करें तृप्त तुम्हें,
बड़े उपकारी ये, दानी स्वभाव रखते हैं।
पवन से प्रेरणा पाकर, ये मेघ धरती पर,
जितना हम चाहा करें, उतना बरस कर जाऐं।।

मंत्र- आशामाशां वि घोततां वाता वान्तु दिशोदिशः।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः सं यन्तु पृथिवीमनु।।८।।

काव्यार्थ- नीले आकाश में काली घटाऐं छायी हों,
दिशा-दिशा में चमचमाती बिजलियाँ चमकें;
दिशा-दिशा में हवाऐं विविध प्रकार चलें,
प्यासे मानव के हटें सारे आवरण भ्रम के।
हवाओं द्वारा चलाये गये जल के बादल,
धार अनुकूलता, नभ बीच उमड़ कर आयें।।

मंत्र- आपो विद्युदभ्रं वर्षं सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत।
मरूद्भिः प्रच्युता मेघाः प्रावन्तु पृथिवीमनु।।९।।

काव्यार्थ- मेघ, जल, वर्षा, तड़ित् और वृहत् अजगर सम,
महादानी जलों के स्रोत यहाँ वास करें;
तुम्हारी रक्षा करें, तुमको सदा तृप्त करें,
आये दुःख-द्वन्द्व, अनिष्ट सभी का नाश करें।
वायु प्रेरित गगन के मेघ सदा धरती पर,
करें अनुकूल ही वर्षा, नहीं मुड़ कर जायें।।

मंत्र- अपामग्निस्तनूभिः संविदानो य ओषधीनामधिपा बभूव।
स नो वर्षं वनुतां जावेदाः प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्परि।।१०।।

काव्यार्थ- जल के फैले हुए विस्तारों से मिलन करता,
सब शरीरों के साथ एक रूप होता हुआ;
पालता यव तथा चावल सरीखी औषधियाँ,
सूर्य-अग्नि जो रहा आस, स्वप्न बोता हुआ।
वह सूर्य-अग्नि हमें वृष्टि-जल प्रदान करे,
जो है अमृत समान, प्राण सरस कर जाये।।

मंत्र- प्रजापतिः सलिलादाः समुद्रादाप ईरयन्नुदधिमर्दयाति।
प्र प्यायतां वृष्णो अश्वस्य रेतोऽर्वाडे.तेन स्तनयित्नुनेहि।।११।।

काव्यार्थ- प्रजापति सूर्य समुद्र से जलों को प्रेरित कर,
समुद्र को दबाए, वाष्प रूप जल खींचे;
दूर तक फैला हुआ मेघ जलों को धारे,
हो घनी भूत, बरस कर धरा का दुःख मीचे।
ऐसा तू मेघ! गरजता, बरसता खेतों पर,
हमारे पास आ, हर वाटिका को महकाए।।

मंत्र- अपो निषन्चन्नसुरः पिता नः श्वसन्तु गर्गरा अपां वरूणाव
नीचीरपः सृज। पृश्निबाहवो मण्डूका इरिणानु।।१२।।

काव्यार्थ- वृष्टि-जल-धारी, बरसता हुआ, पालक मेघ,
गड़गड़ाता है, जल-गगरे श्वास ज्यों लेवें;
हे वरण योग्य! जलों को तू छोड़ पृथिवी पर,
प्राण-धारी स्वयं की कर्म-तरी को खेवें।
विचित्र रंग के, छोटी भुजाओं के मेंढक,
खुशी से भरते हुए बोलते टर्-टर् जाते।।

मंत्र- उपप्रवद मण्डूकि वर्षमा वद तादुरि।
मध्ये ह्रदस्य प्लवस्व विगृह्य चतुरः पदः।।१४।।

काव्यार्थ- मेंढकी जल से भरे ताल में डुबकी लेती,
पास आकर तू सुना अपनी रस भरी बातें;
तैरते रहने वाली मेंढकी वर्षा को बुला,
जिससे आनन्द भरी होवें तेरी दिन रातें।
वर्षा आते ही जल भरे सर में,
अपने पैंरो को तू फैला कर तैर उमगाए।।

मंत्र- खण्वखाऽइ खैमखाऽइमध्ये तदुरि।
वर्ष वनुष्वं पितरो मरूतां मन इच्छतः।।१५।।

काव्यार्थ- हे बिल में रहने वाली, शान्त ही रहने वाली,
हे कष्ट में भी सदा थिरता को गहने वाली;
हमारे कान फोड़ती हे मेंढ़की छोटी!
हे मेघ-वर्षा से आनन्द में बहने वाली!
हे पालकों! करो वर्षा का सदा ही सेवन,
सबको जोड़ो, कहीं याजक नहीं बिछड़ जाए।।

मंत्र- महान्तं कोशमुदचाभि षिन्च सविद्युतं भवतु वातु वातः।
तन्वतां यंज्ञ बहुधा विसृष्टा आनन्दिनीरोषधयो भवन्तु।।१६।।

काव्यार्थ- प्रभु! जल के महत् भण्डार मेघ प्रेर,
जल की धरा पर सर्वत्र बरसात कर;
खेतों में प्रचुर अन्न उत्पन्न कर, तथा-
वायु अनुकूल चला, मौसम सुहात कर।
चावल व यव आदि औषधियाँ पुष्ट कर,
यज्ञ-धूम-पूर्ण हर शाम औं प्रभात कर;
हमको बना कर सच्चरित्र, शुभकर्मी, प्रभु!-
आनन्द, सुखों से पूर्ण हर दिन-रात कर।।

सूक्त १६

मंच- बृहन्नेषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति।
य स्तायन्मन्यते चरन्तसर्वं देवा इदं विदुः।।१।।

काव्यार्थ- आत्मज्ञानी जन पुरूष महान्।
अपने दिव्य ज्ञान से प्रभु के गुण लेते हैं जान।।
कर लेते हैं ज्ञात लोक सब, प्रभु ने जिन्हें बनाया।
तथा बड़ा अधिष्ठाता बन, नियमों बीच तनाया;
करे निरीक्षण सदा, निकटवासी एक व्यक्ति समान।।
करता प्रभु विस्तार सभी का, अरू रक्षा करता है,
सबको कर गतिशील, अंध को वह भक्षा करता है;
सबमें रहे विचरता, सबकी रखता है पहचान।।

मंत्र- यस्तिष्ठति चरति यश्च वन्चति यो निलायं चरति यः
प्रकड.कृम्। द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद्वेद वरूणस्तृतीयः।।२।।

काव्यार्थ- **सवैया**

ठहरा हो कोई, चलता हो कोई,
ठगने को कोई निज नाम करे;
कोई काम करे खुलके अथवा-
छिप के अपने घर काम करे।
कोई दो नर बैठके एक जगह-
करें गुप्त विचार न आम करें,
एक तीसरा है प्रभु, जानता जो-
तत्काल सभी, न विराम करे।।

मंत्र- उतेयं भूर्मिवरूणस्य राज्ञ उतासौ द्यौर्बृहती दूरेअन्ता।
उतो समुद्रौ वरूणस्य कुक्षी उतास्मित्रल्प उदके निलीनः।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

यह भूमि अरू यह देता जो दिखाई हमें-
द्यु लोक पूर्व, पश्च, दक्षिण, उदीच में;
इन बीच सब ही पदार्थ प्रभु-देव के हैं,
सब हैं इसी की एक अल्प सी उलीच में।
सागर बृहत् द्वय इसकी हैं दोनों कोख,
इसके आधीन सब जन्म अरू बीच में;
जैसा यह है अति बड़े समुद्रों में वैसे-
पानी की बहुत छोटी एक बूँद मीच में।।

मंत्र- उत यो द्यामतिसर्पात्परस्तान्न स मुच्यातै वरूणस्य राज्ञैः।
दिव स्पशः प्र चरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम्।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

कोई व्यक्ति करके कुकर्म यदि द्युलोक-
की पहुँच से भी परे दूर भाग जायगा;
तो भी वह प्रभु-देव सर्व-शक्ति धारक के,
शासन से रंच मात्र छूट नहीं पाएगा।
घूमते हैं गुप्तचर उसके जगत् बीच,
कर ले प्रयत्न नहीं खुद को बचाएगा;
अपनी हजारों आँखों द्वारा देखते हैं सदा,
उनकी पकड़ में तुरन्त वह आएगा।

मंत्र- सर्वं तद्राजा वरूणों वि चष्टे यदन्तरा रोदसी यत्परस्तात्।
संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिव श्वघ्नी नि मिनोति तानि।।५।।

काव्यार्थ- हर वक्त देखता है प्रभुवर, न ढील करता।।
ग्रहणीय, सर्वश्रेष्ठ होने से जो वरूण है,
नाना गुणों से पूरित होने से जो सगुण हैं;
रहता सदा सजग जो, राजा जगत् का ऐसा-
हर वक्त देखता है प्रभुवर, न ढील करता।।
जो कुछ भी भूमि, द्यु अरू उससे भी जो परे है,

प्रभु-देखता स्वयं ही उसको, नहीं टरे हैं;
ऐसा नहीं है कुछ भी, जो ज्ञात ना उसे हो,
सब पर ही अपनी दृष्टि, होकर हठील धरता।।
जैसे कि एक जुआरी पासों को नापता है,
वैसे ही पलक तक के झपकों को नापता हैं;
गिनता है सत्कर्म जो नर ने कभी किये हैं,
झोली में दुष्कर्म के जितने करील भरता।।

मंत्र- ये ते पाशा वरूण सप्त सप्त त्रेधा तिष्ठन्ति विविषा रूशन्तः।
छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं यः सत्यवाद्यति तं सृजन्तु।।६।।

काव्यार्थ- हर वक्त देखता है प्रभुवर न ढील करता।।
त्रि रीति से बँधे अपने सात सात नाशक-
पासों को लिये फिरता, प्रभुवर वरूण प्रशासक;
उससे असत्यवादी नर को वह बाँध देता,
खल छिन्न-भिन्न होता, कष्टों की झील पड़ता।।
जो सर्वश्रेष्ठ एवं ग्रहणीय वरूण नामक,
प्रभु की शरण में जाता, होता कभी न भ्रामक;
प्रभु कर्म-फल-प्रदाता, कर देता मुक्त उसको,
रहता सदैव ही है, जो सत्यशील महता।।

मंत्र- शतेन पाशैरभि धेहि वरूणैनं मा ते नोच्यनृतवाड्. नृचक्षः।
आस्तां जाल्म उदरं श्रंसयित्वा कोशइवाबन्धः परिकृत्यमानः।।७।।

काव्यार्थ- **सवैया**

नर जो करता बहु पाप, उसे-
शत पाश लिये प्रभु बाँध रखो;
उसको भी प्रभु नहीं छोड़ता जो,
कर्मों से सदैव असत्य भखो।
भरने के लिये निज पेट को, जो-
दूसरों को सताने में नाहि थके;
वह पाप भरा द्रुत ही अपना,
कर नाश सदा परिणाम चखो।।

मंत्र- यः समाभ्योऽवरूणो यो व्याभ्योऽयः संदेश्योऽवरूणो यो विदेश्यः।
यो दैवो वरूणो यश्च मानुषः।।८।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

प्रभु जो कहता हैं वरूण इस कारण, कि-
वह अति ग्रहणीय श्रेष्ठतम कन्द है;
उसका समान भाव रखना स्वभाव, किन्तु-
रखना विषम भाव करता न बन्द है।
वह है समान देश का निवासी, साथ ही में-
रखता विशेष देश वास का प्रबन्ध है;
जैसे उसका है सम्बन्ध देव गण साथ,
वैसे वह धारे मनुजों से सम्बन्ध है।।

मंत्र- तैस्त्वा सर्वैरभि ष्यामि पाशैरसावामुष्यायणामुष्याः पुत्र।
तानु ते सर्वाननुसंदिशामि।।९।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जिसको वरूण नाम से जगत् जानता है,
ऐसा मैं हूँ दण्ड का प्रदाता परमात्मा;
अमुक पिता, अमुक मात के हे पुत्र! तूने-
सत्य व्यवहार का किया है पूर्ण खात्मा।
दण्ड रूप अपने भविष्य, भूत, वर्तमान-
बीच फैले पाशों से मैं तुझको हूँ बाँधता;
उन सबको मैं समझाता तुझे पूर्ण रूप,
प्रेरता हूँ, तुझको, पवित्र कर आत्मा।।

सूक्त १७

मंत्र- ईशानां त्वा भेषजानामुज्जेष आ रभामहे।
चक्रे सहस्रवीर्यं सर्वस्मा ओषधे त्वा।।१।।

काव्यार्थ- जनता के भय को दूर जो करते समर्थ जन,

उन बीच में विशेष ही सामर्थ्य धारते;
राजन्! विजय पाने के लिये शत्रु पर, तेरे-
आश्रय को, तुझे राजा के पद पर बिठारते।
औषधि समान कष्ट मोचते परोपकारी-
राजन्! प्रजा रक्षार्थ तुझे प्रभु ने बनाया;
वह धारता निज बीच है सामर्थ्य सहस्रों,
उसने अतुल सामर्थ्य है तब बीच तनाया।।

मंत्र- सत्यजितं शपथयावनीं सहमानां पुनः सराम्।
सर्वाः समृह्योदषधीरितो नः पारयादिति।।२।।

काव्यार्थ- जो सत्य ही है जीतती, सब शाप हटाती,
जिसने कि अग्रगामी हो अरिदल को हराया;
उस सेना को तथा समस्त ताप नाशनी,
अपनी प्रजाआं को यथावू मैंने बुलाया।
उनके समक्ष मैंने इस महापराक्रमी,
को राजपद प्रदान का उद्देश्य बताया;
'यह शत्रुओं का नाश अविलम्ब करेगा,
मिट जाएगा वह शत्रु कि जिसने है सताया।।''

मंत्र- या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे।
या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा।।३।।

काव्यार्थ- वह शत्रुओं की सेना जो कि अपने आदि से-
दुष्टाचरण व पाप को स्वीकार किये है;
अरू जो बलादि रस के हरण हेतु हमारे,
समृद्ध, बली देश पर प्रहार किये है।
हमारा सेनापति अतीव नीति में कुशल,
उन शत्रुओं की सेना बीच में भेदभाव डाल
एक दूसरे को गालियाँ दें उसके सिपाही,
आपस में लड़ मरें, अतीव दुःख पाल दे।

अपने नवोत्पन्न शिशु का रक्त चूसती,
रक्त-पिपासु क्रूर एक नारी समान बन;
होकर के बुद्धि से भ्रमित, अपने हितू जन का,
कर देवें सर्वनाश वे विद्वेष-खान बन।।

मंत्र- यां ते चक्रुरामे पात्रे चक्रुर्नीललोहिते।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुस्तया कृत्याकृतो जहि।।४।।

काव्यार्थ- राजन्! तेरी प्रजा व तेरे खान-पान को,
जिन हिंस्र शत्रुओं ने है विपत्ति में डाला;
डाला है तेरे मार्ग को, तन को विपत्ति में,
अरू नष्ट किया है तेरी निधियों का उजाला।
धर्मात्माओं को दिया नित कष्ट जिन्होंने,
ऐसों के लिये नित्य ही बन काल कराला;
उन हिंस्र शत्रुओं को, पाप-पंक पड़ों को,
ऐसा कठोर दण्ड दे, जाये न सँभाला।।

मंत्र- दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि।।५।।

काव्यार्थ- जीवन के कष्ट और नींद बीच व्यग्रता,
अलक्ष्मी, अभाव जो तन मन को चिता दें;
राक्षस बड़े व दुष्ट नाम वाले दुर्वचन,
इन सबको अपने बीच कसे हम लोग मिटा दें।।

मंत्र- क्षुधामारं तृष्णामारमगोतामनपत्यताम्।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे।।६।।

काव्यार्थ- हे अपामार्ग औषधि समान भूप! हम-
तेरे ही साथ शोधते संतति-अभाव को;
गौओं की हानि और वाणी-दोष शोधते,
अरू शोधते हैं भूख-प्यास के प्रभाव को।

मंत्र- तृष्णामांर क्षुधामारमथो अक्षपराजयम्।
अपामार्ग त्वया व्यं सर्वं तदप मृज्महे।।७।।

काव्यार्थ- हे अपामार्ग औषधि समान भूप! हम-
तेरे ही साथ शोधते इन्द्रिय-विनाश को;
उत्तम प्रबन्ध से तेरे, समृद्धि बढ़ाते,
कोई न भूख प्यास में मरता हताश हो।

मंत्र- अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेक इद्वशी।
तेन ते मृज्म आस्थितमथ त्वमगदश्चर।।८।।

काव्यार्थ- अन्नादि तापहर पदार्थों को अकेला,
वश में जो रखा करता हमारा प्रभू वर;
राजन्! तेरा भय हम उसी आश्रय से शोधते,
अब तू निरोगता को धारता हुआ विचर।

सूक्त १८

मंत्र- समं ज्यातिःसूर्येणाह्ना रात्री समावती।
कृणोमि सत्यमूतयऽरसाः सन्तु कृत्वरीः।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ज्योति सूर्य, दिन रात्रि ज्यों रखें नित्य सम्बन्ध।
वैसे मैं रखता सदा सत्य साथ सम्बन्ध।।
जीवन का रस कुतरतीं जो विपत्तियाँ क्रूर।
वह सत्य सम्बन्ध को लख कर भागें दूर।।

मंत्र- यो देवाः कृत्यां कृत्वा हरादविदुषो गृहम्।
वत्सो धारूरिव मातरं तं प्रत्यगुप पद्यताम्।।२।।

काव्यार्थ- जैसें कि दूध पीता बछड़ा, अपनी माता के-
ही पास दौड़ आता है, किंचित नहीं हटता;
हे विज्ञों! उसी भाँति जो अज्ञानी-व्यक्ति का-
घर हिंसा धार छीनता है धार कपटता;
उसका वह पाप-कर्म लौट आता उसी पर,
उसको न रंच छोड़ता, उस ही से चिपटता।

मंत्र- अमा कृत्वा पाप्मानं यस्तेनान्यं जिघांसति।
अश्मानस्तस्यां दग्धायांमां बहुलाः फट्करिक्रति।।३।।

काव्यार्थ- दुष्टों का साथी बन के जो नर करता पाप है,
शिष्टों का नाश करना, मारना है चाहता;
वह नष्ट होता शीघ्र ही, फट जाता स्वयं ही-
पत्थर अतीव तप्त जो अन्यों को दाहता।

मंत्र- सहस्रघामन्विशिरवान्विग्रीवां छायया त्वम्।
प्रति स्म चक्रुषे कृत्यां प्रियां प्रियावते हर।।४।।

काव्यार्थ- जिस दुष्ट की विरूद्व गति, खान-पान है,
उसको सहस्र-धाम, तू बहु दण्ड दिला दे;
अत्यन्त ही प्रिय-कर्मी रहे को तू सुरक्षित-
रखते हुए तत् प्रेमी से अविलम्ब मिला दे।

मंत्र- अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम्।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरूषेणु ।।५।।

काव्यार्थ- जिस हिंसा को दुष्टों ने खेतों बीच था किया,
अथवा जिसे गौओं और प्रजा बीच था किया;
हे औषध समान ताप-नाश-कारी नृप!
तव साथ मिलकर मैंने उनका नाश कर दिया।

मंत्र- यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमंगुड.रिम्।
चकार भद्रमस्मभ्यमात्मने तपनं तु सः।।६।।

काव्यार्थ- हिंसा का कर्म करने के लिये जो चला था,
वह अपने काम में समर्थ हो नहीं सका;
अपने ही पैर और अंगुली को तोड़ कर,
हम हेतु मोद दे, तपन के स्वाद को चखा।

मंत्र- अपामार्गोऽप मार्ष्टु क्षेत्रियं शपथश्च यः।
अपाह यातुधानीरप सर्वा अराय्यः।।७।।

काव्यार्थ- राजा समस्त दोषों का शोधक, सदैव ही-
वंशानुगत औ वाणी-दोष शोधता रहे;
शोधन करे वह आततायी शत्रु सैन्य का,
निर्धनता, अभावों की जड़े खोदता रहे।

मंत्र- अपमृज्य यातुधानानप सर्वा अराय्यः।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे।।८।।

काव्यार्थ- सब को ही शोधने में अति समर्थ है राजन्!
सब ही दरिद्रताओं, राक्षसों को शोध कर;
तब साथ शोधते सभी उस कष्ट कर्म को;
अरू सब प्रजाओं बीच में दते हैं मोद भर।

सूक्त १६

मंत्र- उतो अस्यबन्धुकृदुतो असि नु जामिकृत।
उतो कृत्याकृतः प्रजां नडमिवा च्छिन्धि वार्षिकम्।।१।।

काव्यार्थ- हे राजन्। तू काटता जो अबन्धु हैं तोय।
तथा बनाता है उन्हें जो तब बन्धु होंय।।
उसी भाँति तू काट सब हिसंक अरू तद् दास।।
जैसे जन हैं काटते वर्षा उपजी घास।।

मंत्र- ब्राह्मणेन पर्युक्तासि कण्वेन नार्षदेन।
सेनेवैषि त्विषीमती न तत्र भयमस्ति यत्र प्राप्नोष्योषधे।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**
नायक जनों के बीच जैसे नर-शिरोमणि-
बुद्धिमान, हितकारी, ब्रह्मज्ञानी एक हो;
उस द्वारा उपदिष्ट औषधि समान तुम,
राजन् हमारे ताप-नाशन की मेख हो।
प्राप्त जहाँ होते, वहाँ रहता अभाव नहीं,
तुम पीड़ितों की, भय-ग्रस्तों की टेक हो;
तुम जहाँ जाते, वहाँ देते अंधकार मिटा,
ऐसे ज्योतिमान सूर्य-मण्डल की रेख हो।।

मंत्र- अग्रमेष्योषधीनां ज्योतिषेवाभिदीपयन्।
उत त्रातासि पाकस्याथो हन्तासि रक्षसः।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**
राजन्! अपने तेज का करते हुए प्रकाश।
औषधि सम उपकारियों में तू सबसे खास।।
रक्षणीय परिपक्व को तू रक्षण में लेय।
पापी राक्षस व्यक्ति का त्वरित हनन कर देय।।

मंत्र- यददो देवा असुरांस्त्वयाग्रे निरकुर्वत।
ततस्त्वमध्योषधेऽपामार्गो अजायथाः।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**
देवताओं ने साथ रह तेरे पूर्व काल।
जिस बल से पापी असुर सारे दिये निकाल।।
औषधि सम हे ताप हर राजन्! तत् बल साथ।
दोष-विनाशक रूप में जग में तेरी गाथ।।

मंत्र- विभिन्दती शतशारवा विभिन्दन्नाम ते पिता।
प्रत्यग्वि भिन्धि त्वं तं यो अस्माँ अभिदासति।।५।।

काव्यार्थ- शत-शाखा युत रोग की नाशक औषधि रुप।
छिन्न-भिन्न शत्रु करे तेरा पिता अनूप।।
तू भी, जो हमको सता देता कष्ट अपार।
उस बैरी को भेद कर त्वरित नष्ट कर डार।।

मंत्र- असद भूम्याः सभमवत् तद्यामेति महद् व्यचः।
तद् वै ततो विधूपायत प्रत्यक् कर्त्तारमृच्छतु।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**
जैसे सर्वशक्तिमान सृष्टि-रचयिता के,
नियमों के द्वारा यह रचना है शासती;
उस ही के नियमों से संश्लिष्ट जगती यह,
भूमि आदि तत्वों से बन कर प्रकाशती।
होकर पुनः छिन्न-भिन्न, जगती अनित्य,
निज आदि तत्वों में लौट कर वासती;
वैसे राज-दण्ड द्वारा दुष्ट की दुष्टता भी,
वापिस उसी को लौट, उस ही को डासती।।

मंत्र- प्रत्यड् हि संबभूविथ प्रतीचीनफलस्त्वम्।
सर्वान्मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया वधम्।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे राजन्। प्रतिकूल गति में करते जो वास।
उनका तू प्रत्यक्ष हो करता पूर्ण विनाश।
अरि के मम ऊपर उठे शाप तथा हथियार।
सबको ही अविलम्ब तू दृढ़ता से कर क्षार।।

मंत्र- शतेन मा परि पाहि सहस्रेणाभि रक्ष मा।
इन्द्रस्ते वीरूधां पत उग्र ओज्मानमा दधत्।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

राजन्! मुझको पाल तू शत उपाय को धार।
सहस्र साधनों से मेरी रक्षा का ले भार।।
जन-पालक राजन्। प्रभु अति ही उग्र महान्।
तुझ पुरूषार्थी को करके विक्रम ओज प्रदान।।

सूक्त २०

मंत्र- आ पश्यति प्रति पश्यति परा पश्यति पश्यति।
दिवमन्तरिक्षंआत् भूमिम् सर्वं तद्देवि पश्यति।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

दिव्य-शक्ति! तुझसे छिपा न कुछ भी है कभी,
प्रत्येक ही पदार्थ को तू देखती रहे;
सब कुछ देखती सामान्य रूप से सदैव,
कृत कर्म सबके सदैव लेखाती रहे।
दिव्य-शक्ति! अभिमुख देखती तू रहती है,
पीछे देखती हैं, दूर से भी देखती रहे;
सूर्य लोक, अन्तरिक्ष लोक, भूमि लोक यह,
इन सब ही पे निज दृष्टि टेकती रहे।।

मंत्र- तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीः षट् चेमाः प्रदिशः
पृथक्। त्वयाहं सर्वा भूतानि पश्यानि देव्योषधे।।२।।

काव्यार्थ- हे दिव्य शक्ति प्रभुवर! हे ताप नाश-कारी!
तेरे सहारे लखता, मैं सृष्टि तेरी सारी;
भू लोक तीन, तीनों द्यु, सृष्ट पदारथ सब,
यह छः पृथक् दिशाऐं जो तूने हैं बिठारी।

मंत्र- दिव्यस्य सुपर्णस्य तस्य हासिकनीनिका।
सा भूमिमा रूरोहिथ वह्नं श्रान्ता वधूरिव।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

लघु प्रतिमा सम सूर्य की कनीनिका तन माह।
श्रान्त वधू बैठे कोई ज्यों रथ में उमगाह।।

मंत्र- तां में सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत्।
तयांह सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यः।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सहस्र-नेत्र प्रभु देव ने उजियाला कर पाथ।
दर्शन-शक्ति को रखा मेरे दाहिने हाथ।।
उससे सब कुछ देखता रहता सदा सचेष्ट।
भली विधि जाना करूँ कौन दुष्ट वा श्रेष्ठ।

मंत्र- आविष्कृणुष्व रुपाणि मात्मान मप गूहथाः।
अथो सहस्रचक्षो त्वं प्रति पश्याः किमीदिनः।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मनुज! पदार्थो के विविध वाह्य रुप पहचान।
उनके अंतःगुण छिपे सूक्ष्म रीति से जान।।
अब क्या, यह क्या हो रहा कह कह कर जो लोग।
गुप्त कर्म करते तथा करें स्वार्थ का भोग।।
सहस्र नेत्र वाले प्रभू! तू उन सब को देख।
उन्हें नष्ट अविलम्ब कर, वज्र दण्ड को फेंक।।

मंत्र- दर्शय मा यातुधानान् दर्शय यातुधान्यः।
पिशाचान्तसर्वान् दर्शयेति त्वा रभ ओषधे।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मुझे दिखा उनको कि जो मुझको देते पीर।
दिखा वृत्तियाँ देतीं जो मेरा मानस चीर।।
रक्त पिपासु सब दिखा ताप-विनाशक ईश।
तेरा ही आश्रय मुझे जग-पालक जगदीश।।

मंत्र- कश्यपस्य चक्षुरसि शुन्याश्च चतुरक्ष्याः।
वीध्रे सूर्यमिव सर्पयन्तं मा पिशाचं तिरस्करः।।७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

ज्योतिमान् परमेश्वर! सूर्य का तू चक्षु,
चतुर्दिशाओं का भी चक्षु है महता;
छिपने न देता तू पिशाच सम पीर-दाता-
दोष, जो कि दिन-रात धारक को दहता।
जैसे मध्याह्न के समय का गतिमान् सूर्य,
छिपता छिपाये नहीं दृश्यमान रहता;
वैसे तेरे सामने वे रहते प्रकाशित हैं,
सुख पाता नर जो कि इनको न गहता।।

मंत्र- उदग्रभं परिपाणाद्यातुधानं किमीदिनं।
तेनाहं सर्वंपश्चाम्युत शूद्रमुतार्यम।।

काव्यार्थ- **दोहा**

रक्षा थल निज हृदय में जो कि रहा था गाज।
पिशुन रूप उस दोष को पकड़ लिया है आज।।
मैं शुभ-अशुभ विवेक से सबकों रहा विलोक।
कौन त्याज्य अति मूर्ख है कौन श्रेष्ठ बेटोक।।

मंत्र- यो अन्तरिक्षेया पतति दिवं यश्चातिसर्पति।
भूमिं यो मन्यते नाथं तं पिशाचं प्र दर्शय।।९।।

काव्यार्थ- मध्यवर्ती हृदयावकाश द्वारा जो नीचे गिरता
अरू जो ज्योतिमय प्रकाश को लाँघ रेंगता फिरता,
अहंकारवश अपनी सत्ता को जो ईश्वर माने,
उस पिशाच को दिखा कि जिससे मनुज दुःखों में घिरता।

सूक्त २१

मंत्र- आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे।
प्रजावतीः पुरूरुपा इह स्युरिन्द्राय पुर्वीरूषसो दुहानाः।।१।।

काव्यार्थ- विद्याऐं जो सबके लिये पाने के योग्य हैं,
स्तुत्य वह विधाऐं प्रभु ने प्रदान की;
वह प्राप्त हों हम लोगों के विद्या-समाज में,
कल्याण करें, होवें वह सुख के उठान की।
ऐश्वर्यवान् व्यक्ति के लिये समाज में,
विद्याऐं अनेकों अनेकों लक्षणों वाली;
अरू ज्ञान रुप धन के धनी व्यक्तियों वाली,
हों कामना पूरक, रहें शुभ रक्षणों वाली।

मंत्र- इन्द्रो यज्वने गृणते च शिक्षत उपेद्ददाति न स्वं मुषायति।
भूयो भूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम्।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

करता जो सत्कर्म हैं देता सद् उपदेश।
उसको प्रभुवर सत्य का देता ज्ञान विशेष।।
विद्या हित धनदान दे करता उसे सशक्त।
अरू तत् सम्मुख स्वयं को करता है अभिव्यक्त।
देवत्व इच्छुक रहे उसको प्रभु उदार।
निज अंतः के थिर रहे थल में लेता धार।।

मंत्र- न तो नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति।
देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह।।३।।

काव्यार्थ- विद्या न नष्ट होती न ही चोर चुराता।
बनता न कोई शत्रु इसका पीर-प्रदाता।।
विद्यापति, वाचस्पति कर प्राप्त दिव्य गुण।
बहु काल सुखी रहता है, यश-लाभ कमाता।

मंत्र- न ता अर्वा रेणुकाटोऽश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि।
उरूगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः।।४।।

काव्यार्थ- जो धूल के कुँए गिरे चंचल स्वभाव का,
विषयों में लिप्त जो रहा घोड़े के भाव का;
ऐसे को ये विद्यायें कभी प्राप्त न होतीं,
होती हैं प्राप्त हो रहा संस्कृत लगाव का।
जो व्यक्ति जितेन्द्रिय रहा है, ज्ञान चाहता,
जो देवताओं को सदैव पूजता रहता;
उसके सुरक्षित राज्य में विधायें सदा ही,
विचरण किया करती हैं, वहाँ सुख सदा बहता।

मंत्र- गावो भगो गाव इन्द्रो म इच्छाद् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामि हृदा मनसा चिदिन्द्रम्।।५।।

काव्यार्थ- विद्यायें मेरी इच्छा, विद्यायें श्रेष्ठ धन हैं,
विद्यायें ही छिपाऐं, परमैश्वर्यपन हैं;
विद्यायें ही हैं सेवन अति-श्रेष्ठ सोमरस का,
हे मानवों! इन्हीं में परमैश्वर्य कन हैं।

दोहा

मैं विद्यायें पावनी अपनी बुद्धि धार।
इस ही परमैश्वर्य की मन में करता चाह।।

मंत्र- यूवं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद् वो वय उच्यते समासु।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

विद्याओं तुम क्लीव को भी करती हो पुष्ट।
अरू होता निस्तेज जो उसे बनातीं सुष्ट।।
कल्याणी विद्याओं तुम जिस घर करतीं वास।
वह घर मंगलमय रहें भरता ज्ञान प्रकाश।।
होता सभी सभाओं में तव प्रशस्ति का गान।
तव यश का होता रहे उनमें सदा बखान।।

मंत्र- प्रजावतीः सूयवसे रूशन्तीः शुद्धा अपः सप्रपाणे पिबन्तीः।
मा वस्तेन ईशत माघशंसः परि वो रूद्रस्य हेतिर्वृणक्तु।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

शुभ सन्तान वाली, शुभ पव-थल बीच-
सर्वदा जो अपने भ्रमण को महा करें;
शुभ जल-स्थान में पियें जो शुद्ध जल,
ऐसी विद्याऐं सब पर ही छहाँ करें।
कोई चोर कर न सके कभी भी वशीभत,
डाकू औं लुटेरे नहीं उनको दहा करें;
रूद्र प्रभु अपनी हनन शक्ति के द्वारा,
शत्रुओं से उनको बचाते ही रहा करें।।

सूक्त २२

मंत्र- इममिन्द्र वर्धय क्षत्रियं म इमं विशामेकवृषं कृणु त्वम्।
निरमित्रानक्ष्णुह्यस्य सर्वास्ताञ्जन्धयास्मा अहमुत्तरेषु।।१।।

काव्यार्थ- हे इन्द्र! मेरे क्षत्रिय राजा को तू बढ़ा,
होवे यह अद्वितीय ही बल में बढ़े हुए;
इसके लिये उन सब ही शत्रुओं को नष्ट कर;
जो श्रेष्ठता की सिद्धि में आगे खड़े हुए।

मंत्र- एमं भज ग्रामे अश्वेषु गोषु निष्टं भज यो अमित्रो अस्य।
वर्ष्म क्षत्राणामयमस्तु राजेन्द्र शत्रुंरन्धय सर्वमस्मै।।२।।

काव्यार्थ- इस राजा को ग्रामों में, घोड़ों और गायों में,
सौभाग्यशाली कर, इसे ऐश्वर्य घना दे;
इसके समस्त बैरियों को तू अलग कर दे,
होवे समस्त क्षत्रियों का भाल, तना दें;
हे इन्द्र! इसके हेतु सभी शत्रुओं को तू,
अत्यन्त शक्तिहीन, पराभूत बना दे।

मंत्र- अयमस्तु धनपतिर्धनामयं विशां विश्वपतिरस्तु राजा।
अस्मिन्निन्द्र महि वर्चासि धेह्यवर्चसं कृणुहि शत्रुमस्य।।३।।

काव्यार्थ- जगदीश्वर! हे महत् ऐश्वर्यों के धारी!
यह राजा हमारा धनों का धनपति होवे;
शत्रु करो निस्तेज, इसको महत् तेज दो,
अपनी प्रजा के हेतु यह प्रजापति होवे।

मंत्र- अस्मै घावापृथिवी भूरि वामं दुहाथां धर्मदुघेइव धेनू।
अयं राजा प्रिय इन्द्रस्य भूयात्प्रियो गवामोषधीनां पशूनाम्।।४।।

काव्यार्थ- धारोष्ण दूध की प्रदाता गायें हो जैसे,
वैसे ही सूर्य पृथिवी आप दोनों ही बनो;
इस राजा के लिये बहुत धन आदि प्रदानों,
अरू अतुल ईश-भक्ति भरे राजा के मनों,
विद्याओं का, अन्नादिका, गौ आदि पशुओं का,
यह प्रिय बने, वृद्धि करे, सुख को लभे घनो।

मंत्र- युनज्मि त उत्तरावन्तमिन्द्रं येन जयन्ति न परा राजयन्ते।
यस्त्वा करदेकवृषं जनानामुज राज्ञामुत्तंम मानवानाम्।।५।।

काव्यार्थ- राजन्! मैं तेरे साथ श्रेष्ठतम तथा गुणी,
परमैश्वर्य धार प्रभु को हूँ जोड़ता;
पाकर के जिसका साथ हर एक शूर जीतता,
वह हारता कभी न, शत्रु दर्प तोड़ता;
वह तुझको मनुष्यों में करे श्रेष्ठतम बली,
अरू ज्ञानियों में तेरी रहे ज्ञान-प्रौढ़ता।

मंत्र- उत्तरस्त्वमधरे ते सपत्ना ये के च राजन्प्रतिशत्रवस्ते।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवां छत्रूयतामा भरा भोजनानि।।६।।

काव्यार्थ- हे सर्वदा जयशील, हे अतुलित बली राजन्।
जग-मित्र प्रभू को सखा तूने है लिया कर;
अब तू अधिक ऊँचा हो तथा घोर विरोधी-
झगड़ालू बने शत्रु को नीचा ही किया कर;
जो शत्रु सम कुकर्मी हैं, उनको तू हरा कर,
उनके सभी धन धान्य को लाकर के दिया कर।

मंत्र- सिंह प्रतीको विशो अद्धि सर्वा व्याघ्रप्रतीकोऽव बाधस्व शत्रून।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवां छत्रूयतामा खिदा भोजनानि।।७।।

काव्यार्थ- हे सर्वदा जयशील! हे अतुलित बली राजन्!
जग-मित्र प्रभू को सखा तूने है लिया कर;
अब सिंह सम पराक्रमी बन, शत्रु भक्षता,
उन पर झपट व्याघ्र सा, विध्वंस ठिया कर;
जो शत्रु सम कुकर्मी हैं, उनको तू हरा कर,
उनके सभी धन-धान्य को लाकर के दिया कर।

सूक्त २३

मंत्र- अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसः पांचजन्यस्य बहुधा यमिन्धते।
विशोविशः प्रविशिवांसमीमहे स नो मुंचत्वंहसः।।१।।

काव्यार्थ- प्रभुदेव का ही चिन्तन मुझको सदैव भाता।।
वह वर्तमान सबसे पहले है, महत् ज्ञानी,
सबका हितू है, जितने भी पंचभूत प्राणी;
उसको ही पाप-भंजन के हेतु मै बुलाता।।
वह सब प्रवेश स्थानों में प्रविष्ठ रहता;
मिलता उपासकों को, उनके अनिष्ट दहता;
उसको ही हर मनीषी, नाना प्रकार गाता।।

मंत्र- यथा हव्यं वहसि जातवेदो यथा यज्ञं कल्पयसि प्रजानन्।
एवा देवेभ्यः सुमतिं न आ वह स नो मुंचर्त्वहसः।।२।।

काव्यार्थ- उत्पन्न पदार्थों का जो प्रभु रहा सुज्ञाता,
देने व खाने योग्य सब अन्न जो पहुँचाता;
सारे ही पूज्य कर्मों को जो कि जानता है,
जो दिव्य गुणों के हित हमको सुमति का दाता।
जो धर्म-बुद्धि देकर उपकार किया करता,
उससे है प्रार्थना, हमको पापों से बचाये।।

मंत्र- यामन्यामन्नुपयुक्तं वहिष्ठं कर्मन्कर्मन्नाभूगम्।
अग्निमीड़े रक्षौहणं यज्ञ वृधं घृताहुतं स नो मुंचत्वंहसः।।३।।

काव्यार्थ- प्रत्येक समय जो प्रभु सबका ही है सहायक,
अत्यन्त बली शत्रु-हन्ता, सभी का नायक;
जो पूजनीय कर्मों को नित बढ़ाया करता,
भजनीय सुकर्मों में, जो है प्रकाश दायक।
जिस सर्व प्रकाशक की मैं स्तुति करता हूँ,
उससे है प्रार्थना, हमको पापों से बचाये।।

मंत्र- सुजातं जातवेदसमग्निं वैश्वानरं विभुम्।
हव्यवाहं जवामहे स नो मुंचत्वंहसंः।।४।।

काव्यार्थ- जग के सभी जनों में है प्रसिद्ध भारी,
जो जानता भली विधि, रचना जो है प्रसारी;
सबका महत् हितैषी, जो सर्वशक्तिमान,
शुभ अन्न जो पहुँचाता, करता कभी न टारी।
जिसकी सदैव करते हम स्तुति, उपासन,
उससे है प्रार्थना, हमको पापों से बचाये।।

मंत्र- येन ऋषयो बलमद्योतयन् युजा येनासुराणामयुवन्त मायाः।
येनाग्निना पणीनिन्द्रो जिगाय स नो मुंचत्वंहसः।।५।।

काव्यार्थ- ऋषि लोग जिसके द्वारा बल का प्रकाश करते,
कर सत्य का प्रकाश, असत्य नाश करते;
देवों ने राक्षसों की मायावी युक्ति काटी,
जिस तेजवान प्रभु से जन हैं हुलास भरते।
वीरों ने जिसके द्वारा जीते हैं दुराचारी,
उससे है प्रार्थना, हमको पापों से बचाये।।

मंत्र- येन देवा अमृतमन्वविन्दन ये नौषधीर्मधुमतीरकृण्वन्।
येन देवा स्वश्राभरन्त्स नो मुंचत्वंहसः।।६।।

काव्यार्थ- देवों को जिसके द्वारा हम आत्मबली पाते,
वह जिस प्रभु के द्वारा अमरत्व पा सुहाते;
औषधियाँ रोग नाशक औ पुष्टि-दा बनी हैं,
उन बीच जिसके द्वारा मधुरस की टेव पाते।
जिस द्वारा भक्त निज में आनन्द धारते हैं;
उससे है प्रार्थना, हमको पापों से बचाये।।

मंत्र- यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते यज्जातं जनितव्यं च केवलम्।
स्तौम्यग्निं नाथितो जोहवीमि स नो मुंचत्वंहसः।।७।।

काव्यार्थ- जग एक मात्र जिससे गतियाँ समस्त धरता,
जिस एक मात्र के आश्रय जो प्रकाश तरता;
जनितव्य औ जनित सब है जिसके ही सहारे,
जिस तेजपूर्ण प्रभु की स्तुति सदैव करता।
जिसको मैं बारम्बार हो आर्त टेरता हूँ,
उससे है प्रार्थना, हमको पापों से बचाये।।

सूक्त २४

मंत्र- इन्द्रस्य मन्महे शाश्वदिदस्य मन्महे वृत्रघ्न स्तोमा उप मेम आगुः।
यो दाशुषः सुकृतो हवमेति स नो मुंचत्वंहसः।।१।।

मंत्र- यः उग्रीणामुग्रबाहुर्ययुर्यो दानवानां बलमारूरोज।
येन जिताः सिन्धवो येन गावः स नो मुंचत्वंहसः।।२।।

मंत्र- यश्चर्षणिप्रो वृषभः स्वर्विद्यस्मै ग्रावाणः प्रवदन्ति नृम्णम्।
यस्याध्वरः सप्तहोता मदिष्ठः स नो मुंचत्वंहसः।।३।।

काव्यार्थ- **गीत**

उससे है प्रार्थना, हमको पापों से बचाये।।
प्रभुवर, जो शत्रुओं का संहार किया करता
जन-ध्यान बीच आकर, झंकार दिया करता;
जिसके स्तोत्र ही, मम मन के समक्ष आते,

मैं जिस जगत्पति के चिन्तन में हिया करता।
सत्कर्मी दानियों की जो प्रार्थनाऐं सुनता,
उससे है प्रार्थना, हमको पापों से बचाये।।
प्रभवुर! जो उग्र अति ही, अत्यन्त शक्ति धारे,
अति ही प्रचण्ड वीरों में शक्ति को संचारे;
जो दानवों के बल को क्षण भर में तोड़ देता,
सरिताऐं जीत उनमें जो सोम को बिठारे।
गउऐं विचरती जिसके अमृत को लिये भू पर,
उससे है प्रार्थना, हमको पापों से बचाये।।
जिस हेतु सप्तहोता युत, मोद का प्रदाता,
धरती पे अहिंसामय शुभ यज्ञ किया जाता;
जो प्रभु बली है, निज में आत्मिक प्रकाश रखता,
सब मानवों को पूर्ण करता, बनाता ज्ञाता।
पत्थर लघु भी जिसके बल की प्रशंसा करते,
उससे है प्रार्थना, हमको पापों से बचाये।।

मंत्र- यस्य वशास ऋषभास उक्षणो यस्मै मीयन्ते स्वरवः स्वर्विदे।
यस्मै शुक्रः पवते ब्रह्मशुम्भितः स नो मुन्चत्वंहसः।।४।।

मंत्र- यस्य जुष्टिं सोमिनः कामयन्ते यं हवन्त इषुमन्तं गविष्टौ।
यस्मिन्नर्कः शिश्रिये यस्मिन्नोजः स नो मुंचत्वंहसः।।५।।

मंत्र- यः प्रथमः कर्णकृत्याय यज्ञे यस्य वीर्यऽप्रथमस्यानुबुद्धम्।
येनोद्यतो व्रजोऽभ्यायताहिं स नो मुंचत्वंहसः।।६।।

मंत्र- यः संग्रामान्नयति सं युधे वशी यः पुष्टानि संसृजति द्वयानि।
स्तौमीन्द्र नाथितो जोहवीमि स नो मुंचत्वंहसः।।७।।

काव्यार्थ- **गीत**

उससे है प्रार्थना, हमको पापों से बचाये।।
गौ और साँड आदि सिगरे पशु भी जिसके-
कारज के हेतु अपनी शक्ति लगाया करते;
जिस आत्मशक्ति धारी के हेतु ही समस्त-

यज्ञों को हम हैं करते, अग्नि जगाया करते।
जिस हेतु वेद मंत्रों से सोम शुद्ध होता,
उससे है प्रार्थना, हमको पापों से बचाये।।
जिसकी कि प्रार्थना सब करते अभीष्ट हेतु,
अरू प्रीति चाहते हैं जिसकी कि सोम याजक;
लेते हैं जिसका आश्रय सूर्यादि गोल पिण्ड,
उनको जो पालता है अतुलित सुखों का साजक।
अतुलित प्रचण्ड बल को धारण किये हुए जो,
उससे है प्रार्थना, हमको पापों से बचाये।।
जो प्रभु जगत की रचना करने, इसे चलाने-
आदि के हेतु पहले से ही प्रकट हुआ है;
इस हेतु जिसका विक्रम सर्वत्र देख कर के,
प्रत्येक विज्ञ जिसके आगे प्रणत हुआ है।
जिसका उठाया वज्र शत्रु का हनन करता,
उससे है प्रार्थना, हमको पापों से बचाये।।
सबको सदैव वश में रखता है, जो वशी है,
जो धर्म-युद्ध हेतु योद्धाओं को चलाता;
द्वय पुष्टों को सदा ही संगति के हेतु प्रेरे,
शरणागतों को उर के पापों को जो जलाता।
मैं जिस अति दयालु की आज्ञा बीच रहता,
उससे है प्रार्थना, हमको पापों से बचाये।।

सूक्त २५

मंत्र- वायोः सवितुर्विदथानि मन्महे यावात्मन्वद् विशथो यो च रक्षथः।
यौ विश्वस्य परिभू बभूवथुस्तौ नो मुंचतमंहसः।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वायु और सूर्य! सब के ही हितकारी तुम,
तुम में छिपे गुणें को हम हैं विचारते;
तुम दोनो होकर गमनशील, प्राण अरू-
नेत्रधारी जीवों बीच निज को बिठारते।

होकर के व्याप्त उन सब के ही बीच, तुम-
रक्षा करते हो, बैरियों को हो प्रजारते;
ऐसे सब जग को सहारा देने वाले, हमें-
कष्ट से छुड़ाओ, रहो पाप को विदारते।।

मंत्र- पयो संख्याता वरिमा पार्थिवानि याभ्यां रजो युपितभन्तरिक्षे।
ययो प्रायं नान्वानशे कश्चन तौ नो मुंचतमहंसः।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जिन तुम दोनों वायु-सूर्य के प्रभाव द्वारा
पृथिवी के जल अन्तरिक्ष विस्तारते;
जिन तुम दोनों को ही ताड़न शक्ति द्वारा,
जल-मेघ-मण्डल में निज को बिठारते।
जिन तुम दोनों की ही उत्तम गति को, रंच-
जीव नहीं पहुँचे हैं, रहते निहारते,
ऐसे विज्ञों के द्वारा शोघनीय तुम, हमें-
कष्ट से छुड़ाओं, रहो पाप को विदारते।।

मंत्र- तव व्रते नि विशन्ते जनासस्त्वय्युदिते प्रेरते चित्रभानो।
युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथस्तौ नो मुंचतमहंसः।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे समर्थ वायु! तेरे नियम में सब व्यक्ति-
होते हैं प्रवृत्त, उसे रंच नहीं टारते;
हे विचित्र प्रभा युक्त सूर्य! तेरे उदय पर-
जीव निज-निज कर्म करते, प्रसारते।
हे समर्थ वायु! अरू हे समर्थ सूर्य! तुम-
दोनो सब प्राणियों को रक्षते, सुधारते;
करते ही रहियोगा उपकार आप दोनों,
कष्ट से छुड़ाते रहो, पाप को विदारते।।

मंत्र- अपेतो वायो सविता च दुष्कृतमपप रक्षांसि शिमिदां च सेधतम्।
सं ह्यूर्जया सृजथः सं बलेन तौ नो मुंचतमहंसः।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वायु और सूर्य! तुम दोनों पाप लिप्त, अरू-
दुष्कर्मियों को रखियेगा, दूर डारते;
घातकों, निवारणीय रोगों, कर्म छेदन जो-
करती है पीड़ा, उन्हें रखियेगा मारते।
करियेगा हमें आत्मिक बल साथ युक्त,
हम बीच तन बल रखिये प्रसारते,
रखिये सदैव हमें ऊर्जा से सम्पन्न,
कष्ट निस्तार, पाप रखिये विदारते।।

मंत्र- रयिं मे पोषं सवितोत वायुस्तनो दक्षमा सुवितां सुशेवम्।
अयक्ष्मतातिं मह इह धत्तं तौ नो मुंचमंहसः।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

प्रभु द्वारा भेजे गये पवन व सूर्य तुम-
दोनो कभी निज कर्म रखते न टारते;
मम तन बीच सेवनीय सुखदायी धन,
पुष्टि अरू श्रेष्ठ बल रखियेगा धारते।
करियेगा तेजस्विता न शौर्य उत्पन्न,
मुझमें निरोगता भी रखियेगा डारते;
ऋद्धि-सिद्धियों का शुभ दान दीजियेगा मुझे,
कष्ट निस्तार, पाप रखिये विदारते।।

मंत्र- प्र सुमतिं सवितर्वाय ऊतये महस्वतन्तं मत्सरं पादयाथः।
अर्वाग्वामस्य प्रवतोनि यच्छतं तौ नो मुंचतमंहसः।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

प्राणधारियों को गति के प्रदाता सूर्य वायु,
हममें सदैव सुमति रहो प्रसारते;
तेज का प्रदाता हर्ष हमको प्रदान करो,
नित्य ही प्रकर्ष युक्त अन्न रहो डारते।

भरपूर ख्याति को बढ़ाए जो हमारी, ऐसा-
जन-जन बीच धन रखिये बिठारते;
तव गुणों का प्रयोग करके आनन्द लभें,
कष्ट निस्तार, पाप रखिये विदारते।।

मंत्र- उप श्रेष्ठा न आशिषो देवयोर्धामन्नस्थिरन्।
स्तौमि देवं सवितारं च वायुं तौ नो मुंचतमंहसः।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

वायु सूर्य द्वय देवों को प्रेम वारि से सींच।
श्रेष्ठ कामनाऐं करूँ धारण तन के बीच।।
दोनों की स्तुति करूँ हृदय धार कर प्रीति।
मेरी कामनाऐं सुनें पूर्ण करें सब रीति।।
हे वायु अरू सूर्य तुम सब के राखन हार।
मेरे कष्ट निस्तार कर रखिये पाप विदार।।

सूक्त २६

मंत्र- मन्वे मां द्यावापृथिवी सुभोजसौ सचेतसौ ये अप्रथेथाममिता योजनानि।
प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां ते नो मुंचतमंहसः।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

श्रेष्ठ भोग अरू शुभ ज्ञान की प्रदाता देवि-
सूर्य पृथिवी मैं तुम्हें चिन्तन में धारात;
कर्षण क्रिया से तुम दोनों की ही, संयोग
वियोग क्रियाओं बीच जीवन संचारता।
तुम दोनों कारण ही मानवों में रहती है,
ऐश्वर्य अरू धन-धान्य की अगारता;
ऐसी तुम दोनों हमें कष्ट से छुड़ाओ, नित-
पुण्य विस्तारता हो, पाप रहे हारता।।

मंत्र- प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां प्रवृद्धे देवी सुभगे उरुची।
द्यावापृथिवीं भवतं मे स्योने ते नो मुंचतमंहसः।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

द्वय देवियों! प्रवृद्व दिव्य स्वरूप तुम,
सर्वदा ही शुभ ऐश्वर्यों की आगार हो;
आश्रय सदैव वास-कर्ताओं की हो तुम,
उनके धनों की तुम दोनों ही आधार हो।
ऐसी सूर्य-पृथिवी हे देवियो! सभी को तुम,
भाँति-भाँति के पदार्थ देने में उदार हो;
हमको भी सर्व सुख दीजै, कष्ट नाशियेगा,
बहु-बहु विनती हमारी स्वीकार हो।।

मंत्र- असन्तापे सुतपसौ हुवेऽहमुर्वी गम्भीरे कविभिर्नमस्ये।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुंचतमहंसः।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

शुभ ताप धारक द्वय देवियों हे सूर्य भूमि!
जगत्-पदार्थ रक्षतीं जो निज ताप से,
विस्तृत, गंभीर, शान्त स्वभाव, शोभनीय-
कवियों के द्वारा निज नमनों के ज्ञाप से।
ऐसी तुम दोनों से ही प्रार्थना यही है मेरी,
सुख पाऊँ सर्वदा ही तुम्हरे प्रताप से;
मेरे सब कष्ट नष्ट कर, अविलम्ब मुझे,
रखती रहो अतीव दूर हर पाप से।।

मंत्र- ये अमृतं बिभृथो ये हवींषि ये स्रोत्या बिभृथो ये मनुष्यान्।
द्यावापृथिवी भवतं से स्योने ते नो मुंतचजमंहसः।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

तुम दोनो जो कि धारती हो अन्न जल आदि,
मृत्यु से बचाने हेतु साधन सुज्ञात जो;
धारती हो देने औं ग्रहण करने के योग्य-
सब ही पदार्थों को, जग में लखात जो।

तुम दोनो, जो कि मानवादि प्राणियों को, तथा-
जल-स्रोत धारती हो, जग-विख्यात जो;
ऐसी सूर्य पृथिवी हे देवियों! प्रदानो सुख,
नष्ट करो पाप सब, सुख के अरात जो।।

मंत्र- ये उस्रिया बिभृथो ये वनस्पतीन्ययोर्वां विश्वा भुवनान्यन्तः।
द्यावापृथिवीं भवतं मे स्योने ते नो मुंचजमंहसः।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

तुम दोनों कि जल-वृष्टि से वनस्पतियों,
गऊ आदिकों को धारतीं व पुष्ट करतीं;
निज बीच ठहरे हुए समस्त भुवनों को,
तुम दोनो जो कि निज बीच सुष्ट धरतीं।
ऐसी सूर्य पृथिवी द्वय देवियों स्नेह मयी,
निज संतति को जो कभी न रूष्ट करतीं;
सब ही कुवृत्तियाँ हमारी नाशियेगा, हमें-
पाप से बचाके, रखियेगा दुष्ट हरतीं।।

मंत्र- ये कीलालेन तर्पयथो ये घृतेन याभ्यामृते न किंचन शक्नुवन्ति।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुंचतमंहसः।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

तुम दोनों जो कि शुभ अन्न को प्रदान कर,
जो कि शुभ जल को प्रदान तृप्त करती,
जो कि तुम दोनों बिन, जीव रखते न शक्ति,
तद् सर्वांग तुम जो सशक्त करतीं।
ऐसी कल्याणी सूर्य पृथिवी हे देवी! दोनो-
मुझ पर रहिये आशीष व्यक्त करती;
सर्वदा ही सर्व सुख करके प्रदान मुझे,
मेरे सब कष्ट रखिये अशक्त करती।।

मंत्र- यन्मेदमभिशोचति येनयेन वा कृतं पौरूषेयान्न दैवात्।
स्तौभि द्यावापृथिवी नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चतमंहसः।।७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जिस किसी कारण से मम तन द्वारा किया,
या कि पूर्व-जन्म फल रुप प्राप्त कर्म है;
जो कि इस काल मुझे डालता है शोक बीच,
कण्टकों से छेदता समस्त मम मर्म है।
सूर्य पृथिवी हे देवियों! मैं तवाधीन हुआ,
तव स्तुति में मम जिह्वा की चर्म है;
बार बार करता गुहार कष्ट मीचियेगा,
जानता हूँ एक तुम्हरा ही यह धर्म है।।

सूक्त २७

मंत्र- मरूतां मन्वे अधि मे बुवन्तु प्रेमं बाजं वाजसाते अवन्तु।
आशूनिव सुयमानह ऊतये ये नो मुंचन्त्वंहसः।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

दोष की विनाशक मरूत वायुओं का किया-
करता हूँ सेवन, मनन अति प्रीति से;
वह मुझे अन्न और बल को दिलायें, तथा-
करती रहें मेरी सुरक्षा शुभ रीति से।
जैसे शीघ्रगामी अश्व चलते सदैव निज,
पालक के सिखाये गये नियमों की रीति से;
वैसे मरूतों को रक्षार्थ मैं बुलाता सदा,
मुझको छुडाऐं वह भव-भय भीति से।।

मंत्र- उत्समक्षितं व्यचन्ति ये सदा य आसिंचन्ति रसमोषधीषु।
पुरो दधे मरूतः पृश्निमा नो मुंचन्त्वंहसः।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

मरूत हितैषी, जो कि अक्षय जल के प्रवाह,
सर्वदा ही पहुँचाते विविध प्रकार से;
मानवों की रक्षा हेतु जो कि नाना अन्न आदि-
ओषधियों बीच रस रहते प्रसारते।

अन्तरिक्ष रूपी माता द्वारा उत्पन्न वह-
मरूत सदैव रखें कष्ट को प्रजारते;
रहते रहें सदैव सम्मुख हमारे तथा,
मोद को दिलाते रहें, पाप पर प्रहारते।।

मंत्र- पयो धेनूनां रसमोषधीनां जवमर्वतां कवयो य इन्वथ।
शग्मा भवन्तु मरूतो नः स्योनास्ते नो मुंचन्तवंहसः।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

गउओं के बीच दूध, ओषधियों बीच रस,
अश्वों के बीच जो भी वेग रहा करता;
इन सब ही को अत्यन्त गतिमान हुआ,
मरूतों का दल निज बीच गहा करता।
ऐसा अति शक्ति सम्पन्न मरूतों का दल,
जो कि दोष-नाशन गुणों को लहा करता;
होवे हम सबके लिये अतीव सुखदायी,
कष्ट को छुड़ाये, रहे मोद महा भरता।।

मंत्र- अयः समुद्राद्दिवमुद्रहन्ति दिवस्पृथिवीमभि ये सृजन्ति।
ये अद्गिरीशाना मरूतश्चरन्ति ते नो मुंचन्त्वंहसः।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सागर-जल को जो मरूत अम्बर तक पहुँचाय।
अरू फिर अम्बर से उसे भू पर देत गिराय।।
जिन समर्थ मरूतों को जल के संग विचरण भाय।
वह हमको बहु कष्ट से देवें शीघ्र छुड़ाय।।

मंत्र- ये कीलानेन तर्पयन्ति ये घृतेन ये वा वयो मेदसा संसृजन्ति।
ये अद्गिरीशाना मरूतो वर्षयन्ति ते नो मुंचन्त्वंहसः।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पुष्टि-दा पदार्थ से मरूत अन्न को सेत।
अरू जीवन की तृप्ति हित उसको जल संग देत।।
मरूत समर्थ जो सदा करें जलों की वृष्टि।।
नष्ट करें सब कष्ट वह रखें कृपालु दृष्टि।।

मंत्र- यदीदिदं मरूतो मारूतेन यदि देवा दैव्येनेदृगार।
ययूमीशिध्वे वसवस्तस्य निष्कृतेस्ते नो मुंचन्त्वंहसः।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे मरूतों! तव दिव्यता दोष-विनाशक धर्म।
प्राप्त इन्हीं से है हुआ यह जग करता कर्म।।
मरूत! वास दाता तुम्हीं जग उद्धारक एक।
हमें कष्ट से दो छुड़ा विनती करें अनेक।।

मंत्र- तिग्ममनीकं विदितं सहस्वन्मारूतं शर्धः पृतनासूग्रम।
स्तौमि मरूतो नाथितो जोहवीमि ते नो मुंजन्त्वंहसः।।७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

मरूतों का सैन्य दल युद्ध बीच तीक्ष्णतम-
रखता प्रचण्ड शक्ति जिसकी कि था ना;
ज्ञात सब ही को यह बात, यह जान कर,
मैं भी मरूतों की किया करता सराहना।
जीत सकता न मरूतों से कोई जग बीच,
इस हेतु करता हूँ मरूतों की चाहना;
उनके आधीन हुआ, उनको पुकारता हूँ,
कष्ट से छुड़ायें हमें, पाप की हो दाहना।।

सूक्त २८

मंत्र- भवाशर्वो मन्वे वां तस्य वित्तं ययोर्वामिदं प्रदिशि यद्विरोचते।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुंचतमहंसः।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे प्रभु की सर्वज्ञता! सर्व प्रशासन टेक।
मैं तब चिन्तन में रहूं निशि वासर प्रत्येक।।
तुम दोनों इस जगत् का रखते पूर्ण ज्ञान।
अरु शासन में तुम्हारे यह सब ज्योति मान।।

द्विपद चतुष्पद जगत के तुम्हीं अकेले नाथ।
हमें कष्ट से दो छुड़ा तुम्हें झुकाऐं माथ।।

मंत्र- ययोरभ्यहव उत यद्वरे चिद्यौ विदिता विषुभृतामसिष्ठौ।
वावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुंचतमंहसः।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे प्रभु के अरि-दमन अरू हे सर्वान्तर वास।
तुम दोनों का है सभी जो कि दूर या पास।।
तुम दोनों ही, जो दनुज हिसंक बने लखात।
उन्हें पूर्णतः गिराने वाले सुविख्यात।।
द्विपद चतुष्पद जगत् के तुम्हीं अकेले नाथ।
हमें कष्ट से दो छुड़ा तुम्हें झुकायें माथ।।

मंत्र- सहस्राक्षौ वृत्रहणा हुवेऽहं दूरेगव्यूती स्तुवन्नेम्युग्रौ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुन्चतमंहसः।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे सर्व-दर्शन तथा अज्ञान संहार।
हे सहस्र-अक्ष, रखो अज्ञान प्रजार।।
तुम दोनों अति उग्र हो गमन दूर तक होय।।
मैं तुम्हरी स्तुति करूँ सदा पुकारूँ तोय।।
द्विपद चतुष्पद जगत् के तुम्हारी अकेले नाथ।
हमें कष्ट से दो छुड़ा तुम्हें झुकायें माथ।।

मंत्र- यावारेभाथे बहु साकमग्रे प्र चेदसाष्ट्रमभिमां जनेषु।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुंचतमंहसः।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे तेजोत्पादन तथा सृष्टि-जनन स्वभाव।
तुम दोनों का प्रभु से अति ही निकट लगाव।।
पूर्व-काल में तुम्ही ने मिल कर एक साथ।
लिखी विशाल इस जगत् को जनने की गाथ।।

तुम दोनों ने ही मनुज रखने को प्रसन्न।
इष्ट अनिष्ट ज्ञान अरू तेज किया उत्पन्न।।
द्विपद-चतुष्पद जगत् के तुम्हीं अकेले नाथ।
हमें कष्ट से दो छुड़ा तुम्हें झुकायें माथ।।

मंत्र- ययोर्वधान्नापपद्यते कश्चनान्तर्देवेषूत मानुषेषु।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुन्चतमंहसः।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सर्वनियन्ता गुण तथा दुष्ट हनन सामर्थ।
प्रभु तुमसे नष्ट करे जग के सभी अनर्थ।।
ज्योतिमान सूर्यादि अरू मानवादि के बीच।
तुम दोनों के दण्ड से बचा न कोई नीच।।
द्विपद चतुष्पद जगत के तुम्हीं अकेले नाथ।
हमें कष्ट से दो छुड़ा तुम्हें झुकायें माथ।।

मंत्र- यः कृत्याकृन्मूलकृद्यातुधानो नि तस्मिन्धत्तं वज्रमुग्रौ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुंचतमंहसः।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

नित ही रक्षण शिष्ट का तथा दुष्ट का नाश।
यह दोनों गुण प्रभू के जग में करे प्रकाश।।
हे प्रभु के दोनें गुणों! धारक उग्र स्वभाव।
नष्ट करो तुम, मूल का जो नर करे कटाव।।
जो पर-पीड़क यातना-वर्धक, हिंसा युक्त।
उस पर वज्र गिराओ तुम करो शिष्ट भय-मुक्त।।
द्विपद चतुष्पद जगत् के तुम्हीं अकेले नाथ।
हमें कष्ट से दो छुड़ा तुम्हें झुकायें माथ।।

मंत्र- अधि नो बूतं पृतनासूगौ सं वज्रेण सृजतं यः किमीदी।
स्तौमि भवाशर्वौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुंचतमंहसः।।७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सत्यमार्ग दर्शन, द्वितीय उग्र स्वभाव,
दोनों गुणों हमको सदैव ही प्रकाश दो;
संग्रामों बीच हमको दो योगय उपदेश,
स्वार्थी, जनों का कर वज्र से विनाशदो।
तुम दोनों शत्रु-विनाशक, हो सुख-दाता,
तुम्हरे आधीन हम, कर न निराश दो;
स्तुति तुम्हारी, बार-बार करते पुकार,
तुम दोनों कंटकों का काट यह पाश दो।।

काव्यार्थ- **दोहा**

द्विपद चतुष्पद जगत् के तुम्हीं अकेले नाथ।
हमें कष्ट से दो छुड़ा तुम्हें झुकायें माथ।।

सूक्त २९

मंत्र- मन्वे वां मित्रावरूणावृतावृधौ सचेतसौ द्रुहणो यौ नेदुथे।
प्र सत्यवानमवथो भरेषु तौ नो मुन्चतमंहस।।१।।

काव्यार्थ- दोनों स्फूर्ति-दा, सत्य को जो बढ़ा,
शत्रु-मर्दन में जो कि जगेते रहे;
जो कि संग्रामों में सत्य को पालते,
पुरूषों का रक्षणा-भार लेते रहे।
ऐसे मित्र अरू वरूण, तुम्हरा करता मनन,
कष्ट हमरा कृपा कर छुड़ा दीजिये।।

मंत्र- सचेतसौ द्रुहणो यौ नुदेथे प्र सत्यावानमवथो भरेषु।
यौ गच्छथो नृचक्षसौ बभ्रुणा सुतं तौ नो मुंचतमंहसः।।२।।

काव्यार्थ- इस जनित जग को जो प्राप्त होते हो तुम,
शक्ति पोषक लिये नित्य के कामों में,
करते तुम दोनों बाहर उपद्रवियों को,
सज्जनों को सुरक्षाऐं संग्रामों में।
सब जनों के निरीक्षक, हमें देख कर,
कष्ट हमरा कृपाकर छुड़ा दीजिये।।

मंत्र- यवड्भिगरसमवथो यावगस्तिं मित्रावरूणा
मंत्र- जमदग्निमत्रिम्। यौ कश्यपमवथो यौ वसिष्ठं
तौ नो मुन्चयतंहसः।।३।।

काव्यार्थ- तुम जो मित्र अरू वरूण दोनों ही, उद्यमी-
ज्ञानी ध्यानी जनों की सुरक्षा करो;
ज्योतिमय अग्नि सम पाप नाशक रहे,
आप्तों को बचा, शत्रु भक्षा करो।
सूक्ष्मदर्शी, धनी, श्रेष्ठ जन रक्षते,
कष्ट हमरा कृपा कर छुड़ा दीजिये।।

मंत्र- यौ श्यावाश्वमवथो बभ्रयश्वं मित्रावरूणा युरूमीढमात्रिम्।
यौ विमदमवथ सप्तवध्रिं तौ नौ मुन्चतमंहसः।।४।।

काव्यार्थ- तुम जो मित्र अरू वरूण दोनो ही सर्वदा-
हो बचाते सतत उद्यमी व्यक्ति को;
ज्ञान में व्याप्ति रखते हुए को तथा,
अल्पाहारी, अतुल-धन-धनी व्यक्ति को।
निरभिमानी, जितेन्द्रिय को हो रक्षते,
कष्ट हमरा कृपा कर छुड़ा दीजिये।।

मंत्र- यौ भरद्वाजमवथो यौ गविष्ठिरं विश्वामित्रं वरूण मित्र कुत्सम्।
यौ कक्षीवन्तमवथः प्रोत कण्वं तौ नो मुन्चतमंहसः।।५।।

काव्यार्थ- मित्र एवं वरूण! तुम सदा रक्षते,
अन्न, बल, ज्ञान धारक रहे व्यक्ति को;
जन-हितू, वेद-पालक व पुरूषार्थी को,
वह जो धारण किये स्तुति शक्ति को।
दोष-नाशक को तुम दोनों ही रक्षते,
कष्ट हमरा कृपा कर छुड़ा दीजिये।

मंत्र- यौ मेधातिथिमवथो यौत्रिशोकं मित्रावरूणा-
वुशनां काव्यं यौ। यौ गोतममवथः प्रोत मुद्गलं तौ नो मुन्चतमंहसः।।६।।

काव्यार्थ- मित्र एवं वरूण! तुम उसे रक्षते,
जो कि त्रिदोषों पर शोक करता सदा;
जो कि मेधावी औ हर्षदाता रहा,
कामना योग्य नीति को वरता सदा।
स्तुति-कर्ता की तुम सुरक्षा करो,
कष्ट हमरा कृपा कर छुड़ा दीजिये।
(त्रिदोष-कायिक, वाचिक, मानसिक दोष)

मंत्र- यथो रथः सत्यवर्त्मजुरश्मिर्मिथुया चरन्तमभियाति दूषयन।
स्तौमि मित्रावरूणौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुन्चतमंहसः।।७।।

काव्यार्थ- सत्यपथ गामी एवं सरल व्याप्ति का,
मित्र एवं वरूण का सुपथगामी रथ;
क्रूर हिंसक जनों को कुचलता तथा,
करता उन पर चढ़ाई जो चलते कुपथ।
ऐसे मित्र वरूण को पुकारूँ सदा,
कष्ट हमरा कृपा कर छुड़ा दीजिये।।

सूक्त ३०

मंत्र- अहं रूद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरूत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरूणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा।।१।।

काव्यार्थ- **गीत**

मैं प्रभु की शक्ति महान्, तेरी भर दूँ झोली खाली।
तेरी भर दूँ झोली खाली, तेरे सब तालों की ताली।।
मैं चलती दुःख विनाशक अरू वास-प्रदाताओं संग,
सब ज्योतिधारी लोको अरू सब दिव्य प्रमाताओं संग,
करूँ धारण अग्नि समीर अरू दिवा रात्रि की पाली।
वर दिवा रात्रि की पाली, भू द्यू पालन हित माली।।

मंत्र- अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरूत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तः।।२।।

काव्यार्थ- **गीत**

सब पूजनीयों में पहली, करती प्रकाश मैं बह ली,
धन प्राप्त कराती सबको, मैं विद्वानों, संग टहली;
मैंने सबमें विविध प्रकार, रहने की बात बनाली।
रहने की बात बनाली, कोई लोक न मुझसे खाली।।
ज्ञानी जन मुझे सराते, ध्यानी जन मुझको घ्याते,
निज आत्मा बीच नाना विधि, मुझको प्रवेश कराते;
मुझको प्रसन्न कर सारी, ही बिगड़ी बात बना ली।
सारी बिगड़ी बात बना ली, सत् राह उन्होंने पाली।।

मंत्र- अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम्।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्राह्मणं तमृषिं तं सुमेधाम्।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

देव, मनुज स्वीकारते जो यह प्यारे बैन।
इन्हें स्वयं मैं बोलकर देती हूँ सुख चैन।।
जिस जिस को मैं चाहती करती तेजवान।
तथा बनाती ब्रह्म ऋषि अरू उत्तम विद्वान्।।

मंत्र- मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धेयं ते वदामि।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

यह श्रद्धेय सत्य में बतलाती हूँ तोय।
सुनने वाले जीव सुन अन्य न हितकर होय।।
रीति विशेष धार जो मुझको लेता जान।
मेरे द्वारा अन्न का पाता है वह दान।
मेरी शक्ति से वह वचन सुनता, लेता श्वास।
जो मुझको भजता नहीं उसका होता नाश।।

मंत्र- अहं रूद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शर वे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ज्ञान-द्वेषी हिंसक जनों का लेने को प्राण।
रूद्र शूरों द्वारा धनुंष मैं लेती हूँ तान।।
मेरा है सब ओर से द्यु भू लोक प्रवेश।
शिष्टों हित जग में भरूँ मैं आनन्द विशेष।।

मंत्र- अहं सोममाहनसं बिमर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणा हविष्मते सुप्राव्या३यजमानाय सुन्वते।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

रसों के विभेदक रवि को धारती मैं, तथा-
प्राप्ति के योग्य एश्वर्य-प्रधान हूँ,
सेवनीय चन्द्रमा को धारती सदैव, तथा-
पृथिवी को धारने में उस ही समान हूँ।
विद्या-रस सेवता जो, भक्ति करता जो मेरी,
उसको प्रदानती मैं श्रेष्ठ स्थान हूँ,
देवताओं को जो नर पूजता सदैव, उसे-
नाना रक्षणीय धन करती प्रदान हूँ।।

मंत्र- अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनानि विश्वोतामू द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि।।७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

मैं सकल जगती के नियमन हेतु, शुभ-
पालनीय गुण उत्पन्न किया करती
रहने के हेतु अन्तरिक्ष बीच वर्तमान,
व्यापनशील रचनाओं मध्य ठिया करती।
इस ही से सर्वदा ही त्रिलोक बीच रहे,
सब प्राणियों में वर्तमान जिया करती;
निज-महिमा से, निज ऐश्वर्य द्वारा सदा,
वह द्यु-लोक स्पर्श किया करती।।

मंत्र- अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा कर एना पृथिव्यैतावती महिम्ना सं बभूव।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मैं उद्गम सब भुवनों की कर एकल स्पर्श।।
चलती पवन समान हूँ करती दूर अमर्ष।।
इस पृथिवी से परे अरू परे सूर्य के लोक।
निज महिमा से महत्तम शक्ति बनी बे रोक।।

सूक्त ३१

मंत्र- त्वया मन्यो सरथमारूजन्तो हर्षमाणा ह्रषितासो मरूत्वन्।
तिग्मेषव आयुधा संशिशाना उप प्र यन्तु नरो अग्निरुपाः।।१।।

काव्यार्थ- हे शूरवीर क्रोध! एक तेरे सहारे,
मुखिया हमारे शस्त्रधारी, अग्नि सरीखे-
निज वाण तीक्षण करते हुए, रथारूढ़ हो,
चढ़ शत्रु पर संहार करें, जीतते दीखें।
संतुष्ट औं प्रसन्न हो, आनन्द मनायें,
बन जाँय खिवैया वो राष्ट्र रूप तरी के।

मंत्र- अग्निरिव मन्योत्विषितः सहस्व सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि।
हत्वाय शत्रून्वि भजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व।।२।।

काव्यार्थ- हे क्रोध! शूरवीरों में अग्नि सा प्रज्जवलित,
दुष्टों का नाश करने की शक्त लिये हुए,
आहूत प्रबल क्रोध! तू नायक हमारा बन,
शत्रु को मार, धन को रख वितरित किये हुए।
तू अपने ओज को प्रकट करता हुआ, हटा-
सब हिंसकों को, रख नहीं उनको जिये हुए।

मंत्र- सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मै रूजन्मृणन्प्रमृणन्प्रेहि शत्रून्।
उग्रं ते पाजो नन्वा ररूध्रे वशी वशं नयासा एकज त्वम्।।३।।

काव्यार्थ- हे क्रोध! इस पुरूष हितार्थ दंभी शत्रु को-
तू तोड़ता, कुचलता हुआ, मार दबा दे,
वह रंच नहीं रोक पाये तेरा उग्र बल,
उस पर चढ़ाई करते हुए, उसको चबा दे।
एक ईश से उत्पन्न अद्वितीय क्रोध तू,
शत्रु को वश में करते हुए, उसको तपा दे।

मंत्र- एको बहूनामसि मन्य ईडिता विशंविशं युद्धाय सं शिशाधि।
अकृत्तरूक्त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्मसि।।४।।

काव्यार्थ- हे क्रोध! अकेला तू ही सत्कार योग्य है,
हम सब प्रजाननों को प्रेर युद्व के लिये;
उत्तम प्रकार हमको सिखा युद्ध की कला,
कर देवें नष्ट हम समस्त शत्रु के ठिये।
हे कान्ति से भरपूर मित्र! तेरे साथ हम,
बहु घोष करें, हर्ष पूर्ण जीत के लिये।

मंत्र- बिजेषकृदिन्द्रइवानवब्रवोऽस्माकंमन्यो अधिपा भवेह।
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मातमुत्सं यत आबभूथ।।५।।

काव्यार्थ- महनीय प्रतापी, सदैव जीतने वाले-
योद्वा समान बन यहाँ स्वामी तू हमारा;
हे क्रोध! तेरे उस समान प्यारे वचन हों,
हम सबकी वाणियों पे तेरा नाम हो प्यारा।
सामर्थ्यवान क्रोध! हमें ज्ञात स्रोत है,
जिससे तू प्रकट हो हमें देता है सहारा।
(स्रोत-ईश्वर)

मंत्र- आमूत्या सहजा वज्र सायक सेहो बिभर्षि सहभूत उत्तरम्।
क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्येऽधि महाधनस्य संसृजि।।६।।

काव्यार्थ- हे अतुल ऐश्वर्यधारी शत्रु-हन्ता क्रोध-
तू विभूतियों के साथ होता उत्पन्न है;

हे कठोर वज्रधारी! तुझ बीच अन्यों से,
अधिक-अधिक श्रेष्ठ बल प्रच्छन्न है।
तू ही महनीय धन-दाता संग्राम-काल,
कर्म-शक्ति साथ हमें करता प्रसन्न है।

मंत्र- संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं त्ता वरूणश्च मन्युः।
मियो दधाना हृदयेषु शत्रव पराजितासो अप निलयन्ताम्।।७।।

काव्यार्थ- श्रेष्ठ शूर और क्रोध, हमको प्रदान करें-
धन दो प्रकार का जो जग बीच व्याप्त है,
एक जो स्वयं हमने किया है उत्पन्न, औ-
दूसरा जो संग्रह द्वारा किया प्राप्त है।
हमसे पराजित हो शत्रु दूर जावे भाग,
जिसके हृदय में हमारा भय व्याप्त है।

सूक्त ३२

मंत्र- यस्ते मन्योऽविधद्वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक्।
साह्याम दासमार्यं त्वया युजा वयं सहस्कृतेन सहसा सहस्वता।।१।।

काव्यार्थ-वज्र रूप हे शत्रु-विनाशक क्रोध! तेरा गुणगान करे।
बल द्वारा उत्पन्न तुझी से शत्रु बड़े बलवान डरें।।
जो नर तेरा सेवन करते वह निज को बलवान करें।
अरू समाज-बल को वह अविरल करते पुष्ट विहीन करें,
सबल सहायक! तुझे साथ ले हम निज को बलवान करें।
अरू मूर्खों का करें निरादर, विज्ञों का सम्मान करें।

मंत्र- मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरूणो जातवेदाः।
मन्युर्विश ईडते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः।।२।।

काव्यार्थ-हे मनुष्यों! वरणीय क्रोध है, करता धन का दान है।
वह ही होता, अरू वरणीय, दिव्य गुणों की खान है।।
रहा ऐश्वर्य प्रेमी है, सबसे सदा प्राप्त सम्मान है।
कष्टों से वह हमें बचाये, उससे ही पहचान है।।

मंत्र- अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान्तपसा युजा वि जहि शत्रून्।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः।।३।।

काव्यार्थ-हे महान से भी महान् क्रोध! तू कृपा-दृष्टि कर दे।
शत्रु-संहारक! अंध-विनाशक! हमें ज्योति का शुभ वर दे।।
दस्यु दलों के जीवन हर्ता! प्राण शत्रुओं के हर दे,
अरू हमरे हित सकल धनों को, सकल दिशाओं में भर दे।।

मंत्र- त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयं भूर्भामो अभिमातिशाहः।
विश्वचर्षणि सहुरिः सहीयानस्मास्वोजः पृतनासु धेहि।।४।।

काव्यार्थ-हे क्रोध! तू निज शकित से बढ़ता, कभी न थकता है।
शत्रु-पराजय का सामर्थ्य, केवल तू ही रखता है।।
तू ही तेजमय, तू अभिमानी-शत्रु-तेज को भखता है।
तू ही निरीक्षण में समर्थ है, निज को बल से ढकता है।।
सर्वशक्तिधारी है, तुझसे जीत न कोई सकता है।।
संग्रामों में हमें ओज दे, जन-जन तुझको टकता है।।

मंत्र- अभागः सन्नप्र परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य
प्रचेतः। तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीडाहं स्वा तनूर्बलदावा न एहि।।५।।

काव्यार्थ-श्रेष्ठ ज्ञान-धारक हे क्रोध! तब बल मैंने नहीं गहा।
कर्म-शक्ति से दूर हो गया, तुझे कर दिया कुद्ध महा।।
हे बल-दाता! तू निज तन-बल, हमरे तन के बीच बहा।
हमें शीघ्र हो प्राप्त, विनय है, कर दे अपनी छत्र-छँहा।।

मंत्र- अयं ते अस्म्युप न एह्यर्वाङ्ग प्रतीचीनः सहुरे विश्वदावन्।
मन्यो व्रज्रिन्नमि न आ वृवत्स्व हनाव दस्यूंरूत बोध्यापेः।।६।।

काव्यार्थ-यह मैं तेरा हूँ हे क्रोध! हे समर्थ! सर्वदाता।
चल कर तू प्रत्यक्ष उपस्थित पास हमारे हो त्राता।
व्रजधारी! पहचान स्वबन्धु, जो नित-नित तुझको ध्याता।
जिससे हम दुष्टों को मारें, जिन से जन-जन दुःख पाता।।

मंत्र- अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा नोऽद्या वृत्राणि जंघनाव भूरि।
जुहोमि ते धरूणं मध्वो अग्रमुभावुपांशु प्रथमा पिबाव।।७।।

काव्यार्थ- क्रोध अग्र बढ़, नित-नित मेरे दाहिनी ओर रहा कर तू।
हम दोनों मिल भूरि अंध को नाशें, हाथ गहा कर तू।।
मैं मधुरस धर्ता का आश्रित, जिसके साथ बहा कर तू।
उसके मधुरस प्रथम पान को मेरे साथ महा कर तू।।

सूक्त ३३

मंत्र- अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम्। अप नः शोशुचदघम्।।१।।

काव्यार्थ- हे अग्निरूप प्रभुवर! पापों से हुइ मैली,
चादर हमारी धुलकर निर्मल स्वरूप होवे;
धन पास में हमारे होकर के शुद्ध आये,
प्रभुवर! हमारा सारा ही पाप दूर होवे।

मंत्र- सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे। अप नः शोशुचदघम्।।२।।

काव्यार्थ- प्रभुवर! हम अपने खेत उत्तम बनाने हेतु,
उत्तम बनाने भूमि, किंचित न घूर हेवें;
उत्तम धनों के पाने हित तुझको पूजते हैं,
प्रभुवर! हमारा सारा ही पाप दूर होवे।

मंत्र- प्र यद्भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः। अप नः शोशुचदघम्।।३।।

काव्यार्थ- जग-प्राणियों के बीच प्रभुदेव! जैसे मेरा-
तन और मन अतीव आनन्द-पूर होवे;
जैसे हमारे ज्ञानी उत्तम दशा को पायें,
वैसे हमारा सारा ही पाप दूर होवे।

मंत्र- प्र यत्ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम्। अप नः शोशुचदघम्।।४।।

काव्यार्थ- ज्ञान-स्वरूप प्रभुवर! हे अग्नि रूप देव!
तेरे समस्त विज्ञ जैसे कि तूर होवें,
वैसे ही हम तेरे बन कर श्रेष्ठता को पायें;
प्रभुवर! हमारा सारा ही पाप दूर होवे।

मंत्र- अ यदग्ने सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः। अप नः शोशुचदघम्।।५।।

काव्यार्थ- जैसे कि तीव्रता से जलती हुई अगनि की,
किरणों से गहरा फैला सब अंध-चूर होवे;
ज्ञान-स्वरूप प्रभुवर! हे अग्नि रूप देव,
वैसे हमारा सारा ही पाप दूर होवे।

मंत्र- त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि। अप नः शोशुचदघम्।।६।।

काव्यार्थ- ज्ञान-स्वरूप प्रभुवर! हे अग्निरूप देव!
जैसे कि सभी ओर तब मुख का नूर होवे;
जैसे कि सभी ओर तू व्याप, पाप हरता,
वैसे हमारा सारा ही ताप दूर होवे।

मंत्र- द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय। अप नः शोशुचदघम्।।७।।

काव्यार्थ- सब ओर को मुख वाले, हे सर्वदृष्टा प्रभुवर!
जैसे जनों को नौका होकर के सूर दो;
वैसे ही हमें अरिदल सागर से पार कर तू,
वैसे हमारा सारा ही पाप दूर होवे।

मंत्र- स नः सिन्धुमिव नावति पर्षा स्वस्तये। अप नः शोशुचदघम्।।८।।

काव्यार्थ- नौका से ज्यों समुद्र को लाँघ पार करते,
वैसे हमें प्रभू तू कल्याण-पूर होवें;
वैसे ही हमें दुःख के सागर से पार कर तू,
वैसे हमारा सारा ही पाप दूरे होवे।

सूक्त ३४

मंत्र- ब्रह्मस्य शीर्षं बृहदस्य पृष्ठं वामदेव्यमुदरमोदनस्य।
छन्दांसि पक्षौ मुखमस्य सत्यं विष्टारी जातस्तपसोऽधि यज्ञः।।१।।

काव्यार्थ-इस सेचन समर्थ परमात्मा का सिर वेद बताता है,
उदर भूत पंचक, प्रवृद्ध जग इसकी पीठ बनाता है।
कर्म जो कि आनन्द बढ़ाते अरू जो पूज्य कहाते हैं,
वह इसके द्वय पार्श्व तथा इसका मुँह सत्य सुहाता है।
जो सदैव ही पूजनीय है, तथा बहुत विस्तार लिये,
ऐसा प्रभु ऐश्वर्य धार, बन सर्वोपरि लखाता है।

मंत्र- अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः शुचयः शुचिमपि यन्ति लोकम्।
नैषां शिश्नं प्र दहति जातवेदाः स्वर्गे लोके बहु स्त्रैणमेषाम्।।२।।

काव्यार्थ- रहे शुद्ध, मन-बुद्धि-कर्म से एवं इन्द्रिय-जीत रहे,
ऐसे नर ही शुद्ध-स्वरूप परम-प्रभू के ज्ञाता है।
नर-कर्मों के ज्ञाता प्रभुवर इनका शुभ सामर्थ्य तथा,
इनकी गति को नहीं जलाते, बनते इनके त्राता हैं।
यह जन सदा प्रभु-आश्रित हो, बनते जगत् हितैषी हैं,
अरू सुखदा प्राप्तव्य लोक से रखते सुन्दर नाता हैं।

मंत्र- विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनानवर्तिः सचते कदाचन।
आस्ते यम उप याति देवान्त्सं गन्धर्वैर्मदते सोम्येभिः।।३।।

काव्यार्थ-जो व्यक्ति सेचन-समर्थ, विस्तारवान प्रभुवर को,
श्रद्धा, प्रेम, भक्ति से डर में आत्मसात करते हैं,
कभी नहीं होते दरिद्र वह तथा नियम में रह कर,
अधिकाधिक उत्तम उत्तम गुण प्राप्त किया करते हैं;
वेद-वाणियों के धारक, ऐश्वर्य युक्त आप्तों का,
लभते हैं सत्संग तथा आनन्द प्राप्त करते हैं।

मंत्र- विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनान्यमः परि मुष्णाति रेतः।
रथी ह भूत्वा रथयान इयते पक्षी ह भूत्वाति दिवः समेति।।४।।

काव्यार्थ-जो व्यक्ति सेचन समर्थ, विस्तारवान प्रभुवर को,
श्रद्धा, प्रेम, भति से उर में आत्म-सत करते हैं,
उन्हें नियम संयम सामर्थ्यहीन होने से सदा बचाता,
निशा नाश कर वही जगत् में शुभ प्रभात करते हैं,
वह रथयान समान जगत् में होकर रथी विचरते,
पक्षी समान द्युलोक पार कर और उच्च तरते हैं।

मंत्र- एष यज्ञानां विततो वहिष्ठो विष्टारिणं पक्वता
दिवमा विवेश। आण्डीकं कुमुदं सं तनोति बिसं शालूकं
शफको मुलाली। एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत्यिन्वमाना
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः।।५।।

काव्यार्थ-यह व्यक्ति सम्माननीय, अत्यन्त शुभगुणी होकर,
श्रेष्ठ रहे शुभ कर्मों की विस्तार कामना लेकर;
प्रभु को उर में आत्मसात कर, ज्योतिवान प्रभुवर की-
महिमा में लवलीन हुआ, सर्वस्व उसी को देकर।
शांति कामी यह मूल-शक्ति की वृद्धि करने वाला,
पृथिवी पर आनन्द प्रदाता वस्तु सदा फैलाये;
अरू बलदायक तथा बहु बहु वेगशील कर्मों को,
ठीक-ठीक विस्तारित करता, सुख आनन्द बिठाये।
धारण शक्ति-समूह प्रभु का स्वर्ग-लोक में तुझको,
मधुरस से सिंचित करता, आनन्द प्रदाता होवे;
पोषण-दाता सभी शक्तियाँ तेरे पास उपस्थित-
होकर तुझमें व्याप्त रहें, तुझमें पौरूष को बोवें।

मंत्र- घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दघ्ना।
एतास्त्वा धारउपयन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमाना
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः।।६।।

काव्यार्थ-ज्ञान रूपी रक्षा साधन, भोजन अरू वृद्धि साधन-
को प्रदान करने वाली, प्रकाश प्रवाहित करती;
पोषण अरू धारण शक्ति युत, ऐश्वर्य से युक्त,
प्रभु प्रदत्त शक्तियाँ जितनी भी जग बीच विचरतीं।
हे मनुष्य! वह सभी शक्तियाँ, पूर्ण ज्ञान के साथ,
स्वर्ग लोक में तुझको सिंचित करती आन मिलें;
सब पोषण शक्तियाँ तेरे अन्दर निवास करती हों,
उनसे पोषित हुए तेरे मन बुद्धि कमल खिलें।

मंत्र- चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि क्षीरेण पूर्णां उदकेन दघ्ना।
एतास्त्वा धारा उपयन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमाना
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः।।७।।

काव्यार्थ- हे मनुष्य! धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार पदार्थ,
जो धारण अरू पोषण करने में समर्थ रहे हैं;
इन्हें तुझे मैं चार वेदों द्वारा प्रदान करता हूँ,
यह भूमि को पूर्ण बना, हरते अनर्थ रहे हैं।
धारण-शक्ति समूह, समस्त पूर्ण ज्ञान के साथ,
स्वर्ग लोक में तुझको सिंचित करती आन मिलें;
सब पोषण शक्तियाँ तेरे अन्दर निवास करती हों,
उनसे पोषित हुए तेरे मन बुद्धि कमल खिलें।

मंत्र- इममोदनं नि दधे ब्राह्मणेषु विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम्।
स मे मा क्षेष्ट स्वधया पिन्वमानो विश्वरुपा धेनुः कामदुधा मे अस्तु।।८।।

काव्यार्थ- ब्रह्मज्ञानियों बीच, सकल लोकों को जिसने जीता,
सर्वशक्तिधारी उस ही प्रभु को मैं धारण करता,
अपनी धारण शक्ति से वह तृप्त सभी को करता,
मुझको घटे नहीं, वह होवे कष्ट निवारण करता।
सब अंगों से सिद्ध, धेनु सम तृप्त किया करती जो,
ऐसी वेद-वाणी मुझको नित तृप्ति प्रदान करे;
मेरी उत्तम रही कामनाओं को पूर्ण करके,
अंध मिटाये सारे, सुख अरू शांति प्रकाम भरे।

सूक्त ३५

मंत्र- यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपचत्।
यो लोकानां विधृतिर्नाभिरेषात्ते नौदनेनाति तराणि मृत्युम्।।१।।

काव्यार्थ-प्रभु विधाता सब लोकों का, कभी नहीं घटता जो,
सत्य वृद्धि करने का जिसने सुन्दर सुप्रण किया है;
ख्यात जनों में जन्मे, जन-जन पालक योगी जनों ने,
जिसको तप से ब्रह्म प्राप्ति हित उर में सुदृढ़ किया है।
अग्र बढ़ाते अन्न रुप उस प्रभुवर को जानूँ, मैं-
लाँघ मृत्यु के कारण को, जीवन सुधार, तर जाऊँ।।

मंत्र- येनातरन्भूतकृतोऽति मृत्युं यमन्वविन्द तपसा श्रमेण।
यं पपाच ब्रह्मणे ब्रह्म पूर्वं तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम्।।२।।

काव्यार्थ-ऋषि जिसे ले साथ जगत्-जीवों को श्रेष्ठ बनाते,
जिसको तप से अरू श्रम से अंतः में लिया हुआ है;
वेद-ज्ञानियों, आप्त जनों अरू ऋषियों हित वेद ने,
पहले से ही जिस प्रभु का प्रतिपादन किया हुआ है।
अग्र बढ़ाते अन्न रुप उस प्रभुवर को जानू, मैं-
लाँघ मृत्यु के कारण को, जीवन सुधार, तर जाऊँ।।

मंत्र- यो दाधार पृथिवीं विश्वभोजसं यो अन्तरिक्षमापृणाद्रसेन।
यो अस्तभ्नाद्दिवमूर्ध्वो महिम्ना तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम्।।३।।

काव्यार्थ-जिस परमेश्वर ने पृथिवी को धारण किया हुआ, जो-
नाना भोज्य पदार्थों द्वारा सबका पालन करती,
जिसने जल से भरा व्योम अरू आभामय द्यु-लोक-
जिसने धारण किया, महत् महिमा चहुँ ओर विचरती।
अग्र बढ़ाते अन्न रुप उस प्रभुवर को जानूँ, मैं-
लाँघ मृत्यु के कारण को, जीवन सुधार, तर जाऊँ।।

मंत्र- यस्मान्मासा निर्मितास्त्रिंशदशः संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः।
अहोरात्रा यं परियन्तो नापुस्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम्।।४।।

काव्यार्थ-प्रभु ने रचे महीने जिनमें अरे तीस दिन रूपी,
रचे महीने बारह जिसमें अरे, रचा संवत्सर;
दिन अरू रात घूमते, जिसको किंचित पकड़ न पाते,
जिसका आश्रय दूर हटाता काम, क्रोध, भय मत्सर।
अग्र बढ़ाते अन्न रूप उस प्रभुवर को जानूँ, मैं-
लाँघ मृत्यु के कारण को, जीवन सुधार, तर जाऊँ।।

मंत्र- यः प्राणदः प्राणदवान्बभूव यस्मै लोका घृतवन्तः क्षरन्ति।
ज्योतिष्मतीः प्रदिशो यस्य सर्वास्ते नौदनेनाति पराणि मृत्युम्।।५।।

काव्यार्थ- जो प्रभु सबका प्राण, प्राण का देने वाला हुआ है,
प्राण प्रदाता सूर्य आदि को सेने वाला हुआ है;
जिसके लिये सभी घृत-धारी लोक बहा करते हैं;
जिसकी ज्योतिष्मती दिशा सब, खेने वाला हुआ है।
अग्र बढ़ाते अन्न रूप उस प्रभुवर को जानूँ, मैं-
लाँघ मृत्यु के कारण को, जीवन सुधार, तर जाऊँ।।

मंत्र- यस्मात्पक्वादमृतं संबभूव यो गायत्र्या अधिपतिर्बभूव।
यमिन्वेदा निहिता विश्वरूपास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम्।।६।।

काव्यार्थ-अमृत है उत्पन्न हुआ जिस परिपवक्व प्रभुवर से,
वेदवाणी गायत्री का जो अधिपति हुआ कहाता;
सबका करते जो कि निरुपण, जो कीर्तन के योग्य,
उसे वेद की निधि रुप में अपने बीच गहाता।
अग्र बढ़ाते अन्न रूप उस प्रभुवर को जानूँ, मैं-
लाँघ मृत्यु के कारण को, जीवन सुधार, तर जाऊँ।।

मंत्र- अव बाधे द्विषन्तं देवपीयुं सपत्ना ये मेऽप ते भवन्तु।
ब्रह्मौदनं विश्वजितं पचामि शृण्वन्तु मे श्रद्दधानस्य देवाः।।७।।

काव्यार्थ-देव जनों के जो कि विरोधी हैं, जो कंटक बोते,
ऐसे द्वेष भरे दुष्टों को मैं बल धार हटाता;
जो मेरे प्रतिस्वर्धी हैं, सब के सब हट जावें,
अन्न रूप प्रभु को मैं निज से दृढ़ता साथ सटाता।

दोहा

इसमें श्रद्धा है मेरी, कहूँ कथन को तोल।
सभी सुझानी देव जन, सुनें मेरे यह बोल।।

सूक्त ३६

मंत्र- तान्त्सत्यौजाः प्र दहत्वग्निर्वैश्वानरो वृषा।
या नो दुरस्याद्दिप्साच्चाथो यो नो अरातियात्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सत्य-ओज से पूर्ण है सबका हितू विशेष।
नित सुख की वर्षा करे तेजस्वी परमेश।
उन्हें करे वह भस्म जो हमसे मानें रार।
नाश चाहते मन करें बैरी सा व्यवहार।।

मंत्र- यो नो दिप्सददिप्सतो दिप्सतो यश्च दिप्सति।
वैश्वानरस्य दंष्ट्रयोरग्नरेपि दधामि तम्।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हम, न सताने वालो को जो कि सताता होय।
या हमसे पा दण्ड भी जो न सताना खोय।।
उसको मैं रखता हूँ उस के दो जबड़ों बीच।।
तेजवान जो सबको ही रखता हित से सींच।।

मंत्र- य आगरे मृगयन्ते प्रतिक्रोशेऽमावास्ये।
क्रव्यादो अन्यान्दिप्सतः सर्वांस्तान्सहसा सह।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

किन्हीं घरों में होती जब द्रोह कलह की बात।
या कि अमावस अंध की होती है जब रात।।
माँस-भक्षी, पर-पीर-दा फिरते करते खोज।
उन सबको मैं जीतता धारे शक्ति ओज।।

मंत्र- सहे पिशाचान्त्सहसैषां द्रविणं ददे।
सर्वान्दुरस्यतो हान्मि सं म आकूतिऋंध्यताम्।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

माँस-भक्षियों को तत्वरित बल से लेता जीत।
अरू उनका धन बाटता श्रेष्ठ सुपात्रों बीच।।
सभी सताते दुष्टों का करूँ समूल विनाश।
मेरा शुभ संकल्प यह होय सिद्ध सकाश।।

मंत्र- ये देवास्तेन हासन्ते सूर्येण मिति जवम्।
नदीषु पर्वतेषु ये सं तैः पशुमिर्विदे।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

दिव्य शक्ति जो चाहते चलें पुण्य के साथ।
वह रवि सम बनकर गहें गिरि सरित कस पाथ।।
कठिन महत्तम कर्मों को वह कर लेते बिद्ध।
उन देवों से मिल करूँ मैं शुभ गुण को सिद्ध।।

मंत्र- तपनो अस्मि पिशाचानां व्याघ्रो गोमतामिव।
श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा ते न विन्दन्ते न्यंचनम्।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

रक्त-पिपासु दुष्टों को मैं देता संताप।
गो-पालक में व्याघ्र का ज्यों भय जाता व्याप।।
रक्त-पिपासु दुष्ट सब डरते हैं इस भाँति।
व्याघ्र देखकर डरती है ज्यों गौओं की पाँति
कहीं न मिलता दुष्टों को छिपने का स्थान।
विवश बहुत हो सिंह के सम्मुख जैसे श्वान।।

मंत्र- न पिशाचैः सं शक्नोमि न स्तेनैर्न वनर्गुभिः।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मैं रह सकता हूँ नहीं कभी पिशाचों साथ।
चोर, बनैले डाकू भी रंच न मुझको भात।।
जिस जिस ग्राम बीच में होता मेरा प्रवेश।
यह सब द्रुत ही भागते रहता एक न शेष।

मंत्र- यं ग्राममाविशत इदमुग्रं सहो मम।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुप जानते।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मेरा यह अति उग्र बल जिस जिस ग्राम जाय।
वहाँ पिशाच एक भी कहीं न रहने पाय।।
रह पाते क्षण भर नहीं रखता उन्हें विदार।
रहे वही जो छोड़ते अपना पाप विचार।।

मंत्र- ये मा क्रोधयन्तिलपिता हस्तिनं मशकाइव।
तानहं मन्ये दुर्हितान्जने अल्पशयूनिव।।९।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मच्छर हाथी पास जा उसको क्रोध दिलाय।
वैसे बकवादी मनुज मुझे कुपित कर जाय।।
वह हो जाते नष्ट हैं कीट-पतिंगो भाँति।
कष्ट बढ़ाते हैं सदा हरते हैं सुख-शान्ति।

मंत्र- अभि तं निर्ऋतिर्धत्तामश्वमिवाभिधान्या।
मल्वो योमतुह्यं क्रुध्यति स उ पाशान्न मुच्यते।।१०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अश्व-बन्धिनी रस्सी, ज्यों बाँध अश्व को लेत।
त्यों पापी को निधनता बाँधे करे अचेत।
मलिन पुरूष मुझको कि जो करे क्रोध से युक्त।।
कभी नहीं वह पाशों से हो पाता है मुक्त।।

सूक्त ३७

मंत्र- त्वया पूर्वमथर्वाणोजघ्नू रक्षांस्योषधे।
त्वया जघान कश्पस्त्वया कण्वो अगस्त्यः।।१।।

काव्यार्थ-ताप विनाशक शक्ति! पूर्व में तेरा सहारा लेकर,
निश्चल स्वभाव देव पुरूषों ने राक्षस दल को मारा;
तेरे सहारे कुटिल गति के पाप नाशने वाले,
तत्व-दर्शी, मेधावी जन ने दोषों को संहारा,
वैसे ही सब पुरूष ज्ञान पूर्वक सब दोष विनाशें,
करते रह उपकार, भरें जग में आनन्द अपारा।

मंत्र- त्वया व्यमप्सरसो गन्धर्वाश्चातयामहे।
अजश्रृङ्.ग्यज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय।।२।।

काव्यार्थ-हे अजश्रृंगी औषधि सम, दुःख नाशक शक्ति प्रभुवर!
तव आश्रय पा हम जलादि में व्याप्त शक्तियाँ चाहें;
विद्या अरू पृथिवी के धारक गुण-गण हमें दिला तू,
सब राक्षस-दल हटा, बना दे विघ्न रहित सब राहें।

मंत्र- नदीं यन्त्वप्सरसोऽपां तारमवश्वसम्। गुल्गुलूः पीला नलद्यौ३क्षगन्धिः
प्रमन्दनी। तप्परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

परमेश्वर की अनन्त शक्तियाँ समस्त,
बन्धन को काटतीं जो सबको ही घेरतीं;
प्रत्येक रक्षा के साधन से रक्षित जो,
बड़ो के योग्य गति वाली, भक्त-दुःखी फेरतीं।
वह व्याप्त सब बीच होकर के, जल तट
भरती नदी समान पूर्ण, रहे हेरती;
बौद्धिक पराक्रम से मेघावी जनों के द्वारा,
प्रत्यक्ष जानी हुई, नित्य रहें टेरती।।

मंत्र- यत्राश्वात्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिखण्डिनः।
तत्परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन।।४।।

काव्यार्थ-पुरूषार्थी, स्वीकारणीय शूरों में खड़े हुओं की,
शत्रु-संहारक वीर जनों की रहें जहाँ पर पाँति;
वहाँ प्रभु की सकल शक्तियों! नभ आदिक में व्याप-
तुम विक्रम से प्राप्त हुई, प्रत्यक्ष जान ली जाती।

मंत्र- यत्र वः प्रेङ्खा हरिता अर्जुना उत यत्राघाटाः
कर्कर्यः संवदन्ति। तत्परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन।।५।।

काव्यार्थ-करती है संवाद तुम्हारा जहाँ प्रजा अति उत्तम,
उत्तम कर्म ग्रहण करती जो, उत्तम गति करती है;
कर्मठ बनती हुई सदा ही दोषों को हरती है;
वहाँ पराक्रम द्वारा प्राप्त शक्तियों, प्रजा-
तव प्रत्यक्ष ज्ञान कर, तुमको हृदय बीच धरती है।

मंत्र- एयमगन्नोषधीनां वीरूधां वीर्यावती। अजशृंडगय
पटकी तीक्ष्ण श्रृंगी व्यषतु।।६।।

काव्यार्थ-विविध प्रकार उन्नति करने वाली गुणी प्रजा को,
महनीय सामर्थ्य युक्त यह शक्ति प्राप्त होती है;
जीवात्मा के दुःख यही काटती ताप-विनाशक शक्ति,
सबको शीघ्र प्राप्त होती है, दिव्य ज्योति बोती है;
महत् तेज वाली यह शक्ति प्राप्त सभी को होवे,
उन्नति करें सभी इससे, यह सकल पाप धोती है।

मंत्र- आनृत्यतः शिखण्डिनो गन्धर्वस्याप्सरापते। भिन्धि मुष्कावपि यामि शेपः।।७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सब क्षेत्रों में जो सदैव ही प्रयत्नशील,
अत्यन्त ही पवित्र, रंच न गलीच है;
वेद-वाणी अरू सर्व लोक धारता जो, तथा-
अग-जग बीच शक्तियों को रहा सींच है।
उस सर्वशक्तिमान प्रभु के सामर्थ्य को मैं-
माँगता हूँ, जन-जन हेतु जो मरीच है,
जिससे मैं पूर्ण रूप छिन्न भिन्न कर पाऊँ,
काम क्रोध द्वय चोर जो कि मम बीच हैं।।

मंत्र- भीमा इन्द्रस्य हेतयः शमतृष्टीरयस्मयीः।
तामिर्हविरदान्गन्धर्वानवकादान्वयृषतु।।८।।

काव्यार्थ-अति विनाशकारी सौ शक्ति परमेश्वर रखता है,
जो लोहे की बनी हुई खण्डों समान भयकारी;
अपनी शत शक्तियों सहित वह परमेश्वर वीरों को,
प्राप्त रहे जो धारण करते वेद-वाणी हितकारी;
जो धारण करते पृथिवी को, हिंसा को हरते हैं,
दुष्ट दमन हित ग्राह्य अन्न भोजन करते बलकारी।

मंत्र- भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टभिर्हरण्ययीः।
ताभिर्हविरदान्गन्धर्वानवकादान्व्यृषतु।।९।।

काव्यार्थ-अति विनाशकारी सौ शक्ति परमेश्वर रखता है,
तेजभरी तलवारों जैसी जो अतीव भयकारी;
अपनी शत शक्तियों सहित वह परमेश्वर वीरों को-
प्राप्त रहे, जो धारण करते वेद-वाणी हितकारी;
जो धारण करते पृथिवी को, हिंसा को हरते हैं,
दुष्ट दमन हितग्राह्य अन्न भोजन करते बलकारी।

मंत्र- अवकादानभिशोचानप्सु ज्योतय मामकान्।
पिशाचान्त्सर्वानोषधे प्रमृणीहिसहस्व च।।१।।

काव्यार्थ-हे औषध समान ताप के नाशक प्रभुवर मेरे,
तू सतेज किरणों से सारी हिंसाऐं जरता है;
व्याप्यमान प्रजाओं में मम ज्योतिवान पुरूषों को,
ज्योति धारता हुआ बना, तुझमें प्रकाश तरता है;
माँसमक्षी पापी जन को वह मारें तथा हरा दें,
उनको पौरूषपूर्ण बना, वीरत्व तू ही धरता है।

मंत्र- श्वेवैकः कपिरिवैकः कुमार सर्वकेशकः। प्रियो दृशइव भूत्वा गन्धर्वः।
सचते स्त्रियस्तमितो नाशयामसि ब्रह्मणा वीर्यावता।।११।।

काव्यार्थ-एकमात्र गतिशील प्रभू है, वही कँपाने वाला,
सर्वप्रकाशक, काम्य, सभी उससे प्रकाश भरते हैं;
प्रिय जन के समान अति ही प्रिय, वेद वाणी का धारक,
संगतियाँ रखते समूह सब दास बने, तरते हैं,
उस समर्थ परब्रह्म साथ, बल साहस विक्रम धारे,
चोर आदि का शुभ थल से हम विनाश करते हैं।

मंत्र- जया इद्वो अप्सरसो गन्धर्वाः पतयो यूयम्। अप
धवतामर्त्या मर्त्यान्मा सचध्वम्।।१२।।

काव्यार्थ- इस पृथिवी अरू वेद वाणी के धारणकर्ता पुरूषों! प्रभू-शक्तियाँ तव हितार्थ सुख उत्पन्न करती हैं; नित उत्साही रहे अमर पुरूषों! करिये तत् रक्षण, क्रियाशील बन रहो, शक्तियाँ पूत अन्न करती हं; निरूत्साही पुरूषों का हित करने वाले पुरूषों से- लक्ष्मी साथ मिलो, इन ही से विपदायें टरती हैं।

सूक्त ३८

मंत्र- उद्भिन्दतीं संजयन्तीमप्सरां साधु देविनीम्।
ग्लहे कृतानि गृह्णनामप्सरां तामिह हुवे।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

शत्रुओं को जो उखाड़ नष्ट कर देती शीघ्र,
यथावत् विजय प्राप्त कर लिया करती;
अद्भुत रूप वाली, श्रेष्ठ व्यवहार वाली,
अपने अुनुग्रह में कर्म किया करती।
जो कि अन्तरिक्ष, भूमि, जल और प्राण, तथा-
प्रजाओं के बीच रमती है, ठिया करती;
ऐसी प्रभु-शक्ति का मैं करता हूँ आह्वान,
वह ही जनों को सुख-शान्ति दिया करती।।

मंत्र- विचिन्वतीमाकिरन्तीमप्सरां साधुदेविनीम्।
ग्लहे कृतानि गृह्णानामप्सरां तामिह हुवे।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जो अकेले सब ही पदार्थ विस्तारती है,
अरू उन सब को समेट लिया करती;
अद्भुत रूप वाली, श्रेष्ठ व्यवहार वाली,
अपने अनुग्रह में कर्म किया करती।
जो कि अन्तरिक्ष, भूमि, जल और प्राण, तथा-
प्रजाओं के बीच रमती है, ठिया करती;
ऐसी प्रभु-शक्ति का मैं करता हूँ आह्वान्,
वह ही जनों को सुख-शान्ति दिया करती।।

मंत्र- यायैःपरिनृत्यत्याददाना कृतं ग्लहात्। सा नः कृतानि सीषती
प्रहामाप्नोतु मायया। सा नः पयस्वत्यैतु मा नो जैषुरिदं धनम्।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

शक्ति जो कि कल्याणकारी अनुष्ठानों साथ,
श्रेष्ठतम कर्म स्वीकार किया करती,
वह हम हेतु अन्न वाली बन पास आये,
सब ही को पुष्कल अन्न दिया करती।
वह हम सब के सुकर्मों को नियमबद्ध-
करने को रहे शुभ-गति महा करती;
इस धन को हमारे शत्रु नहीं जीतें कभी,
यही शुभ चाह करता है हिया भरती।।

मंत्र- या अक्षेषु प्रमोदन्ते शुचं क्रोधं च बिभ्रती।
आनन्दिनीं प्रमोदिनीमप्सरां तामिह हुवे।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पावनता अरू क्रोध प्रभु-शक्ति रही है धार।
तथा सकल व्यवहारों में मोद रही है डार।।
हर्ष तथा आनन्द जिससे लभते विद्वान्।
मैं उस व्यापक शक्ति का करता हूँ आह्वान।।

मंत्र- सूर्यस्य रश्मीननु याः संचरन्ति मरीचार्वा या अनुसंचरन्ति।
यासामृषभो दूरतो वाजिनीवान्त्सद्यः सर्वाँल्लोकापर्येति रक्षन्।
स न एतु होममिमं जुषाणोऽन्तरिक्षेण सह वाजिनीवान्।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

रवि-किरणों में जो करें अनुकूल संचार।
सभी प्रकाशों साथ निज गति का करें प्रसार।।
उन हितकारी शक्तियों का दर्शक परमेश।
सबल क्रियाऐं धार कर करता है उन्मेष।

वह तुरन्त ही दूर से सब लोकों को रक्ष।
चहुँ ओर से घेर कर आया करे समक्ष।।
वह प्रभु सबमें प्रकट निज सामर्थ्य के साथ।
स्वीकारे मम समर्पण पकड़े मेरा हाथ।।

मंत्र- अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन्कर्की वत्सामिह रक्ष वाजिन्।
इमे ते स्तोका बहुजला एह्यर्वाङियं ते कर्कीह ते मनोऽस्तु।।६।।

काव्यार्थ-बलवती क्रियाओं वाले हे अत्यन्त बली परमेश्वर!
सबमें दृश्यमान अपने अनुपम सामर्थ्य साथ;
अपनी निवास-दा औ कर्तृत्व शक्ति की तू रक्षा कर,
यह सब दृश्य-अदृश्य जगत् है तप शक्ति की गाथ।
हम तेरी स्तुति करते हैं, नमन तुझे करते हैं,
प्रभू! हमारे सम्मुख आ तू, हम तव सम्मुख आयें;
तेरे सभी अनुग्रह बहु पदार्थ देने वाले हैं,
तेरी शक्ति का मनन करें हम तथा सदा सुख पायें।

मंत्र- अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन्कर्की वत्सामिह रक्ष वाजिन्।
अयं घासो अयं व्रज इह वत्सां नि वध्नीमः।
यथानाम व ईश्महे स्वाहा।।७।।

काव्यार्थ-बलवती क्रियाओं वाले हे अत्यन्त बली परमेश्वर!
सबमें दृश्यमान अपने अनुपम सामर्थ्य साथ;
अपनी निवास-दा औ कर्तृत्व शक्ति की तू रक्षा कर,
यह तन, घर अरू अन्न आदि है तव शक्ति की गाथ।
सबको निवास देने वाली जो तेरी शक्ति रही है,
अपनी हृदय-थली पर हम वह शक्ति बाँधते तेरी;
जैसा तेरा नाम, बनें ऐश्वर्यवान् वैसे ही,
ऐसा दो आशीष हमें प्रभु! रंच न करिये देरी।

सूक्त ३९

मंत्र- पृथिव्यामग्नये समनमन्त्स आर्ध्नोत्। यथा पृथिव्यामग्नये
समनमन्वेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु।।१।।

काव्यार्थ-जैसे पृथिवी पर पहले के ऋषि, अग्नि के सम्मुख,
विनत हुए अरू अग्नि द्वारा निज ऐश्वर्य बढ़ाया;
जैसे पृथिवी पर अग्नि के सम्मुख विनज हुए वह,
वैसे हो ऐश्वर्य विनत मम सम्मुख बढे अढ़ाया।

मंत्र- पृथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्वत्सः। सा मेऽग्निवना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम्।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा।।२।।

काव्यार्थ-मुझको दो आशीष, मुझे धरती रुपी यह गाय,
अग्नि रुपी बछड़े के द्वारा अन्न-दुग्ध देती हो;
मनोकामनाऐं शुभता की तथा प्रधान जीवन,
पराक्रम, पोषण, धन रुपी दुग्ध से सेती हो।

मंत्र- अन्तरिक्षे वायवे समनमन्त्स आर्ध्नोत्। यथान्तरिक्षे वायवे
समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु।।३।।

काव्यार्थ-जैसे पहले के ऋषि लोग अन्तरिक्ष में स्थित,
वायु के सम्मान हेतु तत् सम्मुख विनत हुए थे;
वायु से उपकार प्राप्त कर निज ऐश्वर्य बढ़ाया,
सुख-शान्ति से रहे सदा ही, दुःख से विरत हुए थे।

दोहा

ज्यों वायु सम्मुख रहे विनत पूर्व ऋषि लोग।
त्यों मम सम्मुख विनत हों, सब धन-वैभव, भोग।।

मंत्र- अन्तरिक्षं धेनुस्तस्या वायुर्वत्सः। सा मे वायुना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम्।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा।।४।।

काव्यार्थ- मुझको दो आशीष, मुझे यह अन्तरिक्ष रूपी गौ,
वायु रुपी बछड़े द्वारा अन्न-दुग्ध देती हों;
मनोकामनाऐं शुभता की तथा प्रधान जीवन,
पराक्रम, पोषण, धन रूपी दुग्ध से सेती हो।

मंत्र- दिव्याऽदित्याय समनमन्त्स आर्ध्नोत। यथा दिव्याऽदित्याय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु।।५।।

काव्यार्थ- जैसे पहले के ऋषि लोग, द्यु-लोक में स्थित,
सूर्य के सम्मान हेतु तत् सम्मुख विनत हुए थे;
उससे ले प्रकाश आदि अपना ऐश्वर्य बढ़ाया,
सुख-शान्ति से रहे सदा ही, दुःख से विरत हुए थे।

दोहा

ज्यों सूर्य सम्मुख रहे विनत पूर्व ऋषि लोग।
त्यों मम सम्मुख विनत हों सब धन-वैभव भोग।।

मंत्र- द्यौर्धेनुस्तस्या आदित्यो वत्सः। सा म आदित्येन वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम्। आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा।।६।।

काव्यार्थ- मुझको दो आशीष, मुझे यह द्यु-लोक रूपी गौ,
सूर्य रूप बछड़े के द्वारा अन्न-दुगध देती हो;
मनोकामनाऐं शुभता की तथा प्रधान जीवन,
पराक्रम, पोषण, धन रूपी दुग्ध से सेती हो।

मंत्र- दिक्षु चन्द्राय समनमन्त्स आर्ध्नोत्। यथा दिक्षु चन्द्राय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु।।७।।

काव्यार्थ- जैसे पहले के ऋषि लोग नाना दिशाओं में स्थित,
रजनीपति के मान हेतु तत् सम्मुख विनत हुए थे;
अरू उससे उपकार प्राप्त कर, निज ऐश्वर्य बढ़ाया,
सुख-शान्ति से रहे सदा ही, दुःख से विरत हुए थे।
रजनीपति सम्मुख रहे विनत पूर्व ऋषि लोग।
त्यों मम सम्मुख विनत हों सब धन-वैभव, भोग।।

मंत्र- दिशो धेनवस्तासां चन्द्रो वत्सः। ता मे चन्द्रेण वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम्। आयुः प्रथमं पोष रयिं स्वाहा।।८।।

काव्यार्थ-मुझको दो आशीष मुझे नाना दिशाओं रूपी गौ,
रजनीपति बछड़े के द्वारा अन्न-दुग्ध देती हो;
मनोकामनाएँ शुभता की तथा प्रधान जीवन,
पराक्रम, पोषण, धन रूपी दुग्ध से सेती हो।

मंत्र- अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिपा उ। नमस्कारेण नमसा ते जुहोमि मा देवानां मिथुया कर्म भागम्।।९।।

काव्यार्थ-सर्वव्याप्त प्रभु, जो इन्द्रियों को पावन सदा बनाता,
अरू विनाश से, तथा पतन से सबको सदा बचाता;
सूर्य आदि पिण्डों में जो करता प्रवेश हैं एवं-
विचरण करता हुआ, उन्हें वह अविरल रुप नचाता।
ऐसे गुण से युक्त तुझे मैं अति आदर के साथ,
नमस्कार करता हूँ एवं आत्म-समर्पण करता;
हे प्रभु! दिव्य जनों के धन अरू सेवनीय कर्मों को,
कोई दुष्टता से न विनाशे, तुझको तर्पण करता।

मंत्र- हृदा पूतं मनसा जातवेदो विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। सप्तास्यानि तव जातवेदस्तेभ्यो जुहोमि स जुषस्व हव्यम्।।१०।।

काव्यार्थ-हे प्रभु! ज्ञान-देव! तू ही सब ज्ञानों का ज्ञाता हैं,
तू अति ही धनवान, सकल ऐश्वर्यो का धाता है;
मम मस्तक की सात गोलकें तव आज्ञा पालक हों,
उनका चालक बने तू ही प्रभु, तुझको जग गाता है।

दोहा

उन के हित को समर्पित करता हूँ प्रभु-देव।
शोधित मन से, हृदय से अपनी सारी टेव।।

सूक्त ४०

मंत्र- ये पुरस्ताज्जुह्वति जातवेदः प्राच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मन्।
अग्निमृत्वा ते परांचोव्यथन्तां प्रत्यगेनान्प्रतिसरेण हन्मि।।१।।

काव्यार्थ-ज्ञानवान सर्वज्ञ प्रभु! वह जन जो सम्मुख होकर, द्वेष-भाव को धार, पूर्व से नाश हमारा करते; अथवा करके घात हम जनों पर वह पूर्व दिशा से, दास बनाते हैं हमको, आकाश हमारा हरते। तुझ अग्नि को प्राप्त हुए वह पराभूत हो जायें, व्यथा बीच वह पड़े, सदा ही कष्ट अपरिमित पायें; मैं इनका पीछा करके अरू इन पर हमला करके, करता हूँ द्रुत नाश, कि जिससे सज्जन जन हर्षायें।

मंत्र- ये दक्षिणतो जुह्वति जातवेदो दक्षिणाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्।
यममृत्वा ते परान्चोव्यथन्तां प्रत्यगेनान्प्रतिसरेण हन्मि।।२।।

काव्यार्थ-ज्ञानवान सर्वज्ञ प्रभु! वह जन जो दक्षिण दिशि से, घ्रणा-द्वेष से पूरित होकर नाश हमारा करते; अथवा करके घात हम जनों पर वह दक्षिण दिशि से, दास बनाते हैं हमको, आकाश हमारा हरते। धर्मराज! न्यायकारी! वह तुझको होकर प्राप्त पराभूत हो जायें, तुझसे कष्ट अपरिमित पायें; मैं इनका पीछा करके, अरू इन पर हमला करके, करता हूँ द्रुत नाश, कि जिससे सज्जन जन हर्षायें।

मंत्र- य उत्तरतो जह्वति जातवेद उदीच्या दिशोऽभिदासन्त्य-स्मान।
सोम मृत्वा ते परान्चोव्यथन्ता प्रत्यगेनान्प्रतिसरेण हन्मि।।४।।

काव्यार्थ- ज्ञानवान सर्वज्ञ प्रभो! जो दुष्ट व्यक्ति बायें से, द्वेष-भाव से पूरित होकर नाश हमारा करते; अथवा करके घात हम जनों पर उत्तर की दिशि से, दास बनाते हैं हमको, आकाश हमारा हरते।

हे ऐश्वर्यवान् प्रभुवर! वह होकर तुझको प्राप्त, पराभूत हो जायें, तुझसे कष्ट अपरिमित पायें; मैं इनका पीछा करके, अरु इन पर हमला करके, करता हूँ द्रुत नाश, कि जिससे सज्जन जन हर्षाये।

मंत्र- य उत्तरतोजह्वति जातवेदो ध्रुवाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्।
भूमिमृत्वाते परान्चोव्यथन्तां प्रतयेगेनान्प्रतिसरेण हन्मि।।५।।

काव्यार्थ-ज्ञानवान सर्वज्ञ प्रभो! जो नीचे की ओर से, घ्रणा-द्वेष से पूरित होकर नाश हमारा करते; अथवा करके घात हम जनों पर वह अधः दिशा से, दास बनाते हैं हमको, आकाश हमारा हरते। हे सबके आधार रहे, वह होकर तुझको प्राप्त, पराभूत हो जायें, तुझसे कष्ट अपरिमित पायें; मैं इनका पीछा करके, अरू इन पर हमला करके; करता हूँ द्रुत नाश, कि जिससे सज्जन जन हर्षाये।

मंत्र- रिक्षाज्जुह्वति जातवेदो व्यध्वाया दिशोऽभिदासत्यस्मान्।
वायुमृत्वा ते परान्चोव्यथन्तां प्रत्यगेनान्प्रतिसरेण हन्मि।।६।।

काव्यार्थ-ज्ञानवान सर्वज्ञ प्रभो! जो अन्तरिक्षा की दिशि से, द्वेष-भाव से पूरित होकर नाश हमारा करते; अथवा विविध मार्गों को रखने वाली दिशि द्वारा, दास बनाते हैं हमको, आकाश हमारा हरते। बड़े बड़े बलवानों में अति महनीय बलवान्, वह तुझे प्राप्त हों, तथा सदा ही कष्ट अपरिमित पाये, मैं इनका पीछा करके, अरू इन पर हमला करके, करता हूँ द्रुत नाश, कि जिससे सज्जन जन हर्षायें।

मंत्र- य उपरिष्टाज्जुह्वति जातवेद ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्।
सूर्यमृत्वा ते परान्चोव्यथन्तां प्रत्यगेनान्प्रतिसरेण हन्मि।।७।।

काव्यार्थ-ज्ञानवान सर्वज्ञ प्रभो! ऊँचे थल से जो लोग,
द्वेष-भाव से पूरित होकर नाश हमारा करते;
अथवा करके घात हम जनों पर ऊपर की दिशि से,
दास बनाते हैं हमको, आकाश हमारा हरते।
सबके प्रेरक प्रभुवर वह जन होकर तुझको प्राप्त,
पराभूत हो जायें, तुझसे कष्ट अपरिमित पायें;
मैं इनका पीछा करके अरू इन पर हमला करके,
करता हूँ द्रुत नाश, कि जिससे सज्जन जन हर्षायें।

**मंत्र- ये दिशामन्तर्देशेभ्यो जुह्वति जातवेदः सर्वाभ्यो दिग्भ्योऽभिदासन्त्यस्मान्।
ब्रह्मर्त्वा ते परान्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान्प्रतिसरेण हन्मि।।८।।**

काव्यार्थ-ज्ञानवान परमेश! दिशाओं मध्य रहे देशों से,
द्वेष-भाव से पूरित हो जो नाश हमारा करते;
अथवा करके घात हम जनों ऊपर सर्व-दिशा से,
दास बनाते हैं हमको, आकाश हमारा हरते।
तुझ ब्रह्म को प्राप्त हुए वह पराभूत हो जायें,
व्यथा बीच में पड़े सदा ही, कष्ट अपरिमित पायें;
मैं इनका पीछा करके, अरू इन पर हमला करके,
करता हूँ द्रुत नाश, कि जिससे सज्जन जन हर्षायें।

पंचम काण्ड

सूक्त १

**मंत्र- ऋधङ्मन्त्रो योनिं य आबभूवामृतासुर्वधमानः सुजन्मा।
अदब्धासुर्भ्राजमानोऽहेव त्रितो दाधार त्रीणि!!१।।**

काव्यार्थ-

कवित्त

प्रभु! जो कि सत्य का करता मनन तथा-
निज में अमर प्राण-शक्ति को लिये हुए;
मूल उत्पत्ति स्थान को जो प्राप्त हुआ,
जो सुजन्मा वर्धमान होकर जिये हुए।
जो अचूक बुद्धिमान, दिवस सा ज्योतिमान,
तिहु लोक, काल में प्रसारण किये हुए;
तीनों लोक को भी वही धारण किये हुए।।
निज शक्ति द्वारा सबको ही धारता है वह

**मंत्र- आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरुणि।
धास्तुर्योनिं प्रथम आ विवेशा यो वाचमनुदितां चिकेत।।२।।**

काव्यार्थ-

कवित्त

जो अतीव प्रख्यात परमेश सर्वकाल,
धारणीय धर्म सब निज में लिये हुए;
अरू जो उसी के द्वारा, इस सब जगती के-
भाँति-भाँति के अनेक रुपों को दिय हुए।
जो प्रथम धारने की इच्छा का हुआ है, तथा-
अंतर्यामी निज को है जीव में किये हुए;
प्रत्येक मूल उत्पत्ति स्थान बीच,
निज को प्रविष्ट वह सदैव ही किये हुए।।

**मंत्र- यस्ते शोकाय तन्वं रिरेच क्षरद्धिरण्यं शुचयोऽनु स्वाः।
अत्रा दधेते अमृतानि नामास्मे वस्त्राणि विश एरयन्ताम्।।३।।**

काव्यार्थ- **कवित्त**

चहुँ ओर अंतःप्रकाश के प्रसारने को,
जिसने मनुष्य को दिया है अनुकूल तन;
वह जिससे चतुर्दिशाओं में प्रसारता है,
शुद्ध स्वर्ण के समान अपने प्रकाश-कन।
ज्योतिमान् परमेश्वर के स्वरुप को भी
जान पाता वह इसी तन से समर्थ बन;
सब ही प्रजाऐं ऐसे शुभ ज्योतिधारी हेतु,
आच्छाद-दाता निज वस्त्र करें अर्पन।।

मंत्र- प्र यदेते प्रतरं व्यर्थ गुः सदः सद आतिष्ठन्तो अजुर्यम्।
कविः शुषस्य मातरा रिहाणे जाम्यै धुर्यं पतिमेरयेथाम्।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जो कि सर्वदा ही जरा-हीन, तथा पाने योग्य-
वस्तुओं में अत्यन्त श्रेष्ठ मोक्ष पद है;
इन शुद्ध बन्धुओं ने जिन कारणों से लभा-
उसको व प्राप्त किया प्रभु जो अपद है।
ज्ञानी, बली जन की माताओं प्रभु-भक्ति रत,
भगिनी के पति का ज्यों आदर वृहद् है;
तुम हितकारी जन हेतु करवाओ प्राप्त-
परमात्मा को, वेद जिसका सबद है।।

मंत्र- तदू षु ते महत्पृथुज्मन्नमः कविः काव्येना कृणोमि।
यत्सम्यन्चावभियन्तावभि क्षामत्रा मही रोधचक्रे वावृधेते।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

एक उसी कारण से, विस्तृत गति वाले-
प्रभुदेव! आपके समक्ष सब नत हैं;
बुद्धिमता के साथ, अत्यन्त शुभ रीति,
मुझ कवि के नमन आपको प्रदत हैं।
आपस में मिले हुए, सब ओर गति वाले,
जो विशाल प्राणियों को रोकने में रत हैं;
ऐसे तव सूर्य पृथिवी से उच्च निम्नों के,
हम पर उपकार अति ही महत् हैं।।

मंत्र- सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामिदेकामभ्यंहुरो गात्।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडे पथां विसर्गे धरूणेषु तस्थौ।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

मर्यादा सात, ऋषि लोगों ने सुनिश्चित कीं,
जिनका उलंघन किसी को नहीं करना;
इनमें से एक पर भी जो चलता है नर,
होता वह पापी, रहता है वह नर ना।
नर ही सुमार्ग का आधार-स्तंभ रहा,
जब वह कुमार्ग पर रखता न चरना;
तब वह समीप रहे प्रभु-धाम मध्य, ध्रुव-
थल बीच होता थिर, रहता है डर ना।।

मंत्र- उतामृतासुर्व्रत एमि कृण्वन्नसुरात्मा तन्वश्तत्सुमदगुः।
उत वा शक्रो रत्नं दधात्यूर्जया वा यत्सचते हविर्दाः।।७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

मैं अमर प्राण-शक्ति धारी अरू शुभ कर्मी,
मेरा नित शुभ-कर्म ओर ही प्रयाण है;
परम-पिता को भक्ति करता प्रदान सदा,
होता आत्मा व बुद्धि तन गुणवान है।
ऊर्जा सहित दृढ़ता से प्रभु सेवने से,
प्रभु शक्ति-मान रत्न करता प्रदान है;
उत्तम मनन शील मन को बनाता, तथा-
जीवन सदैव मेरा विद्या प्रधान है।।

मंत्र- उत पुत्रः पितरं क्षत्रमीडे ज्येष्ठं मर्यादमह्यन्त्स्वस्तये।
दर्शन्नु ता वरूण यास्ते विष्ठा आवर्व्रततः कृणवो वपूंषि।।८।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

तेरा पुत्र हूँ मैं पिता परमेश, प्रार्थना है-
रक्षियोगा मुझको सदैव ही विपद पर;
ज्येष्ठ, मर्यादा वाले प्रभु! कल्याण हेतु,
ऋषि तुझको ही हैं पुकारते विनीत स्वर।

वरणीय प्रभुवर! आपनी व्यवस्थाऐं-
दर्शाता हुआ सदा उनको विषद कर;
अरू यथावत् घूमते अनेक भाँति से जो,
जगत् के ऐसे नाना रूप तू प्रकट कर।।

मंत्र- अर्धमर्धेन पयसा पृणक्ष्यर्धेन शुष्म वर्धसे अमुर।
अविं वृधाम शग्मियं सखायं वरूणं पुत्रमदित्या इषिरम्।
कविशस्तान्यस्मै वषूंष्यवोचाम रोदसी सत्यवाचा।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे अतीव ज्ञानवान, बलवान भगवान!
तेरा यह अतीव ही विशाल संसार है;
इसको तू निज व्याप्तकता से युक्त कर-
और बढ़ाता तू, तेरी महिमा अपार है।
सबका तू मित्र, सर्वश्रेष्ठ, सुखसागर तू,
रक्षक, पवित्रता का करता संचार है;
तू ही हमको है बड़ा, तू अखण्ड प्रकृति को-
देखता, चलाता, कर देता संहार है।

सूक्त २

मंत्र- तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्तेषनृम्णः।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः।।१।।

काव्यार्थ- सब लोकों में एक वही अति श्रेष्ठ प्रभू परमेश्वर है,
मनुज धारता एक उसी की शुभ उपासना के स्वर है।
तथा शक्ति अरू तेजपूर्ण हो शत्रु-नाश अविलम्ब करे,
निर्भय करता हुआ सभी को सदा प्रेरणा थम्ब बने।
प्रभु अनुगामी बन, संरक्षक सभी मोद रस पिया करें,
स्तुति अरू उपासना उसकी सभी लोग नित किया करें।

मंत्र वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषुः।।२।।

काव्यार्थ-बल से बढ़ता महाबली रिपु क्लीवों में भय भरता है,
वीर वृत्ति का नर शत्रु से रंच मात्र नहीं डरता है।
यह जड़-जंगम सकल जगत् जो वृहत् प्रसारण लिये हुए,
सर्वशक्तिमय परमेश्वर इस सबको धारण किये हुए।
प्रभु-पोषित वर प्रभु महिमा लख रंच नहीं त्रुटि करता है,
विघ्न-नाश आनन्दित होता प्रभु की स्तुति करता है।

मंत्र- त्वे क्रतुमपि पृन्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः।
स्वादो स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः।।३।।

काव्यार्थ-हे परमेश्वर! सब ज्ञानी जन तेरी महिमा जान रहे,
निज बुद्धि से वह तुझ में ही बहु प्रकार कर ध्यान रहे।
कभी पुरूष कभी नारी रुप जो यह सब रक्षक लोग रहे,
यह कर्मानुसार स्थान नाम जाति को भोग रहे।
स्वादु से भी महत् स्वादु जो मोक्षानन्द कहाता है,
तव स्तुति उपासना से जो मधुर मोक्ष-सुख साज रहा,
मधुर जगत् के ज्ञान साथ उसको देना तव काज रहा।

मंत्र- यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः।
ओजीयः शुष्मिन्तिस्थरमा तनुष्व मा त्वा दभन्दुरेवासःकशोकाः।।४।।

काव्यार्थ-जो ज्ञानी जन युद्ध जीतते है, अरू वन्दित होते हैं,
अनुगामी बन तेरे सदा मन में आनन्दित होते हैं।
सर्वशक्तिमय प्रभु! तू उनको कृपा-वारि से नहला दे,
तथा अधिक बलमय स्थिर सुख सर्व दिशा से फैला दे।
जो पर-सुख को देख हृदय में दुःख की मेघ-घटा लायें,
ऐसे दुष्ट, दुराचरी जन उनको नहीं सता पायें।

मंत्र- त्वया वयं शाशदग्हे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि।।५।।

काव्यार्थ-हे प्रभुवर! हम युद्ध बहुत से लखते हुए फिराते हैं,
अरू युद्धों में तेरे साथ रह अरि-दल मार गिराते हैं।
तव वचनों से मैं अपने सब शस्त्र चलाया करता हूँ,
ब्रह्म-ज्ञान से तेरे, तीक्ष्ण बन पाप जलाया करता हूँ।

मंत्र- नितद्दधिषेवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे। आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि।।६।।

काव्यार्थ-छोटे बड़े प्राणी जगरूप एक ही घर के वासी जो,
हे प्रभु! तू समान देता है उन हित पोषण राशि को।
प्रभु! वह भूखे घर अभाव ही जिनको भक्षा करता है,
अन्न करा उपलब्ध वहाँ पर तू ही रक्षा करता है।
अहे मनुष्यों! सर्वव्याप्त परमेश्वर वह माता सम है,
उसे हृदय में थाप, सिद्ध सब काम करो, खाता तम है।

**मंत्र- स्तुष्व वर्ष्मन्पुरूवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्तमापत्यानाम्।
आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिष्याः।।७।।**

काव्यार्थ-हे ऐश्वर्यवान्! स्तुति कर तू ऐसे परमेश्वर की,
सर्वश्रेष्ठ, जो थिर रहता है चलता है गति सत्वर भी।
वह आप्तों में आप्त रहा है तथा महा तेजस्वी है।
अरू धारक असंख्य मार्गो का प्रतिक्षप ही रहती गति है।
महाबली, अपनी शक्ति से सर्वदिशि वह देख रहा।
पृथिवी का प्रतिमान बना वह व्यापकता की मेख रहा।

**मंत्र- इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद्विश्वमर्णवत्तपस्वान्।।८।।**

काव्यार्थ-जो नर अति तेजस्वी, सबका अगुआ तथा यशस्वी है,
तथा स्वर्ग का सेवन करने वाला बना मनस्वी है।
इन स्तोत्रों द्वारा यह निज शक्ति-वर्धन किया करे,
तथा प्रभु-स्तुति, प्रार्थना करता प्रतिक्षण जिया करे।
वह स्वाधीन राजा परमेश्वर सर्व सुखों का दाता है,
बड़े-बड़े राजाओं का राजाधिराज कहलाता है।
वेगवान्, सामर्थ्यवान वह सारे जग को ढाप रहा,
तथा सर्वव्यापी होकर वह जग के भीतर व्याप रहा।

**मंत्र- एवा महान्बृहद्दिवो अथर्ववोचत्स्वां तन्वꣳमिन्द्रमेव।
स्वसारौ मातरिश्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च।।९।।**

काव्यार्थ-निश्चल, तेजस्वी, अति ज्ञानी रहता है जो प्रभू छही,
उसने प्रभु-सेवा में अपनी स्तुतियाँ इस भाँति कहीं।
भाँति-भाँति गति करने वाली दिवा रात्रि दो बहनें जो,
व्यापक अन्तरिक्ष में रहतीं प्रभु की महिमा कहने को।
यह निर्दोष सूर्य अरू पृथिवी जो अविराम विचरते हैं,
पूर्ण शक्ति से उसे मुदित कर सदा प्रशंसा करते हैं।

सूक्त ३

**मंत्र- ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम।।१।।**

काव्यार्थ-हे अग्नि! सभी युद्धों में मम तेज प्रकाशे,
तुझको प्रकाशते हुए बलवान तन बने;
चारों दिशाओं, उप दिशाओं के सभी वासी,
सम्मुख मेरे सदैव रखें नम्रता घने;
अध्यक्ष! तेरे साथ रह सदैव ही जीतें,
अपने बने शत्रु के प्रति युद्ध जब ठने।

**मंत्र- अग्ने मन्युं प्रतिनुदन्परेषां त्वं नो गोपाः परि पाहि विश्वतः।
अपान्वो यन्तु निवता दुरस्यवोऽमैषांचित्तं प्रबुधां वि नेशत्।।२।।**

काव्यार्थ-हे अग्नि! शत्रुओं के क्रोध को हटा, तथा-
सब भाँति हमें तू बचा, रक्षक बना हुआ;
दुःख-दा, अनिष्टकारी, दूर रखने योग्य जो,
ऐसों को डसता चल सदा, तक्षक बना हुआ;
यह दुष्ट व्यक्ति हों यदि प्रबुद्ध चित्त तो,
तत् दुष्ट-बुद्धि नष्ट कर भक्षक बना हुआ।

मंत्र- मम देवा विहवे सन्तु सर्व इन्द्रवन्तो मरुतो विष्णुरग्निः।
ममान्तरिक्षमुरु लोकमस्तु मह्यं वातः पवतां कामयास्मै।।३।।

काव्यार्थ- युद्धों में सभी देव मेरे पक्ष में रहें,
होवें मरूत व अग्नि, सूर्य मेरे सहायक;
विस्तीर्ण लोकों वाला, यह आकाश हो मेरा;
इस कामना की पूर्ति में पवन बने नायक;
मम हित में शुद्ध होती हुई चलती रहे वह,
मेरा विकास करती बने मोद-प्रदायक।

मंत्र- मह्यं यजन्तां मम यानीष्टाकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वे देवा अभि रक्षन्तु मेह।।४।।

काव्यार्थ- मुझको मेरा अभीष्ट प्राप्त हो, तथा मेरे-
मन ने लिया संकल्प जो, वह पूर्णता लभे;
किंचित कभी कोई भी पाप कर्म ना करूँ,
मेरी सुरक्षा हेतु लगे देव हों सभे।

मंत्र- मयि देवा द्रविणमा जयन्तां मय्याशीरस्तु मयि देवहूतिः।
दैवा होतारः सनिषन्न एतदरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः।।५।।

काव्यार्थ- जितने भी देव हैं सभी धन दें मेरे लिये,
आशीर्वाद उन सभी का मुझको प्राप्त हो;
हो शक्ति मेरे में, सदा देवों को पुकारूँ,
यह दान मुझको देवें दिव्य गुणी आप्त हो;
हम सब शरीर से हों हृष्ट-पुष्ट, निरोगी,
सब होवें श्रेष्ठ वीर, नहीं कोई शाप्त हो।

मंत्र- दैवीः षडुर्वीसरु नः कृणोत विश्वे देवास इह मादयध्वम्।
मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या।।६।।

काव्यार्थ- हे दिव्य गुणी छः बड़ी दिशाओं तुम सभी;
हम हेतु एक फैला सा स्थान बनाओ;
सब विज्ञ लोग हमको यहाँ मोद प्रदानें,
निस्तेजता, अपकीर्ति, पाप-बुद्धि हनाओ।

मंत्र- तिस्रो देवीर्महि नः शर्म यच्छत प्रजायै नस्तन्वेऽयच्च पुष्टम्।
मा ह्यस्महि प्रजया मा तनूभिर्मा रधाम द्विषते सोम राजन्।।७।।

काव्यार्थ- त्रि-देवियों! महनीय सुख प्रदान तुम करो,
वह सब पदार्थ दो हमें जो पुष्टि-दा होवें;
वह तन हितार्थ हों तथा प्रजा हितार्थ भी,
कृश तन तथा संतान-हीन हो नहीं रोवें;
परमेश! हे राजन् बड़े ऐश्वर्य वाले
हम शत्रु के द्वारा कभी दुःख को नहीं ढोवें।

नोट- त्रि देवियाँ- स्तुति करने वाली इड़ा, प्रशस्त-विज्ञान वाली सरस्वती, धारण-पोषण करने बालभारती।

मंत्र- उरूव्यचा नो महिषः शर्म यच्छत्वस्मिन्हवे पुरूहूतः पुरुक्षु।
स नः प्रजायै हर्यश्व मृडेन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः।।८।।

काव्यार्थ- शक्ति-विशाल ख्यात प्रभो! मम पुकार पर-
बहु अन्न युक्त घर प्रदान कर सुखी करो;
व्यापक रहे आकर्षणों विकर्षणों से तुम,
प्रजा को दो आनन्द, नहीं बेरुख़ी करो;
हम दुःख नहीं पावें, हमें त्यागो कभी नहीं,
शत्रु का दर्प नष्ट कर अधो मुखी करो।

मंत्र- धाता विधाता भुवनस्य यस्पतिर्देवः सविताभिमातिषाहः।
आदित्या रूद्रा अश्विनोभा देवाः पान्तु यजमानं निर्ऋथात्।।९।।

काव्यार्थ- हे सृष्टि रचयिता तथा धाता भुवनपति;
अभिमानी शत्रुओं को सदा जीतने वाले;
हे ज्योतिमान् सबको चलाते रहे प्रभो!
यजमान को बचायें, पाप मीचने वाले;
यजमान को विनाश से बचायें देव भी,
पृथिवी व सूर्य, रूद्र, शत्रु मीड़ने वाले।

मंत्र- ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामह
एवान्! आदित्या रूद्रा उपरिस्पृशो न उगं चेत्तरमधिराजमक्रत।।१०।।

काव्यार्थ- अति उच्च पद को धारते प्रकाशमान औ-
दुःख का विनाश करते हुए आप्त जनों ने;
राजाधिराज माना हमारा है प्रभु को,
सर्वज्ञ, तेजवान्, जो रहता है मनों में;
अब शत्रु हमारे जो बने, दूर सब रहें,
हम इनको हटातें हैं अग्नि वायु फनों से।

मंत्र- अर्वान्चमिन्द्रममुतो हवामहे यो गोजिद्धनजिदश्वजिद्यः
इमं नो यज्ञं बिहवे शृणोत्वस्माकमभूर्हर्यश्व मेदी।।११।।

काव्यार्थ- पृथिवी व अश्व, धन को जीतता है जो प्रभु,
उत्कृष्ट सभी वस्तुऐं देता है जगत् की;
अत्यन्त निकट उसको हम अंतः से टेरते,
करते हैं प्रार्थना सदा, सुन बात विनत की;
आकर्षणों-विकर्षणों की शक्ति से व्यापक-
प्रभु! द्वन्द्व में कीजेगा मदद आप भगत की।

सूक्त ४

मंत्र- यो गिरिष्वजायथा वीरूधां बलवत्तमः।
कुष्ठेहि तक्मनाशन तक्मानं नाशयन्नितः।।१।।

काव्यार्थ-विविध प्रजानन बीच व्यक्ति जो स्तुति योग्य रहे हैं,
उनमें अति प्रभावपूर्ण बलवान रहे हैं राजन्!
हे जन-जन के दुःख विनाशक तथा परीक्षण गुण के,
हरता हुआ दुःखों को आ तू, दिखलाता अपनापन।

मंत्र- सपर्णसुवने गिरौ जातं हिमवतस्परि।
धनैरभि श्रुत्वा यन्ति विदुर्हि तक्मनाशनम्।।२।।

काव्यार्थ-उत्तम कुल के उद्योगी जन से उत्पन्न पुरूष को,
वैभवशाली, शुभ पालन-सामर्थ्य प्रणेता सुनकर;
जन-दुःख-हर्ता जान, विज्ञ उसके सम्मुख जाते हैं,
अरू रक्षा हित उसे बनाते अपना राजा चुन कर।

मंत्र- अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि।
तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कृष्ठमवन्वत।।३।।

काव्यार्थ-जहाँ वीर स्थिर रहते, विद्वान् रमण करते हैं,
ऐसा देश तीसरी गति पुरूषार्थ से बनता है;
गुण के रहे परीक्षक राजा को अमृत सम निश्चित-
करते वहाँ आप्त जन, जिससे सुख पाती जनता है।
नोट-तीन गतियाँ- निकृष्ट, मध्यम, श्रेष्ठ

मंत्र- हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि।
तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्टमवन्वत।।४।।

काव्यार्थ-तेजपूर्ण, तेजोमय बन्धन बँधी नाव विद्या की,
जो प्रकाश के लोक बीच अति ही गतिमान रही थी;
भूप गुण-परीक्षक, बुद्धि में अमृत पुष्प समान,
विज्ञों ने कर प्राप्त वहाँ से सुख की छाँह लही थी।

मंत्र- हिरण्ययाः पन्थान आसन्नरित्राणि हिरण्यया।
नावो हिरण्ययीरासन्याभिः कुष्ठं निरावहन्।।५।।

काव्यार्थ-व्यक्ति गुणपरीक्षक को, तेजोमय आप्तों ने पहचाना,
निश्चय करके उसे राजपद देना हृदय चिचारा;
मार्ग तेजमय, डाँड तेजमय,, तेजोमय नावें थीं,
उनसे सादर उसे लाये अरू पाया मोद अपारा।

मंत्र- इमं मे कुष्ठ पुरूषं तमा वह तं निष्कुरू।
तमु मे अगदं कृधि।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**
गुण के रहे परीक्षक रंच कृपा कर देय।
अरू मेरे इस रोग से पीड़ित नर कोलेय।।
उसको रीति विशेष से कर दे दुःख से दूर।
मम हित उसका रोग हर ले कौशल भरपूर।।

मंत्र- देवभ्यो अधि जातोऽसि सोमस्यासि सरवा हितः।
स प्राणाय व्यानाय चक्षुसे मे अस्मै मृड।।७।।

काव्यार्थ-हे राजन् तू देवों से उत्पन्न हुआ एक नर है,
तू ऐश्वर्यवान् नर का हितकारी एक सखा है;
इस कारण तू प्राण, व्यान अरू नेत्र आदि के हेतु,
मेरे इस पुरूष को सुख दे, तुझ में सुख-सिंधु रखा है।

मंत्र- उदङ्जातो हिमवतः स प्राच्यां नीयसे जनम्।
तत्र कुष्ठस्य नामान्युत्तमानि वि भेजिरे।।८।।

काव्यार्थ-हे राजन्! तु सर्वगुणी है उद्योगी नर द्वारा,
तथा उच्च पद पा प्रकृष्ट गति बीच तुझे नर लाये;
वहाँ गुण-परीक्षक राजा, तव उत्तम यश को,
विविध भाँति से सब ही जन नित सेवन कर हर्षाये।

मंत्र- उत्तमो नाम कुष्ठास्युत्तमो नाम ते पिता।
यक्ष्मं च सर्वं नाशय तक्मानं चारसं कृधि।।९।।

काव्यार्थ-अहे गुण-परीक्षक राजा! तू है अवश्य अति श्रेष्ठ,
तेरा पिता अति ख्यात रहा है तथा अति उत्तम है;
तू अवश्यमेव सब राज-रोग नष्ट कर राजा,
दुःख-दायी सब रोग बना असमर्थ, तू ही सक्षम है।

मंत्र- शीर्षामयमुपहत्यामक्ष्योस्तन्वोऽरपः।
कुष्ठस्तत्सर्वं निष्करद्दैवं समह वृष्ण्यम्।।१०।।

काव्यार्थ-सिर के रोग, उपद्रव नेत्र के, अरू तन के दोष,
अहे गुण परीक्षक राजा! इन सबको दूर हटा दे;
तेरा जीव-हितैषी बल है धारक दिव्य गुणों का,
तू दोष बाहर निकाल कर, इनको धूल चटा दे।

सूक्त ५

मंत्र- रात्री माता नभः पितार्यमा ते पितामहः।
सिलाची नाम वा असि सा देवानामसि स्वसा।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

रात्रि समान विश्राम को दिलाने वाली,
अत्यन्त क्रियाशील निर्माण शक्ति है;
पालने की शक्ति अन्तरिक्ष समव्यापक है,
सब में ही मेल करने की अनुरक्ति है।
अरू पालकों का भी जो पालन करती है शक्ति,
वह सूर्य सम विघ्न-हर विज्ञप्ति है;
अतएव तू समस्त दिव्य गुणों की श्रेष्ठ-
शुभ रीति प्रकाश करने की शक्ति है।

मंत्र- यस्त्वा पिवति जीवति त्रायसे पुरूषं त्वम्।
भर्त्री हि शाश्वतामसि जनानां च न्यन्वनी।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मेल थापती है सभी में प्रभुवर की शक्ति।
सेवन-कर्ता नर बने दीर्घ आयु का व्यक्ति।।
रक्षक है तू पुरूष की हे प्रभुवर की शक्ति।
सभी विज्ञ जन नित करें तेरी स्तुति भक्ति।।
निश्चय ही तू प्रभु की नित व्यापक अभिव्यक्ति।
तथा सकल जग की तू ही पालन हारी अभिव्यक्ति।।

मंत्र- वृक्षंवृक्षमा रोहसि वृषण्यन्तीव कन्यला।
जयन्ती प्रत्यातिष्ठन्ती स्परणी नाम वा असि।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

उषा तेजमय सूर्य से बँधी प्रेम के पाश।
उससे प्रति प्रातः किया करती प्राप्त प्रकाश।।
यथा भोर की उषा है रमी सूर्य के बीच।
प्रभु-शक्ति त्यों ही रमी वृक्ष वृक्ष के बीच।।
प्रत्यक्ष थिर, प्रीति कर विजय प्रदायक शक्ति।
अनुरक्ति के साथ हम करें तेरी ही भक्ति।।

मंत्र- यद्दण्डेन यदिष्वा यद्वास्ऱ्हरसा कृतम्।
तस्य त्वमसि निष्कृतिः सेमं निष्कृधि पूरूषम्।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हुआ घाव जो रगड़ वा तीर, दण्ड के वार।
प्रभु-शक्ति उस घाव का करती तू उपचार।।
पीड़ाऐं सबकी मिटा करती उनको ठीक।
इस पीड़ित पर भी ज़रा कृपा-कोर कर नीक।।

मंत्र- भद्रात्प्ल क्षान्निस्तिष्ठस्यवत्थात्खदिराद्ववात्।
भद्रान्न्यग्रोधात्पर्णात्सा न एह्यरून्धति।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

अति परिपूर्ण, वीर जन में निवास करे,
अरू शत्रुओं को सदा अधोमुखी करता;
कल्याण करता, जो सेवता उसे है, तथा-
जिससे कि पालक का जीवन सुधरता।
ऐसे शुभ आनन्द से थिरता को प्राप्त हुई-
प्रभु-शक्ति, तुझसे सदैव विघ्न डरता;
तू हमारे अंतः के भीतर प्रवेश कर,
प्राप्त करता जो तुझे, भव सिंधु तरता।।

मंत्र- हिरण्यवर्णे सुभगे सूर्यवर्णे वपुष्टमे।
रूतं गच्छासि निष्कृते निष्कृतिर्नाम वा असि।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे सुपर्ण रूप वाली, अति ऐश्वर्यवाली,
सूर्य के समान तेरा तेजपूर्ण रंग है;
कष्ट में पड़े हुओं का, पतित जनों का सदा,
उद्धार करने में भरती उमंग है।
ऐसी प्रभु-शक्ति! तू हमारे क्लेश-नाश हेतु,
शीघ्र ही पहुँच, अब हाल हुआ तंग है;
सत्य ही तेरा है शुभ उद्धार शक्तिनाम,
शरणागतों को द्रुत कर देती चंग है।।

मंत्र- हिरण्यवर्णे सुभगे शुष्मे लोमशवक्षणे।
अपामसि स्वसा लाक्षे वातो ह्यात्मा बभूव ते।।७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

हे सुवर्ण रुप वाली, अति ऐश्वर्यशाली,
तेरे सम जग में, न कोई बलवान है;
भेदनशील व्यक्ति पर महा महा क्रोधकारी,
देती उसे दण्ड, नहीं पाता वह त्राण है।
अति ही कृपालु, दर्शनीय प्रभु-शक्ति तू है,
जन में प्रकाश भर करती विद्वान है;
जन-जन द्वारा स्तुति के योग्य, निश्चय ही-
तव आत्मा अतीव व्यापक, महान् है।।

मंत्र सिलाची नाम कानीनोऽजबभ्रु पिता तव।
अश्वो यमस्य यः श्यावस्तस्य ह्यास्नास्युक्षिता।।८।।

काव्यार्थ-तू प्रसिद्ध शक्ति है ऐसी, सबमें ही जो मेल करें,
कमनीय शक्ति से आया तव पालक गुण, खेल करे,
वह गुण जीवात्मा का पोषक, उस पर सदा नकेल धरे,
निश्चय ही तू सर्व नियामक प्रभु से सदा सहेल करे,
तत् व्यापक गतिशील गुणों से रहते हैं तब बोल हरे।

मंत्र- अश्वस्यास्न संपतिता सा वृक्षाँ अमि सिष्यदे।
सरा पतत्रिणी भूत्वा सा न एह्यरून्धति।।९।।

काव्यार्थ- **दोहा**

प्रभु के व्यापक गुणों का फैला हुआ प्रकाश।
तत् सिंचित शक्ति सदा देती है सुख राश।।
अवरोधों से हीन उस शक्ति ने शुभ रीति।
सींचे सभी पदार्थ हैं धारे मन में प्रीति।।
वह कल्याणी शक्ति जो होती नहीं समाप्त।
नीचे गिरते झरने सी हमें सदा हो प्राप्त।।

सूक्त ६

मंत्र- ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरूचो वेन आवः।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि हः।।१।।

काव्यार्थ- **गीत**

आत्मा में बसे ब्रह्म को छोड़कर,
और को भूल कर भी उपासों नहीं।।
सारी दुनिया उसी ब्रह्म ने है रची,
कुछ न उससे छिपा, जानता है सभी;
वह है सबसे बड़ा और विस्तार का,
सबका विस्तार करता अकेला वही।
उसका अत्यन्त ही ज्योतिमय रूप है,
वह है कामनीय, उसको भुला दो नहीं।।
उसने नभ बीच का ज्योतिमय अर्यमा;
लोकान्तरों-ज्ञात-अज्ञात लोक और
यह धरा, अरू नखत, मोद-दा चन्द्रमा;
मैं मधुरस को नियत कक्षा में रख, सभी को भ्रमा।
इनको आच्छादता अपनी निज व्याप्ति से,
तत्व की बात जग को बता दो सभी।।
सृष्टि के आदि में अपनी मर्यादा से,
वह विरत हो अकेला रमण कर रहा;
व्यक्त, अव्यक्त के मूल कारण रहे,
शून्य आकाश आदि ग्रहण कर रहा।
सर्वदा सब की रूचि के विषय ब्रह्म हित,
ज्ञान अरू भक्ति की तुम विकासो छँही।।

मंत्र- अनाप्ता यें वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे।
वीरान्नो अत्र मा दभन्तद्व एतत्पुरो दधे।।२।।

काव्यार्थ- **गीत**

हमें तुमसे कहना है यही।
राह दिखाते हैं तुमको वह, जो हमने है लही।
पूर्व काल में प्रथम श्रेष्ठ जो ज्ञानी लोग रहे थे,
उनके थे प्रशस्त शुभ कर्म, प्रशंसा योग्य रहे थे;
उनको कर स्मरण, करो जो कहे आत्मा सही।
दुष्कर्मो को छोड़, तुम्हें सत्कर्म सदा करना है,
वीर जनों की रक्षा का संकल्प हृदय धरना है;
उनका कोई न मारे, वह सब रहें तुम्हारी छँही।।

मंत्र- सहस्रधार एव ते समस्वरन्दिवो नाके मधुजिह्व असश्चतः।
तस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदे पदे पाशिनः सन्ति सेतवे।।३।।

काव्यार्थ- सहस्र भाँति का प्रकाश जो कि धारता,
जो दुःखों से रहित, अनूप, तेजपूर्ण है;
जन-जन का जो रक्षक है, सर्वशक्तिमान है,
दुष्टों का दर्प करता जो पलभर में चूर्ण है।
निश्चय रहे स्वभाव के मृदुभाषी विज्ञों ने,
उस ईश के विषय में एक स्वर यही कहा;
वह दुष्टों को पकड़ता, बन्धनों में डालता,
वह रूद्र बना, कष्ट उन्हें देता है महा।
तद् पाश के धारक रहे गुण सर्वदा पग पग,
दुष्टों को बाँध लेने को तैयार रहे हैं;
गुण उसके आँख बन्द नहीं करते हैं कभी,
सद्-पुरुषों की रक्षा का सदा भार गहे हैं।

मंत्र- पर्यू षू प्र धन्वा वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः।
द्विषस्तदध्यर्णवेनेयसे सनिम्नसो नामासि त्रयोदशो मास इन्द्रस्य गृहः।।४।।

काव्यार्थ- जो शत्रु अन्न दान, उपकार कार्यों में,
बाधाओं हित लगाते हें बिन विराम डेरा;
ऐसे अतीव दुष्टों के हननकर्ता तूने,
उन सबको भगाने हित अरि दल तमाम घेरा;
ज्यों भूमि मार्गों से अरि पर चढ़ाई होती,
त्यों ही समुद्र से भी वह सब ही नाम फेरा;
हे युद्ध की कला में अत्यन्त ही प्रवीण,
अरि पर चढ़ाई करने में ख्यात नाम तेरा;
तेरहवाँ प्रभु तेरी जीवात्मा का घर है,
उसके सहारे कर तू विघ्नों का धाम ढेरा।

नोट- तेरहवाँ-दस इन्द्रिय, मन, बुद्धि इस बारह से परे परमात्मा।

मंत्र- न्वेऽतेनारात्सीरसौ स्वाहा। तिग्मारूधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारूद्राविह सु मृडत नः।।५।।

काव्यार्थ- **गीत**

प्रभो की सुन्दर स्तुति है।
निज व्याप्ति से आप्त जनों को उसने दी द्युति है।
चन्द्र तथा प्राणो सम, राजा और वैद्य तुम दोनों,
तीक्ष्ण शस्त्र, पैने वज्र, आनन्द धारते लोनो;
धर्म धारते सुख दो, जिसको नित गाती श्रुति है।

मंत्र- अवैतेनारात्सीसौ स्वाहा। तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमरूद्राविह सु मडतं नः।।६।।

काव्यार्थ- **गीत**

प्रभो की सुन्दर स्तुति है।
व्याप्ति से पापी को धन की उसने दी च्युति है।।
चन्द्र तथा प्राणो सम, राजा और वैद्य तुम दोनों,
तीक्ष्ण शस्त्र, पैने व्रज, आनन्द धारते लोनो;
धर्म धारते सुख दो, जिसको नित गाती श्रुति है।।

मंत्र- अपैतेनारात्सीरसौ स्वाहा।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारूद्राविह सु मृडतं नः।।७।।

काव्यार्थ- **गीत**

प्रभु की दोष-हीन मति है।
अपराधी ठहरा पापी की देता आहुति है।।
चन्द्र तथा प्राणो सम, राजा और वैद्य तुम दोनों,
तीक्ष्ण शस्त्र, पैने व्रज, आनन्द धारते लोनो;
धर्म धारते सुख दो, जिसको नित गाती श्रुति है।।

मंत्र- मुमुक्तमस्मान्दुरितादवद्याज्जुषेथां यज्ञममृतमस्मासु धत्तम्।।८।।

काव्यार्थ- धन वैभवों के धारक, हे ज्ञान के प्रदाता,
सामर्थ्यवान दोनो हे वैद्य और राजा;
हमको छुड़ाओ दुर्गति व पाप कार्यों से,
स्वीकार करो देव-पूजन सभी के काजा;
पुरूषार्थी, यशस्वी हम सबको ही बना कर,
अमरत्व मिले जिससे, उस मार्ग को दिखाजा।

मंत्र- चक्षुषो हेते मनसो हेते ब्राह्मण ो हेते स तपसश्च हेते।
मेन्या मेनिरस्यमेनयस्ते सन्तु येऽस्माँ अभ्य घायन्ति।।९।।

काव्यार्थ-हे प्रभुवर! चक्षु के आयुध, हे सुन्दर आयुध मन के
तपस्वियों के तप के आयुध, आयुध सकल ज्ञान धन के,
वज्र से भी वज्र, तू इनसे दुष्ट शस्त्र-हीन कर दे,
हमें सताना चाहें जो, तू उनको निबल क्षीण कर दे।

मंत्र- योऽस्मांश्चक्षुसा मनसा चित्त्याकूत्या च यो अघायुरभिदासात्।
त्वां तानग्ने मेन्यामेनीन्कृणु स्वाहा।।१०।।

काव्यार्थ- **गीत**

सुवाणी! नम्र प्रार्थना है।
हे प्रभु! पापी रहे जनो को तुझे नाथना है।
संकल्प, मन, चित्त, आँख से जो खल हमें सताये,
दास बनाना चाहे, निज को अति बलवान बताये;
शस्त्र हीन कर उसे, वज्र से तुझे माथना है।।

मंत्र- इन्द्रस्य गृहोऽसि। तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः। सर्वपूरूषः सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन।।११।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जीव-आत्मा के हे निवास, परमात्म देव!
रखता मैं जितनी भी गतियाँ विशिष्ट हूँ;
जितनी भी पुरूषार्थ-शक्ति मुझमें है, तथा-
जितना शरीर-अंगों से मैं बलिष्ठ हूँ।
जितना भी आत्म-बल रखता मैं प्रभुदेव!
जितना भी मिष्ट और जितना भी शिष्ट हूँ;
जो कुछ है मेरा, उस साथ तुझको मैं नाथ-
प्राप्त करता हूँ, होता तुझमें प्रविष्ट हूँ।।

मंत्र- इन्द्रस्य शर्मासि। तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरूषः सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन।।१२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जीव-आत्मा के आश्रय स्थान प्रभु!
रखता मैं जितनी भी गतियाँ विशिष्ट हूँ,
जितनी भी पुरूषार्थ-शक्ति मुझमें हैं, तथा-
जितना शरीर-अंगों से मैं बलिष्ठ हूँ।
जितना भी आत्म-बल रखता मैं प्रभु-देव!
जितना भी मिष्ट अरू जितना भी शिष्ट हूँ,
जो कुछ है मेरा, उस साथ तुझको मैं नाथ-
प्राप्त करता हूँ, होता तुझमें प्रविष्ट हूँ।।

मंत्र- इन्द्रस्य वर्मासि। तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरूषः सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्तितेन।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जीव-आत्मा की ढाल है बलिष्ठ प्रभुदेव के हे कवच परमात्मदेव!
रखाता मैं जितनी भी गतियाँ विशिष्ट हूँ;
जितनी भी पुरूषार्थ-शक्ति मुझमें हैं, तथा-
जितना शरीर-अंगों से मैं बलिष्ठ हूँ।
जितना भी आत्म-बल रखाता मैं प्रभु-देव!
जितना भी मिष्ट अरू जितना भी शिष्ट हूँ,
जो कुछ है मेरा, उस साथ तुझको मैं नाथ-
प्राप्त करता हूँ, होता तुझमें प्रविष्ट हूँ।।

मंत्र- इन्द्रस्य वरूथमसि। तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरूषः सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन।।१४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जीव-आत्मा के हे कवच परमात्मदेव!
रखता मैं जितनीर भी गतियाँ विशिष्ट हूँ;
जितनी भी पुरूषार्थ-शक्ति मुझमें हैं, तथा-
जितना शरीर-अंगों से मैं बलिष्ठ हूँ।
जितना भी आत्म-बल रखता मैं प्रभु-देव!
जितना भी मिष्ट अरू जितना भी शिष्ट हूँ,
जो कुछ है मेरा, उस साथ तुझको मैं नाथ-
प्राप्त करता हूँ, होता तुझमें प्रविष्ट हूँ।।

सूक्त ७

मंत्र- आ नो भर आ परि ष्ठा अराते मा नो रक्षीर्दक्षिणां नीयमानाम्। नमो वीर्त्साया असमूद्धये नमो अस्त्वरातये।।१।।

काव्यार्थ- हे अदान शक्ति! तू अलग खड़ी न हो,
तू आ हमारे पास, हमें धन से पुष्ट कर।
हमारी लायी दक्षिणा न पास रख कभी,
तू धैर्य दे हमें, हमें सदैव सुष्ट कर।
अवृद्धि इच्छा और धन हीनता तथा-
अदान शक्ति है नमन, सदैव तुष्ट बन।

मंत्र- यमराते पुरोधत्से पुरूषं परिरापिणम्।
नमस्ते तस्मै कृण्मो मा वनिं व्यथयीर्मम।।२।।

काव्यार्थ- हे अदान शक्ति! यहाँ जिस भी व्यक्ति पर,
प्रभाव हुआ देख कर तेरी अदानता;
उसको भी नमन है, तथापि भक्ति को मेरी,
उससे न पीर पहुँचे, यही ठीक मानता।

मंत्र- प्र णो वनिर्देवकृता दिवा नक्तं च कल्पताम्।
अरातिमनुप्रेमो वयं नमो अस्त्वरातये।।३।।

काव्यार्थ-दिव्य व्यक्तियों द्वारा प्रेरित अरू उत्पन्न हुई जो,
ऐसी भक्ति हमारी निशिदिन हो समर्थ बढ़ती हो;
नमन हमारा जो अदान शक्ति को अति आदर से,
सभी जनों द्वारा उन्नति के तुंग शिखर चढ़ती हो।

मंत्र- सरस्वतीमनुमतिं भगं यन्तो हवामहे।
वाचंजुष्टां मधुमतीमवादिषं देवानां देवहूतिषु।।४।।

काव्यार्थ-हम पुरूषार्थी लोग सदा ही उत्तम शुभ विद्या से,
सुमति और शुभ ऐश्वर्य को अपने पास बुलाते;
दिव्य गुणों को पाने के हित, नित ही आप्त जनों की,
प्रीति युक्त मधु वाणी अपने मुख के द्वार डुलाते।

मंत्र- यं याचाम्यहं वाचा सरस्वत्या मनोयुजा।
श्रद्धा तमद्य विन्दतु दत्ता सोमेन बभ्रूणा।।५।।

काव्यार्थ-जिस गुण को मैं मन-संयुत विज्ञानमयी वाणी से,
माँगा करता हूँ जिससे मम जीवन तरी तरे;
उस गुण को अति ही दयालु पोषण-कर्ता प्रभुवर को,
मन द्वारा दी हुई भुक्ति अरू श्रद्धा प्राप्त करे।

मंत्र- मा वनिं मा वाचं नो वीर्सीरूभाविन्द्राग्नी आ भरतां नो वसूनि
सर्वे नो अद्य दित्सन्तोऽरातिं प्रति हर्यत।।६।।

काव्यार्थ-हे अदान-शक्ति! हम सबकी भक्ति नहीं कम कर तू,
तथा हमारी वाणी को भी किंचित रोक नहीं;
जीव तथा अग्नि हम हेतु नाना धन भरते हों,
नाना वैभव अरु विद्या का हो आलोक यहीं;
हे सब गुणों दान के इच्छुक! प्रतिकूलता से तुम,
प्राप्त अदान शक्ति को होओ, धारो टोक नहीं।

मंत्र- परोऽपेह्यसमृद्धे वि ते हेतिं नयामसि।
वेद त्वाहं निमीवन्तीं नितुदन्तीमराते।।७।।

काव्यार्थ-असमृद्धि! हो दूर यहाँ से, पास नहीं तू आना,
तेरे सभी घातक शस्त्रों को हम हैं दूर हटाते;
हे अदान शक्ति! तुझको अन्दर से चुभने वाली-
निबल बनाती जान, सदा ही तुझको धूल चटाते।

मंत्र- उत नग्ना बोमुवती स्वप्नतया सचसे जनम्।
अराते चित्तं वीर्त्सन्त्याकूतिं पुरूषस्य च।।८।।

काव्यार्थ-हे अदान शक्ति! तू नर को घातक सिद्ध हुई है,
चित्त तथा संकल्प-नाश के बीज बुआ करती है;
बार-बार लज्जित करती, निष्क्रिय, आलसी करती,
सदा नींद के साथ उसे तू प्राप्त हुआ करती है।

मंत्र- या महती महोन्माना विश्वा आशा व्यानशे।
तस्यै हिरण्यकेश्यै निर्ऋत्या अकरं नमः।।९।।

काव्यार्थ-मैं महती, विशाल आकार की अदान शक्ति का,
सभी दिशाओं में व्यापक का चमत्कार हरता हूँ,
आभित स्वर्ण समान बलवती, अतिशय भय की दाता,
क्रूर विपत्ति को दूर से नमस्कार करता हूँ।

मंत्र- हिरण्यवर्णा सुभगा हिरण्यकशिपुर्महो।
तस्यै हिरण्यद्रापयेऽरात्या अकरं नमः।।१०।।

काव्यार्थ-सुवर्ण समान रुप रखती जो, है ऐश्यर्व वाली,
बड़ी सुवर्ण वस्त्र वाली है, महनीय बल वाली;
उस सुवर्ण वस्त्र से आच्छादित अदान शक्ति को,
नमस्कर दूर से, वह है अतिशय दुःख-दल वाली।

सूक्त ८

मंत्र- वैंकंडक.तेनेघ्मेन देवेभ्य आज्यं वह।
अग्ने ताँ इह मादय सर्व आ यन्तु मे हवम्।।१।।

काव्यार्थ- हे अग्नि के समान तेज धारते राजन्।
निज राज्य में विद्याओं का करता प्रचार चल;
अति ज्योतिपूर्ण दिव्य विज्ञों के पास तक,
पाने के योग्य वस्तु का करता प्रसार चल।
उन लोगों का निज राज्य में सत्कार किया कर,
तद् बीच में आनन्द को भरता प्रगाढ़ चल;
वह सब मेरी पुकार को आकर सुना करें;
मम कष्ट हरें, तू भी कष्ट को प्रजार चल।

मंत्र- इन्द्रा याहि मे हवमिदं करिष्यामि तच्छृणु। इम
मंत्र- एन्द्रा अतिसरा आकूतिं सं नमन्तु मे।
तेभिः शकेम वीर्यंभ्जातवेदस्तनूवशिनू।।२।।

काव्यार्थ- हे ऐश्वर्यवान् भूप! मम पुकार सुन,
मैं तुझसे करूँगा जो विनय, रंच ध्यान धर,
तुझ ऐश्वर्यवान् के जो भी प्रयत्न हों,
वह कार्य को करें, मेरे संकल्प बान पर;
अत्यन्त धनी, इन्द्रियजित, श्रेष्ठ भूप हम,
तव यत्नों से चढ़ते रहे संकल्प यान पर।

मंत्र- सदसावमुतो देवा अदेवः संश्चिकीर्षति।
मा तस्याग्निहव्यं वाक्षीद्धवं देवा अस्य मोप गुर्ममैव हवमेतन।।३।।

काव्यार्थ- हे दिव्य जनों! वह जो पुरूष राजद्रोही हो,
उस थल से जिस भी घात को करना है चाहता;
अग्नि समान तेज पूर्ण नृप, उसे कभी
अन्नादि न दिलाये, रहे वह कराहता।
इसकी पुकार पर न आयें पास दिव्य जन,
असहाय बना वह रहे निशि-दिन कराहता;
मेरी पुकार पर ही उपस्थित हुआ करें,
लख उन सहायकों को रहे मन उछाहता।

मंत्र- अति धावतातिसरा इन्द्रस्य वचसा हत।
अविवृकइव मथ्नीत स वो जीवन्मा मोचि प्राणमस्यापि नह्मयत।४।।

काव्यार्थ- हे अग्रगामी वीर अतुल साहसी पुरूषों!
अत्यन्त वेग धारते शत्रु पर जा चढ़ो;
ऐश्वर्यवान् भूप के आदेश वचन से,
शत्रु को मथते, मारते चारों दिशा बढ़ो।
जीता हुआ कोई न शत्रु छूटने पाये,
ज्यों भेड़ भेड़िया हने, त्यों मृत्यु को मढ़ों;
तत् प्राण को भी बाँध डालो मृत्यु पाश से,
निज वीरता से शत्रु-हीन देश को घड़ो।

मंत्र- यममी पुरोदधिरे ब्राह्मण मपभूतये।
इन्द्र स ते अधस्पदं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे।।५।।

काव्यार्थ- इन शत्रुओं ने वृद्धि-शील जो पुरूष बहका,
हमको हराने, उच्च पदासीन किया है;
ऐश्वर्यवान् भूप! वह तव पैरों तले हो,
मैंने उसे मृत्यु के लिये फेंक दिया है।

मंत्र- यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे।
तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि।।६।।

काव्यार्थ- निज रक्षा-कवच अपने सर्व-ज्ञान को बना,
राजा के नगरों पर जो शत्रु ने चढ़ाई की;
रक्षार्थ साधनों को जुटा डींग जो मारी,
नीरस करो सब कुछ जो है उसने बड़ाई की।

मंत्र- यानसावतिसंराश्चकार कृणवच्च यानू। त्वं तानिन्द्र वृत्रहन्प्रतीचः
पुनरा कृधि यथामुं तृणहां जनम्।।७।।

काव्यार्थ- महनीय ऐश्वर्यधारी, अंध-विनाशक-
राजन्! वह शत्रु यत्न जो करता या करेगा,
उन यत्नों को तू औंधे मुख गिरा के तुच्छ कर,
जिससे हमारे हाथों वह मृत्यु को वरेगा।

मंत्र- यथेन्द्र उद्वाचनं लब्ध्वा चक्रे अधस्पदम्।
कृण्वेऽहमधरांस्तथामून्छश्वतीभ्यः सभाभ्यः।।८।।

काव्यार्थ- जैसे परम ऐश्वर्यधारी वीर पुरूष ने,
बड़बोला शत्रु अपने पाँव नीचे किया है;
इन शत्रुओं को मैंने उसी भाँति दबा कर,
शाश्वत प्रजाओं को अभय का दान दिया है।

मंत्र- अत्रैनानिन्द्र वृत्रहन्नुग्रो मर्मणि विध्य। अत्रैवैनानभि तिष्ठेन्द्र
मेद्यग्रं तव। अनु त्वेन्द्रा रभामहे स्याम सुमतौ तव।।९।।

काव्यार्थ- ऐश्वर्य तेजधारी, अंध-शत्रु हे राजन्!
इस थल यहाँ इन लोगों के मर्म में छेदकर;
परमैश्वर्यवान्! इन्हें तू दबा इस थल,
मैं तेरा सनेही, नहीं रखता हूँ भेद कर;
तेरी सुमति में हम रहें, राजन् महाधनी!
अनुकूल तेरे रहते हैं, चलते हैं वेद पर।

सूक्त ९

मंत्र- दिवे स्वाहा।।१।। पृथिव्यै स्वाहा।।२।।
अन्तरिक्षाय स्वाहा ।।३।। अन्तरिक्षाय स्वाहा।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**
करने को ज्योतिमान प्रभु की बड़ाई हम,
यह अति श्रेष्ठ बोल वाणी से उचारते;
विस्तृत नीति की बड़ाई करने को हम,
यह अति श्रेष्ठ बोल वाणी से उचारते।
भीतर से दृश्यमान हृदय की शुद्धि हेतु,
अति आर्त वाणी द्वारा प्रार्थना पुकारते;
मध्य लोक, श्रेष्ठ वायु-मण्डल के ज्ञान हेतु,
निज वाणी द्वारा हम प्रार्थना संचारते।।

मंत्र- दिवे स्वाहा।।५।। मंत्र-पृथिव्यै स्वाहा।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**
करते हैं हम प्रार्थना सद्-व्यवहार हेतु।
अरू पृथिवी के राज्य हित है वचनों का सेतु।।

मंत्र- सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽअन्तरिक्षमात्मा शरीरम्।
अस्तृतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं नि दधे द्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय।।७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**
मम नेत्र सूर्य के समान हैं प्रकाशमान,
अरू प्राण वायु के समान गतिवान है;
आत्मा है अन्तरिक्ष के समान मध्वर्ती,
तन ये सहनशील पृथिवी समान है।
पृथिवी का लोक अरू द्युतिमान द्यु लोक,
रक्षा करते हैं मेरी, अति दयावान हैं;
इस हेतु अपने को उनके आधीन कर,
मैं हूँ निःशष, होते जैसे कि सुजान हैं।।

मंत्र- उदायुरुद्वलमुत्कृत्यामुन्मनीषामुदिन्द्रियम्।
आयुष्कृदायुष्पत्नी स्वधावन्तौ गोपा मे स्त गोपायतं मा।
आत्मसदौ मे स्तं मा मा हिंसिष्टम्।।८।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

मेरी आयु उत्तम हो, उत्तम हो मेरा बल,
ऐश्वर्य शुभता के सर में तिरा हुआ;
मम वृद्धि उत्तम हो, उत्तम हो कृत कर्म,
कर्तव्य कर्म रहे पाप से फिरा हुआ।
पालक हे मात अरू धारक हे तात, बन-
अन्न-दाता, मुझे नहीं रखिये गिरा हुआ;
मुझको बचाओ तुम, मम आत्मा में रहो,
होने दो मुझे न कभी दुःख में घिरा हुआ।

सूक्त १०

**मंत्र- अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्राच्या दिशोऽघायुरभिदासात्।
एतत्स ऋच्छात्।।१।।**

**मंत्र- अश्मवर्म मेऽसि यो मा दक्षिणाया दिशोऽघायुरभिदासात्।
एतत्स ऋच्छात्।।२।।**

**मंत्र- अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्रतीच्या दिशोऽघायुरभिदासात्।
एतत्स ऋच्छात्।।३।।**

**मंत्र- अश्मवर्म मेऽसि यो मा मोदीच्या दिशोऽघायुरभिदासात्।
एतत्स ऋच्छात्।।४।।**

**मंत्र- अश्मवर्म मेऽसि यो मा ध्रुवाया दिशोऽघायुरभिदासात्।
एतत्स ऋच्छात्।।५।।**

**मंत्र- अश्मवर्म मेऽसि यो मा मोर्ध्वाया दिशोऽघा
युरभिदासात् एतत्स ऋच्छात्।।६।।**

**मंत्र- अश्मवर्म मेऽसि यो मा दिशामन्तर्देशेभ्योऽघायुरभिदासात्।
एतत्स ऋच्छात्।।७।।**

काव्यार्थ- **कवित्त**

सम्मुख दिशा से, या कि दक्षिण, प्रतीची दिशा,
उत्तर, अधः या ऊर्ध्व, जो कि रही दृष्ट हो;
अथवा दिशाओं मध्य देशों बीच आततायी,
पाप लिप्त ऐसा व्यक्ति जो कि रहा भ्रष्ट हो।
वह मुझ पर यदि करता चढ़ाई होवे,
लूटता मुझे हो अरू देता मुझे कष्ट हो;
मम हेतु पत्थर के हे दृढ़ कवच ब्रह्म,
तब वह कष्ट महा पाकर विनष्ट हो।।

**मंत्र- बृहता मन उप ह्वये मातरिश्वना प्राणापानौ। सूर्याच्चक्षुरन्तरिक्षाच्छ्रोत्रं
पृथिव्याः शरीरम्। सरस्वत्या वाचमुपह्वयोमहे मनोयुजा।।८।।**

काव्यार्थ- **कवित्त**

मैं वृहत् ज्ञान युक्त मन माँगता हूँ, तथा-
वायु से मैं प्राण औ अपान को हूँ माँगता,
सूर्य से दृष्टि औ आकाश से श्रवण शक्ति,
पृथिवी से तन की उठान को हूँ माँगता।
मनन की शक्ति से युक्त विद्या के साथ-
उत्तम वाणी के विद्वान को हूँ माँगता;
इन सब की ही शक्ति प्राप्त मुझको हो प्रभु,
जन जन बीच सम्मान को हूँ माँगता।।

सूक्त ११

**मंत्र- कथं महे असुरायाब्रवीरिह कथं पित्रे हरये त्वेषनृम्णः
पृश्नि वरूण दक्षिणां ददावान्पुनर्मघ त्वं मनसाचिकित्सीः।।१।।**

काव्यार्थ- हे तेजोमय बलधारी विद्वान! कठिन तप द्वारा-
तूने जगत्-पिता, दुःख हर्ता, प्रभु की विद्या पायी;
उसकी प्राप्ति हेतु सदा करता उपदेश रहा तू,
तुझसे हे वरणीय! वेद की जग ने गरिमा गायी;

पुनः पुनः ज्ञान-धन दाता ऐसे हे विद्वान!
जन की शुद्धि हेतु चिकित्सा तूने की मनभायी।

मंत्र- न कामेन पुनर्मथो भवामि सं चक्षे कं पृश्निमेतामुपाजे।
केन नु त्वमथर्वन्काव्येन केन जातेनासि जातवेदाः।।२।।

काव्यार्थ-शुभ-कामना से वेद-विद्या-धन दाता जब मैं होता,
क्योंकि इसे सुख से मैंने ही ठीक ठीक जाना है;
मैं उसको सादर श्रद्धा के साथ प्राप्त करता हूँ,
जगत् हेतु मैंने उसको ही हितकारी माना है,
काम्य काव्य-स्तुति योग्य प्रजापति प्रभुवर के-
सान्निध्य से थिर नर तुझमें अतुल बुद्धि ज्ञाना है।

मंत्र- सत्यमहं गभीरःकाव्येन सत्यं जातेनास्मित जातवेदाः।
न मे दासो नार्यो महित्वा व्रतं मीमाय यदहं धारिष्ये।।३।।

काव्यार्थ-मैं हूँ अति गंभीर सत्य ही, तथा सत्य है यह भी-
परम-ब्रह्म के सान्निध्य से महत् बुद्धि वाला हूँ,
वह ब्रह्म जो काव्य प्रकाशित करने योग्य प्रसिद्ध,
जिसके व्रत को मैं महत्व दे, धारे व्रत-माला हूँ,
उसको तोड़ नहं सकता, कोई अनभियोदास
मैं दृढ़-व्रती रहे उस प्यारे प्रभुवर का पाला हूँ।

मंत्र- न त्वदन्यः कवितरो न मेधया धीरतरो वरूण स्वधावन्।
त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ स चिन्नु त्वज्जनो माया बिभाय।।४।।

काव्यार्थ-हे अपूर्व धारणा-शक्ति युक्त श्रेष्ठ विद्वान!
निज बुद्धि के कारण तुझसे इतर पुरूष जितने हैं,
तुझसे अधिक नहीं बहु ज्ञानी तथा सूक्ष्मदर्शी वह,
तेरे ज्ञान की तुलना में, वह सब ही जन निधने है;
इसीलिये वह मायावी तुझसे भयभीत हुए हैं,
तुझे ज्ञात तन तथा बुद्धि बल में तुझसे कितने हैं।

मंत्र- त्वं ह्यङ्ग वरूण स्वधावन्विश्वा वेत्थ जनिमा सुप्रणीते।
किं रजस एना परो अन्यदस्त्येना किं परेणावरममुर।।५।।

काव्यार्थ-धारण शक्ति युक्त, श्रेष्ठ नीति वाले हे विद्वन!
तेरे पास सब जनित लोक की अति श्रेष्ठ विद्या है;
हे अति श्रेष्ठ ज्ञानी! लोक से परे दूसरा क्या है?
अरू इस सबसे परे वाले के उरे रहा भी क्या है?

मंत्र- एकं रजस एना परो अन्यदस्त्येना पर एकेन दुर्णशं चिदर्वाक्।
तत्ते विद्वान्वरूण प्र ब्रवीम्यधोवचसः पणयो भवन्तु नीचैर्दासा
उप सर्पन्तु भूमिम्।।६।।

काव्यार्थ-इस लोक से परे दूसरा एक अकेला ब्रह्म,
जिसकी अपेक्षा स्वयं वही दुष्प्राप्य, दूर औ पीछे;
मैं विद्वान् बताता तुझसे वह रहस्य हे प्राणी!
तू है श्रेष्ठ पुरूष, तूने ही नित-नित दुगुर्ण भीचे;
दास भाव वाले जन भू पर हीन बने नित रेंगे,
कुत्सित कर्मी रहें सदा ही किये हुए मुख नीचे।

मंत्र- त्वं ह्यङ्ग वरूण ब्रवीषि पुनर्मधेष्ववद्यनि भूरि।
मो षु पँणीरभ्येश्तावतो भून्मा त्वा बीचन्नराधसं जनासः।।७।।

काव्यार्थ-हे सत्पुरूष! बार बार इन धन वालों के बीच,
रह कर तू बहु श्लाघनीय वचनों को बोला करता;
इन कुव्यवहारी पुरूषों प्रति सहज स्वभाव न हो तू,
लोग अदानी कहें न तुझको, कोष न खोला करता।

मंत्र- मा मा वोचन्नराधसं जनासः पुरस्ते पृश्निं जरितर्ददामि।
स्तोत्रं मे विश्वमा याहि शचीमिरन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु।।८।।

काव्यार्थ-मुझ विद्वान् पुरूष को कोई नहीं अदाता बोले,
मैं, स्तुतिकर्ता नर को नित वेद-ज्ञान देता हूँ,
सकल दिशाओं के नर करते रहें अनुकरण उनका,
जो स्तुत्य कर्म कर मैं जीवन-नौका खेता हूँ।

मंत्र- आ ते स्तोत्राण्युद्यतानि यन्त्वन्तर्विश्वासु मानुषीणु दिक्षु।
देहि नु मे यन्मे अदत्तो असि युज्यो मे सप्तपदः सखासि।।९।।

काव्यार्थ-हे विद्वान्! तेरे सब कर्म स्तुति योग्य रहे, वह-
सभी मनुष्यों युक्त दिशाओं में शुभ रीति जायें;
तूने जो कुछ नहीं दिया है, वह प्रदान कर मुझको,
सात चरण चल बना मेरा तू योग्य सखा कहलाये।

मंत्र- समा नौ बन्धुर्वरूण समा जा वेदाहं तद्यन्नावेषा समा जा।
ददामि तद्यत्ते अदत्तो अस्मि युज्यस्ते सप्तपदः सखास्मि।।१०।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

श्रेष्ठ विद्वान्! हम दोनों हैं समान बन्धु,
जन्म में समान, मध्य इस दृश्यमान जग;
यह भी भली प्रकार ज्ञात, हम दोनों ही का-
समरूप जन्म हुआ, जिसके किये से यग।
तेरे लिये वह भी समर्पित है, जिसको कि-
अभी तक सौंपा न था, जान मूल्यवान नग;
अब मैं तेरा हूँ योग्य मित्र, अरू साथ ही में-
तेरा हूँ सखा भी, तेरे साथ चल सात पग।।

मंत्र- देवो देवाय गृणते वयोधा विप्रो विप्राय स्तुवते सुमेधाः।
अजीजनो हि वरूण स्वधावन्नथर्वाणं पितरं देवबन्धुम्।
तस्मा उ राधः कृणुहि सुप्रशस्तं सखा नो बअसि परमं च बन्धुः।।११।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

धारणा की शक्ति युक्त श्रेष्ठ देव! तू ही एक,
स्तोता विज्ञ को प्रदान अन्न करता;
निज स्तोता विज्ञों का श्रेष्ठ बुद्धि धारी,
उन हेतु तेरा ज्ञान-स्रोत सदा झरता।
तू हमारे पालक विज्ञों के रहे बन्धु सम,
निश्चल स्वभाव जन पैदा कर, घड़ता;
उनके लिये तू धन उत्तम प्रदान कर,
तू हमारा सखा है, परम बन्धु, भरता।।

सूक्त १२

मंत्र- समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जातवेदः।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः।।१।।

काव्यार्थ-हे धनवान, ज्ञान सम्पन्न, दिव्य ज्योति धारी नर,
निज कुल में रह दिव्य गुणों से तू संगत रखता है;
गमनशील अरू दुष्ट विनाशक, जगती के उपकारक-
आत्म चेतना युक्त कवि की तू रंगत रखता है।

मंत्र- तनूनपात्पथ ऋतस्य यानान्मध्वा समन्जन्त्स्वतदया सुजिह्व।
मन्मानि धीभिरूत यज्ञमृन्धन्देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः।।२।।

काव्यार्थ-निज तन पतित न करने वाले, हे मृदुभाषी विद्वन्!
सन्मार्गों को मधुर बनाता, स्वाद युक्त करता चल;
पूजनीय व्यवहार सिद्ध कर सत्य कर्म ज्ञान से,
विज्ञों बीच सुमार्ग दिखाता, हिंसा को हरता चल।

मंत्र- आजुह्वन ईडयो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः
सजोषाः। त्वं देवनामसि यह होता स एनान्यक्षीषितो यजीयान्।।३।।

काव्यार्थ-स्तुति वन्दन योग्य, चुनौती देते हे तेजस्वी!
तू सप्रेम वास के दाता श्रेष्ठों साथ यहाँ आ;
दिव्य गुणों का दाता तू है पूजनीय, इस हेतु-
ईष्ट तथा अतिदाता होकर, इनका कहा प्रदाता।

मंत्र- प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम्।।
व्युप्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम्।।४।।

काव्यार्थ-ब्रह्म प्रवृद्ध, दिनों से पहले वर्तमान, अपने ही-
सामर्थ्य से इस पृथिवी को ढकने हेतु रहा है;
उस उद्धारक, अति विस्तारित, सुखदायक ब्रह्म ने,
अक्षय मोक्ष दान के हेतु निज विस्तार लहा है।

मंत्र- व्यचस्वतीरूर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः।।५।।

काव्यार्थ- जैसे अपने गुणगण से शोभायमान महिलाऐं,
अपने पतियों का सदैव हित करतीं, सुख देती हैं;
वैसे ही महनीय कर्मो को करते, सकल प्राणियों-
को सुख देवें, जगती में रहती प्रजाऐं जेती हैं।
जैसे अच्छे बड़े घरों के द्वारों से लोगों का,
आना जाना सरल तथा अति सुखदायी होता है;
वैसे ही सद्व्यवहारी जनता का जग में उत्तम-
गुण फैलाना, दिव्य जनों में अनुपम सुख बोता है।

मंत्र- आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जो अतीव सुन्दरता धारते चमकी हैं,
शुद्ध रुप, धारे दिव्य गुण के लिबास को;
संगति के योग्य हैं, समीपस्थ, सेवनीय,
वृद्धि करती हैं, सदा देती हैं, हुलास को।
जो कि विद्या व धन रूपी शुभ लक्ष्मी को,
धारतीं अधिकता से देती हैं प्रकाश को;
ऐसी शुभ शोभा युत उषा संध्या वेलाऐं,
नित्य-नित्य आवें प्रति घर में निवास को।।

मंत्र- दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै।
प्रचोदयन्ता विदेथेषु कारु प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता।।७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

इस जगती में उपकारी द्वय शिल्पी रूप,
अग्नि और वायु दाता चलते जो घूर्ण हो;
जो कि हैं अतीव प्रख्यात, मधु वाणी युक्त,
शुभ गतियों को धारते जो सदा तूर्ण हो।
देते प्राचीन ज्योति निज अनुशासन से,
विज्ञान प्रेर करें धन्य धरा कूर्म को;
निर्माण करते यहाँ पर आयें, जिससे कि-
व्यक्तियों के सभ्झी पूजनीय कर्म पूर्ण हों।।

मंत्र- आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वतीः स्वपसः सदन्ताम्।।८।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जगती में पूजनीय नर जो रहे हैं, उन्हें-
अति कल्याणकारी विद्या है भारती;
यह उनके अतीव वृद्धि-कर कर्मों को,
आगे है बढ़ाती, उन्हें चेतना प्रदानती।
स्तुति के योग्य इड़ा देवी है कहाती, तथा-
नीति, विज्ञान को सरस्वती प्रगाढ़ती;
आकर के तीनों उस श्रेष्ठ नर को हों प्राप्त,
ज्ञान को बढ़ाती रहें अंध को प्रजारती।।

मंत्र- ये इमे द्यावापृथिवी जनित्री रुपैरपिंशदुवनानि
विश्वा। तमद्य होतरिषितो यजीयान्देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान।।९।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जिस परमेश्वर ने रचे हैं उत्पत्ति-
कारक ये द्यु और पृथिवी विशाल को;
सब लोकों को विविध रुपों से है रुपवान-
जिसने बनाया, उन्हें देकर सुचाल को।
हे अधिक संगति को करते, सुप्रेरणाऐं-
किये गये दानशील विज्ञ कमाल को;
यहाँ पर उस विश्वकर्मा देव को तू पूज,
वह ही अकेला रहे तेरी देख-भाल को।।

मंत्र- उपावसृज त्मन्या समन्जन्देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि।
वनस्पतिः शामिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन।।१०।।

काव्यार्थ- हे विज्ञ! स्वयं को कर प्रत्यक्ष, विज्ञों को-
ऋतु-ऋतु में अन्न और दातव्य को दिया कर।
सूर्य किरण-पति, दानी मेघ और अग्नि,
मधु-स्वादु-अन्न देवें, स्वादिष्ट निज हिया कर।

मंत्र- सद्यसे जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः।
अस्य होतुः प्रशिष्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः।।११।।

काव्यार्थ- शीघ्र प्रसिद्ध होकर, विद्वान इस पुरूष ने,
व्यवहार पूज्य अपने विशेषकर बनाये;
विद्वान् सभी पुरूषों का हो गया यह अगुआ;
विद्वान् हो गये वह, जो पास इसके आये;
तत् वाणी साथ चल कर, विद्वान् मधुर वाणी-
से सिद्ध अन्न खायें, आनन्द लाभ पायें।

सूक्त १३

मंत्र- ददिर्हि मह्यं वरूणो दिवः कविर्वचोभिस्त्रैर्नि रिणामि ते विषम्।
खातमखतमुत सत्तमग्रभमिरेव धन्वन्नि जजास ते विषम्।।१।।

काव्यार्थ-व्यवहार-बुद्धि के प्रदाता श्रेष्ठतम परमेश ने,
मुझ वैद्य को विष-नाश का सुन्दर दिया उपदेश है;
निज उग्र वचनों से मैं तेरे विष को करता दूर हूं
पकड़ा हुआ वह तीव्र विष, करता जो निज उन्मेष है।
मैंने खुदे घाव का विष, अरू बिन खुदे घाव का विष,
ऊपर ही चिपटे विष को भी निज हाथ से पकड़ हुआ;
रेतीले थल में नष्ट होती एक जल धारा समान,
नष्ट वह विष हो गया, कल तक जो था अकड़ा हुआ।

मंत्र- यत्ते अपोदकं विषं तत्त एतास्वग्रभम्।
गृह्णामि ते मध्यममुत्तमं रसमुतावमं मियसा नेशदादु ते।।२।।

काव्यार्थ- जो कुछ रहा है रूधिर-स्थित-जल का शोषक विष तेरा,
इन नाड़ियों भीतर गया वह विष पकड़ मैंने लिया;
तव मध्य के, ऊपर के अरू नीचे के सब विष द्रव्य को,
मैंने पकड़ कर विष के भय से मुक्त तुझको कर दिया।

मंत्र- वृषा मे रवो नभसा न तन्यमुस्त्रेण ते वचसा बाध आदु ते।
अहं तमस्य नृभिरग्रभं रसं तमसइव ज्योतिरूदेतु सूर्यः।।३।।

काव्यार्थ-मुझ वैद्य का गंभीर शब्द मेघ-गर्जन शक्ति का,
अति उग्र अपने वचन से विष को हटाता हूँ तेरे;
मैंने अपर अति परोपकारी व्यक्तियों की मदद ले,
कर दिये हैं नष्ट सब विष-द्रव्य के घातक घेरे;
जैसे अंधेर तम में ज्योति का प्रदाता सूर्य है,
वैसे ही विष के नाश पर तू जाग जा मानुस मेरे।

मंत्र- चक्षुषा ते चक्षुर्हन्मि विषेण हन्मि ते विषम्।
अहे म्रियस्व या जीवीः प्रत्यगभ्येतु त्वा विषम्।।४।।

काव्यार्थ-नेत्र द्वारा नाश करता हूँ मैं तेरे नेत्र का,
अपने विष द्वारा मिटाता हूँ मैं तेरा विष सभी;
हननशील सर्प मर जा, अब न जीवित रंच रह,
तेरा विष, तेरे प्रति लौटे, डसे, तू सुख नहीं पाये कभी।

मंत्र- कैरात पृश्न उपतृण्य बभ्रु आ मे शृणुतासिता अलीकाः।
मा ते सख्युः स्तामानमष्ठाताश्रावयन्तो नि विषे रमध्वम्।।५।।

काव्यार्थ-जंगल के वासी, धब्बे वाले, भूरे, काले रंग के,
घास के स्थानों में छिप रहने वाले तुम सभी,
निन्दनीय सर्पों! मेरी बात सुन लो ध्यान से,
मम सखा घर पास, भूले से न ठहरो तुम कभी;
मेरी कही इस बात को अच्छी तरह सुनते हुए;
अपने विष के साथ ठहरो, दूर में लेकर ठहीं।

मंत्र- असितस्य तैमातस्य ब्रभोरपोदकस्य च।
सात्रासाहस्याहं मन्योख ज्यामिव धन्वनो वि मुन्चामि रथाँइव।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

काले रंग वाले अरू भूरे रंग वाले, तथा-
गीले स्थान रहते जो नहीं थकते;
जल से जो बाहर निवास करते हैं, तथा-
प्रजाओं को पराजित करते जो भखते।
ऐसे क्रोध भरे सर्पों की विष-बाधा को मैं,
नष्ट करता, वो मेरा दण्ड-स्वाद चखते;
ढीला करता हूँ उन्हें रथ-बन्धनों की भाँति,
अरू धनु-डोरी को ज्यों ढीला कर रखते।।

मंत्र- आलिगी च विलिगी च पिता च माता च।
विध्र वः सर्वतो बन्ध्वरसाः किं करिष्यथ।।७।।

काव्यार्थ-चारों दिशाओं, घूमती अरू टेढ़ी-टेढ़ी चाल की,
साँपिन, पिता साँप व उसकी घातिनी माँ साँपिनी,
हम भली विधि जानते तव बन्धुओं, तुमको सभी,
क्या करोगे हानि, जब तव शक्ति जाएगी छिनी।

मंत्र- अरूगूलाया दुहिता जाता दारूसिक्न्या।
प्रतंक दद्रुषीणां सर्वसामरसू विषम्।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हिंसक साँपिन की सुता की है टेढ़ी चाल।
काली साँपिन की हुई वह दासी इस काल।।
खुजली, दाद, जो मनुज साँपनियों से पाय।
इनका अति ही कष्ट-दा विष नीरस हो जाय।।

मंत्र- कर्णा श्वावित्तदब्रवीद्विरेरवचरन्तिका।
याः काश्चेमा खनित्रिमास्तासामरसतमं विषम्।।९।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पर्वत नीचे घूमती फिरती इत उठ डोल।
कान वाली उस साही ने कहा मधुर यह बोल।।
यह सब भूमि खोद जो वास-थली को पाँय।
उन सब ही में छिपा विष अति निर्बल हो जाय।।

मंत्र- ताबुवं न ताबुवं न धेत्त्ववमसि ताबुवम्। ताबुवेनारसं विषम्।।१०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

वृद्धिकर वस्तु सदा पीड़ाओं को खोय।
निश्चय ही हे सर्प! तू दुःखनाशक नहि होय।।
हम जो करते वृद्धि-कर कर्म सदा हर्षाय।
उनसे जीवन-हर तेरा विष निर्बल हो जाय।।

मंत्र- तस्तुवं न तस्तुवं न धेत्त्वमसि तस्तुवम्। तस्तुवेनारसं विषम्।।११।।

काव्यार्थ- **दोहा**

निन्दानाशक सम नहीं निन्दाप्रापक चीज।
निन्दाप्रापक सर्प तज तू अपयश के बीज।।
हम जो निन्दा नाश के कर्म करें हर्षाय।
उससे तेरा विष निबल शक्तिहीन हो जाय।।

सूक्त १४

मंत्र- सुपर्णस्त्वान्वविन्दत्सूकरस्त्वाखनन्नसा।
दिप्सौषधे त्वं दिप्सन्तमव कृत्याकृतं जहि।।१।।

काव्यार्थ-गरूड़, गिद्र आदिक सुपर्ण अरू दूरदर्शी पक्षी सम-
रहे व्यक्ति ने हे अरि-नाशक तुझे ढूँढ कर पाया;
नासिका द्वारा भूमि खोदते रहे एक सूकर सम,
तीव्र बुद्धि, बलवान पुरूष है तुझे खोद कर लाया;
हे ऐसे अदम्य ताप के नाशक वीर पुरूष! तू-
नाशक का कर नाश, नष्ट कर दे हिंसक की काया।

मंत्र- अव जहि यातुधानानव कृत्याकृतं जहि।
अथो यो अस्मान्दिप्सति तमु त्वं जल जह्योषधे।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जो देते हैं यातना उनकी गर्दन तोड़।
अरू जो हिंसारत रहें उन्हें न जीवित छोड़।।
हमें मारना चाहता जो देकर दुःख राश।
हे औषधि सम ताप हर उसका कर दे नाश।।

मंत्र- रिश्यस्येव परीशासं परिकृत्य परि त्वचः।
कृत्यां कृत्याकृते देवा निष्कमिव प्रति मुन्चय।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे विद्वानों! हिंस्र की हिंसा शक्ति कराल।
उसके तन से काट कर बहुत दूर दो डाल।।
हिंसक नर के हेतु जो हिंसा कंटक शूल।
उसको तलछट जानकर फेंको दूर समूल।।

मंत्र- पुनः कृत्यां कृत्याकृते हस्तगृह्य परा णय सिमक्षमस्मा
आ धेहि यथा कृत्याकृतं हनत्।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

उपद्रवी को हाथ धर कर देते ज्यों दूर।
त्यों हिंसक की वृत्ति को करो दूर भरपूर।।
उस नर के सम्मुख रखो तत् हिंसा को जोड़।
जिससे वह दुष्कर्म को मूल सहित दे छोड़।।

मंत्र- कृत्याः सन्तु कृत्याकृते शपथः शपथीमते।
सुखो रथ इव वर्तातां कृत्या कृत्याकृतं पुनः।।५।।

काव्यार्थ- हिंसक की सेनाएं हिंसक के ऊपर ही लौंटे,
तथा गालियाँ, गाली देने वाले पर ही जायें,
अच्छे बने सुखद रथ भाँति, घातक के दुरूपाय,
घातक के ऊपर ही पहुँचे, उसका सब कुछ खायें।

मंत्र- यदि स्त्री यदि वा पुमान्कृत्यां चकार पाप्मने।
तामु तमै नयामस्यश्वमिवाश्वाभिधान्या।।६।।

काव्यार्थ-चाहे किसी नारी ने अथवा चाहे किसी पुरूष ने,
पाप कर्म करने के हेतु जो भी हिंसा की है;
जैसे अश्व बाँधने की रस्सी को अश्व पास ले जाते,
वैस हमने उसकी हिंसा पुनः उसी को दी है।

मंत्र- यदि वासि देवकृता यदिवा पुरूषैः कृता।
तां त्वा पुनर्णयामसीन्द्रेण सयुजा वयम्।।७।।

काव्यार्थ- हे विपत्ति! की गयी भले तू सूर्य आदि लोकों से,
अथवा तू की गयी है चाहे स्त्री-पुरूषों द्वारा;
सहयोगी ऐश्वर्य साथ प्रतिकार तेरा हम करते,
तुझको पुनः हटा देते हैं, लेकर प्रभु सहारा।

मंत्र- अग्ने पृतनाषाट् पृतनाः सहस्व। पुनः कृत्यां
कृत्याकृते प्रतिहरणेन हरामसि।।८।।

काव्यार्थ-हे अग्नि सम ज्योतिपूर्ण, अति तेजवान सेनापति!
हे संग्राम जीतने वाले! संग्राम जीता कर;
तेरे साथ हम हिंसा को हिंसक के प्रति लौटाते,
अरि सेना का नाश किया करते, उसको रीता कर।

मंत्र- कृतव्यधनि विध्य तं यश्चकार तमिज्जहि।
न त्वामचक्रुषे वयं वधाय सं शिशीमहि।।९।।

काव्यार्थ-छेदक शस्त्रों युक्त वीर! तू छेद चोर आदिक को,
उसको छेद अवश्य क्रूर बन, जो कि प्राण हरता है;
हम उसके वध हेतु तुझको प्रेरित कभी न करते,
जो रहता है सदा अहिंसक, हिंसा से डरता है।

मंत्र- पुत्र इव पितरं गच्छ स्वजश्इवाभिष्ठितो दश।
बन्धुमिवावक्रामी गच्छकृत्ये कृत्याकृतं पुनः।।१०।।

काव्यार्थ-हे सेना के पुत्र समान सैनिकों! सदा पिता सम-
अपने सेनापत से नित ही मिलते रहो मुदित हो;
सदा शत्रु को डसो लिपटने वाले सर्प समान,
डंक तुम्हारे से तव शत्रु पीड़ित महा दुखित हो;
बंधन के प्रति जाने के समान, हे हिसंक शक्ति!
तू हिसंक को पुनः प्राप्त हो अधिका अधिक कुपित हो।

मंत्र- उदेणीव वारण्यऽभिस्कन्दं मृगीव। कृत्या कर्तारमृच्छतु।।११।।

काव्यार्थ- जैसे हथिनी, कृष्ण मृगी या मृगी घेर ली जाकर,
क्रोधित होकर आखेटक के ऊपर दौड़ पड़े;
वैसे अपनी शत्रु-विनाशक सेना, शत्रु-दल पर,
अविलम्ब आक्रमण करे, शत्रु रण छोड़ भगे!
इष्टवा ऋजीयः पततु द्यावापृथिवी तं प्रति। सा तं
मृगमिव ग्रहणातु कृत्या कृत्याकृतं पुनः।।१२।।

काव्यार्थ-पृथिवी अरू आकाश मार्ग से प्रबल हमारी सेना;
वाण समान शत्रुओं ऊपर सीधी आन गिरे;
हिंसाकारी सभी शत्रु वह पकड़ा करे तदन्तर,
जैसे मृग आखेटक द्वारा पकड़ा आन घिरे।

मंत्र- अग्निरिवैतु प्रतिकूलमनुकूलमिवोदकम्।
सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः।।१३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

जंगल के बीच लगी दाव-अग्नि जिस भाँति,
जब लग जाती, फिर रोके नहीं रूकती;
जिस भाँति सरिता के जल के प्रवाह की भी,
तटों बीच कभी चाल रोके नहीं रूकती।
जिस भाँति शुभ रीति सुन्दर सुदृढ़ बना,
रथ मार्ग बीच निज चाल चले ठुकती
वैसे शत्रुओं पर हमारी सेना अति शीघ्र-
टूट पड़े, एक भी न प्राप्त करे युक्ती।।

सूक्त १५

मंत्र- एका च मे दश चमेऽपवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

मेरे लिये निन्दक खड़े हों एक या कि दस,
जो कि मुझे प्रतिबन्ध करना दिखात हैं,
सत्य मार्ग से मैं इनका करूँगा प्रतिकार,
परमेश-शक्ति तू सदैव मेरे साथ है।
सत्य जनिता की सत्यशील ताप नाशक तू,
जननी मधुरता की, मधुर निवास है;
मेरे हेतु सर्वत्र मधुरता थाप दे तू,
तू है जब साथ, विघ्नों की क्या बिसात है।।

मंत्र- द्वे च में विंशतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

मेरे लिये निन्दक खड़े हों दो या कि बीस,
जो कि मुझे प्रतिबन्ध करना दिखात है;
सत्य मार्ग से मैं इनका करूँगा प्रतिकार,
परमेश-शक्ति तू सदैव मेरे साथ है।
सत्य जनिता की सत्यशील, ताप-नाशक तू,
जननी मधुरता की, मधुर निवास है;
मेरे हेतु सर्वत्र मधुरता थाप दे तू,
तू है जब साथ, विघ्नों की क्या बिसात है।।

मंत्र- तिस्रसे त्रिंशच्च मेऽपवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

मेरे लिये निन्दक खड़े हों दो या कि तीस,
जो कि मुझे प्रतिबन्ध करना दिखात है;
सत्य मार्ग से मैं इनका करूँगा, प्रतिकार,
परमेश-शक्ति तू सदैव मेरे साथ है।
सत्य जनिता की सत्यशील, ताप-नाशक तू,
जननी मधुरता की, मधुर निवास है;
मेरे हेतु सर्वत्र मधुरता थाप दे तू,
तू है जब साथ, विघ्नों की क्या बिसात है।।

मंत्र- चतस्रश्च मे चत्वारिंशच्च मेऽपवतार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

मेरे लिये निन्दक खड़े हों दो या कि तीस,
जो कि मुझे प्रतिबन्ध करना दिखात है;
सत्य मार्ग से मैं इनका करूँगा, प्रतिकार,
परमेश-शक्ति तू सदैव मेरे साथ है।

सत्य जनिता की सत्यशील, ताप-नाशक तू,
जननी मधुरता की, मधुर निवास है;
मेरे हेतु सर्वत्र मधुरता थाप दे तू,
तू है जब साथ, विघ्नों की क्या बिसात है।।

मंत्र- पञ्च च मे पन्चाशच्च मेऽपवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

मेरे लिये निन्दक हों पॉच या पचास जो कि-
सर्वदा ही प्रतिबन्ध करना दिखात हैं;
सत्य मार्ग से मैं इनका करूँगा प्रतिकार,
परमेश-शक्ति तू सदैव मेरे साथ है।
सत्य जनिता की सत्यशील, ताप-नाशक तू,
जननी मधुरता की, मधुर निवास है;
मम हेतु सर्वत्र मधुरता थाप दे तू,
तू है जब साथ, विघ्नों की क्या बिसात है।।

मंत्र- षट् च में षष्टिश्च मेऽपवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

मेरे लिये निन्दक हों सात या सत्तर भी-
जो कि मुझे प्रतिबन्ध करना दिखात हैं;
सत्य मार्ग से मैं इनका करूँगा प्रतिकार,
परमेश-शक्ति तू सदैव मेरे साथ है।
सत्य जनिताकी सत्यशील तापनाशक तू,
जननी मधुरता की, मधुर निवास है:
मम हेतु सर्वत्र मधुरता थाप दे तू,
तू है जब साथ, विघ्नों की क्या बिसात है।।

मंत्र- सप्त चे मे सप्तिश्च च मेऽपवक्त्सार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः।।७।।

काव्यार्थ-- **कवित्त**

मेरे लिये निन्दक हों सात या कि सत्तर भी,
जो कि मुझे प्रतिबन्ध करना दिखाता है;
सत्य मार्ग से मैं इनका करूंगा प्रतिकार,
परमेशशक्ति तू सदैव मेरे साथ है।
सत्य जनिता की सत्यशील ताप-नाशक तू,
जननी मधुरता की, मधुर निवास है;
मम हेतु सर्वत्र मधुरता थाप दे तू,
तू है जब साथ, विघ्नों की क्या बिसात है।।

मंत्र- अष्ट च में शीतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः।।८।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

आठ या कि अस्सी मम हेतु यदि निन्दक हों,
जो कि मुझे प्रतिबन्ध करना दिखात हैं;
सत्य मार्ग से मैं इनका करूँगा प्रतिकार,
परमेश-शक्ति तू सदैव मेरे साथ है।
सत्य जनिता की सत्यशील, ताप-नाशक तू,
जननी मधुरता की, मधुर निवास है;
मेरे हेतु सर्वत्र मधुरता थाप दे तू,
तू है जब साथ, विघ्नों की क्या बिसात है।।

मंत्र- नव च में नवतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः।।९।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

नौ या नब्बे निन्दक बनें हो मम हेतु ऐसे-
जो कि मुझे प्रतिबन्ध करना दिखात हैं;
सत्य मार्ग से मैं इनका करूँगा प्रतिकार,
परमेश-शक्ति तू सदैव मेरे साथ है।

सत्य जनिता की सत्यशील, ताप-नाशक तू,
जननी मधुरता की, मधुर निवास है;
मेरे हेतु सर्वत्र मधुरता थाप दे तू,
तू है जब साथ, विघ्नों की क्या बिसात है।।

मंत्र- दश च मैं शंत च मेऽपवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः।।१०।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

दस या कि सौ भी ऐसे निन्दक बने हों मेरें,
जो कि मुझे प्रतिबन्ध करना दिखात हैं;
सत्य मार्ग से मैं इनका करूँगा प्रतिकार,
परमेश-शक्ति तू सदैव मेरे साथ है।
सत्य जनिता की सत्यशील, ताप-नाशक तू,
जननी मधुरता की, मधुर निवास है;
मेरे हेतु सर्वत्र मधुरता थाप दे तू,
तू है जब साथ, विघ्नों की क्या बिसात है।।

मंत्र- शतं च सहस्रं चापवक्तार ओषधे।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः।।११।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

शत या सहस्र मम हेतु ऐसे निन्दक हों,
जो कि मुझे प्रतिबन्ध करना दिखात हैं;
सत्य मार्ग से मैं इनका करूँगा प्रतिकार,
परमेश-शक्ति तू सदैव मेरे साथ है।
सत्य जनिता की सत्यशील, ताप-नाशक तू,
जननी मधुरता की, मधुर निवास है;
मेरे हेतु सर्वत्र मधुरता थाप दे तू,
तू है जब साथ, विघ्नों की क्या बिसात है।।

सूक्त १६

मंत्र- यद्येकवृषोऽसि सृजारसोऽसि।।१।।

काव्यार्थ- यदि एक प्रभु साथ से तू ऐश्वर्यवान।
तो तू बन पुरूषार्थी नहीं विपर्य जान।।

मंत्र- यदि द्विवषोऽसि सृजारसोऽसि।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

यदि आत्मा, परमात्मा दो से हुआ समर्थ।
तो तू अपना बल बढ़ा नहीं, जन्म है व्यर्थ।

मंत्र- यदि त्रिवृषोऽसि सृजारसोऽसि।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

यदि सत्, रज तम त्रिगुणों से तू हुआ समर्थ।
तो तू अपना बल बढ़ा, नहीं जन्म है व्यर्थ।।

मंत्र- यदि चतुर्वृषोऽसि सृजारसोऽसि।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष से यदि तू हुआ समर्थ।
तो इनसे पुरूषार्थ कर नहीं, जन्म है व्यर्थ।।

मंत्र- यदि पन्चवृषोऽमि सृजारसोऽसि।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पंच भूतों द्वारा यदि तू है हुआ समर्थ।
तो इनसे उपकार ले नहीं जन्म है व्यर्थ।।
(पंच भूत- पृथिवी, जल, सूर्य, वायु, आकाश)

मंत्र- यदि षड्वृषोऽसि सृजारसोऽसि।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

पतन मूल षड् वर्गपर यदि तू हुआ समर्थ।
तो तू वश में रख इन्हें नहीं जन्म है व्यर्थ।
षड् वर्ग-काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, अहंकार

मंत्र- यदिसप्त वृषोऽसि सृजारसोऽसि।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे नर! सात ऋषियों पर यदि तू हुआ समर्थ।
तो इनसे पुरूषार्थ कर नहीं जन्म है व्यर्थ।।
(सात ऋषि-पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि)

मंत्र- यद्यष्टवृषोऽसि सृजारसोऽसि।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

आठ योग के अंगों में यदि तू हुआ समर्थ।
तो तू इनसे बल बढ़ा नहीं जन्म है व्यर्थ।।

मंत्र- यदि नववृषोऽसि सृजारसोऽसि।।९।।

काव्यार्थ- **दोहा**

नव द्वार तन से हुआ यदि तू मनुज समर्थ।
तो इनको पावन बना नहीं जन्म है व्यर्थ।।
(नव द्वार-दो कान, दो आँखें, दो नथने, एक मुख, एक पायु, एक उपस्थेन्द्रिय)

मंत्र- यदि दशवृषोऽसि सृजारसोऽसि।।१०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तू है नर यदि दस बलों से ऐश्वर्यवान।
तब तू अति बलवान है नहीं तो निर्बल जान।।
(दस बल-दान, शील, क्षमा, वीर्य, ध्यान, प्रज्ञा, सेनाऐं, उपाय, दूत, ज्ञान)

मंत्र- यद्येकादशोऽसि सोऽपोदकोऽसि।।११।।

काव्यार्थ- **दोहा**

यदि तू दस को तज, स्वयं को ग्यारहवाँ कीन।
तब सामर्थ्यहीन है जीवन-रस से हीन।।

सूक्त १७

मंत्र- तेऽवदन्प्रथमा ब्रह्मकिल्विषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा।
वीडुहरास्तप उग्रं मयोमूरापो देवीः प्रथमजा ऋतस्य।।१।।

काव्यार्थ- जो पहले उत्पन्न हुए अत्यन्त मुख्य तेजस्वी,
सूर्य तथा सुख देने वाला चन्द्र, अगाध समुद्र;
दिव्य गुणों से युक्त रही अति व्यापनशील प्रजाऐं,
अरू आकाशगामी कल्याणी वायु, अग्नि उग्र;
इन सबने प्रभु से बातें की ब्रह्मवादी सम्बन्धी-
पापाचरण विषय में जिसका कर्ता पापी क्षुद्र।

मंत्र- सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदह्णीयमानः।
अन्नवर्तिता वरूणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय।।२।।

काव्यार्थ- क्रोध न करते हुए, मुदित होकर के मुख्य राजा-
परमात्मा ने ब्रह्म विद्या का पावन दान दिया है;
व्यक्ति बुद्धिमान अति श्रेष्ठ था सुपात्र ग्रहीता,
उसी व्यक्ति ने ब्रह्म-विद्या को सादर ग्रहण किया है।

मंत्र- हस्तै नैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेति चेदवोचत्।
न दूताय प्रहेया तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य।।३।।

काव्यार्थ-उसी विज्ञ ने कहा कि यह है ब्रह्मविद्या कल्याणी,
इसका दृढ़ता से आश्रय लेना, इसमें सुख महता;
पर पीड़क को ब्रह्म-विद्या प्रदान नहीं की जाती,
ब्रह्म-विद्या से ही क्षत्रिय का राज्य सुरक्षित रहता।

मंत्र- यामाहुस्तारकैषा विकेशीति दुच्छुनां ग्राममवपद्यमानाम्।
सा ब्रह्मजाया वि दुनोति राष्ट्रं प्रापादि शश उल्कुषीमान्।।४।।

काव्यार्थ-जिसको लोग ग्राम पर गिरती हुई विपत्ति कहते,
वह विरूद्व प्रकाश वाला एक तारा रहा अविद्या;
गिरता है यह जहाँ, वहाँ का अत्याचारी राज्य-
हिल जाता है, जब विनष्ट हो जाती, ब्रह्म-विद्या।

मंत्र- ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम्।
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेननीतां जुह्वंन्नदेवाः।५।।

काव्यार्थ- ब्रह्मविद्या कर प्राप्त, ब्रह्मचारी जिस काल प्रजा की-
सेवा करता हुआ, अखिल जग में विचरण करता है;
तब वह महनीय विद्याओं का रक्षक ब्रह्मचारी,
विद्वानों का मुख्य अंग होकर मन को हरता है;
लायी गयी प्रभु के द्वारा सुख उत्पादक, अति दानी-
विद्या को इस कारण अब वह ब्रह्मचारी वरता है।

मंत्र- देवा वा एतस्यामवदन्त पूर्वे सतऋषस्तपसा ये निषेदुः।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धा दधाति परमेव्योमन्।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

त्वचा, नेत्र, कान, जिह्व, नाक, मन और बुद्धि,
इन सात द्वारा जिन ऋषियों के समाज ने;
पूर्व काल में कठोर तप को किया था, वह-
ब्रह्म-विद्या का सत्य लगे थे उचारने।
बार बार बोला, जहाँ वेद-विद्या-अपमान,
और दुर्व्यवहार लगता है जहाँ साजने;
वहाँ पर निश्चय ही पड़ती विपत्ति घोर,
गर्जन दुःखों का वहाँ लगता है गाजने।।

मंत्र- ये गर्भा अवपद्यन्ते जगद्यच्चापलुप्यते।
वीरा ये तृह्यन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिनस्ति तान्।।७।।

काव्यार्थ- गिर पड़ते हैं गर्भ राष्ट्र में, चलने वाले प्राणी-
होते नष्ट, वीर आपस में लड़ मरते प्रतिपल हैं;
तब यह समझो वेद-विद्या का उस थल लोप हुआ है,
यह कुनीति को प्राप्त ब्रह्म-विद्या का दुःख-दा फल है।

मंत्र- उत यत्पतयो दश स्त्रियाःपूर्वे अब्राह्मणः।
ब्रह्म चेद्धस्तमग्रहीत्स एव पतिरेकधा।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अविद्वान् दस या भले और अधिक हो जाँय।
वह मिल ब्रह्म विद्या की रक्षा ना कर पाँय।।
ब्रह्मज्ञानी इकला कि जो रक्षा बीड़ा उठाय।
है प्रधान रक्षक वही दूसरा कोई नाय।।

मंत्र- ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्योऽन वैश्यः।
तन्सूर्यः प्रब्रुवन्नेति पन्चम्यो मानवेभ्यः।।९।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ब्राह्मण रक्षक वेद का क्षत्रिय, वैश्य नहिं होय।
प्रभु मनुजों से यह वचन कहता चलता होय।।

मंत्र- पुनर्वे देवा अददुः पुनर्मनुष्या अददुः।
राजानः सत्यं गृह्णाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः।।१०।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

दिव्य गुण युक्त सूर्य आदि देवता गणो नें,
निश्चय कर ब्रह्मविद्या का किया दान है;
जितने मननशील मानव रहे, सभी ने-
निश्चय कर ब्रह्मविद्या का किया दान है।
सत्य को ग्रहण करते हुए सभी नृपों नें,
निश्चय कर ब्रह्मविद्या का किया दान है;
जैने इन सबने किया है ब्रह्मविद्या दान,
वैसे सब करें दान, काम यह महान् है।

मंत्र- युनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्निकिल्विषम्।
ऊर्जं पृथिव्याभक्त्वोरुगाय मुपासते।।११।।

काव्यार्थ- **दोहा**

वेद-ज्ञान से चित्त को करके शुद्ध अपार।
मनुज पाप से छूटते उत्तम गुण को धार।।
भू के पोषक अन्न को पाकर, सबमें बाट।
महत् कीर्तिधारी प्रभु के बनते हैं भाट।।

मंत्र- नास्या जाया शतवाही कल्याणी तल्पमा शये।
यस्मिन् राष्ट्रे निरूध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या।।१२।।

काव्यार्थ- वेद-विद्या को जिस राज्य अज्ञान रोकता आये,
वहाँ मनुज की कल्याणी यह नहीं प्रतिष्ठा पाती;
यह विद्या जो कर्म सैकड़ों पूर्ण किया करती है,
उस राज्य में अपमानित हो, सदा ठोकरें खाती।

मंत्र- न विकर्णः पृथशिरास्तस्मिन्वेश्मनि जायते।
यस्मिन् राष्ट्रे निरूध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या।।१३।।

काव्यार्थ- वेद-विद्या को जिस राज्य अज्ञान रोकता आये,
वहाँ विशेष श्रवण-शक्ति का व्यक्ति कोई न होता;
अरू विस्तीर्ण मानसिक शक्ति का न कोई मिलता है,
रहता दीन मलीन व्यक्ति है, अपना वैभव खोता।

मंत्र- नास्य क्षत्ता निष्कग्रीवः। सूनानामेत्यग्रतः।
यस्मिन् राष्ट्रे निरूध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या।।१४।।

काव्यार्थ- वेद-विद्या को जिस राज्य अज्ञान रोकता आये,
स्वार्थ वहाँ रहता है, रहता कोई नहीं दाता है;
द्वारपाल निज गले स्वर्ण-आभूषण को धारण कर,
ऐश्वर्यवान् पुरूषों के सम्मुख कभी नही जाता है।

मंत्र- नास्य श्वेतः कृष्णकर्णो धुरि युक्तो महीयते।
यस्मिन् राष्ट्रे निरूध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या।।१५।।

काव्यार्थ-वेद-विद्या को जिस राज्य अज्ञान रोकता आये,
उस राज्य का पुरूष वेद-विद्या विहीन होता है;
उसके पास श्वेत श्याम वर्ण का सुन्दर घोड़ा,
रथ में जुता हुआ अपना सम्मान सदा खोता है।

मंत्र- नास्य क्षेत्रे पुष्करिणी नाण्डीकं जायते बिसम्।
यस्मिन् राष्ट्रे निरूध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या।।१६।।

काव्यार्थ-वेद-विद्या को जिस राज्य अज्ञान रोकता आये,
वहाँ खेत में कोई पोषण शक्ति नहीं होती है;
न ही प्राप्ति के योग्य तथा बलदायक वस्तु होती;
जनता वहाँ अभावों अन्दर पड़ी हुई रोती है।

मंत्र- नाम्मै पृश्निं किं दुहन्ति येऽस्या दोहमुपासते।
यस्मिन् राष्ट्रे निरूध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या।।१७।।

काव्यार्थ-वेद-विद्या को जिस राज्य अज्ञान रोकता आये,
वहाँ लोग राजा हित पृथिवी नहीं दुहा करते हैं;
स्वयं-स्वयं ही पृथिवी रस का पान किया करते, पर-
राजा के हित दीर्ध आयु की नहीं दुआ करते हैं।

मंत्र- नास्य धेनुः कल्याणी नानड्वान्त्सहते धुरम्।
विजानिर्यत्र ब्राह्मणों रात्रिं वसति पापया।।१८।।

काव्यार्थ-जिस राज्य में विद्या के अभ्यास बिना ही ब्राह्मण,
सहता हुआ रात भर पीड़ा वास किया करता है;
उस राज्य में दुर्बल गौ होती न कभी कल्याणी,
द्दकड़े जुता बैल जुए पर पीर पिया करता है।

सूक्त १८

मंत्र- नैतां ते देवा अददुस्तुभ्यं नृपते अत्तवे।
मा ब्राह्मणस्य राजन्य गां जिघन्सो अनाद्याम्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**
नृपति! ज्ञानियों ने तेरे वेद-वाणी सुख-सेतु।
तुझको सौंपी है नहीं नाश करन के हेतु।।
वेद-वेत्ता पुरूष की अविनाशी यह वाणी।
राजन्! नष्ट न कर इसे रख सँभाल निज पाणि।।

मंत्र- अक्षद्रुग्धो राजन्यः पाप आत्मपराजितः।
स ब्राह्मणस्य गामद्यादद्य जीवानि मा श्वः।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**
यदि पापी अजितेन्द्रिय आत्मपराजित भूप।
हने वाणी ब्रह्मज्ञ की पड़े मृत्यु के कूप।।
तत् जीवन घट जाय, वह अपनी साँसे खोय।।
आज जीवे वह, कल नहीं क्या कह सकता कोय।।

मंत्र- आविष्टताघविषा प्रदाकूरिव चर्मणा। सा ब्राह्मणस्य
राजन्य तृष्टैषा गौरनाद्या।।३।।

काव्यार्थ-हे राजन्! जब साँपिन अपनी काँचुली छोड़ा करती,
तब वह घोर विषैली प्यासी हो फुंकारें भरती।
तत् समान ब्रह्म-विद्या है, नष्ट नहीं होती जो,
किन्तु अविद्या फैल, नष्ट करती इसकी ज्योति को।
तब वह ब्रह्मविद्या भी विषमय फुंकारें भरती है,
चहुँ दिशि घोर विपत्ति फैला कर व्याकुल करती है।

मंत्र- निर्वै क्षत्रं नयति हन्ति वर्चोऽग्निरिवारब्धो वि दुनोति सर्वम्।
यो ब्राह्मणं मन्यते अन्नमेव स विषस्य पिबृति तैमातस्य।।४।

काव्यार्थ- **दोहा**

ब्रह्मज्ञानी को भोग का विषय मान जो वीर।
करता तत् अपमान जब देता उसको पीर।।
तब वह मानो साँप के विष का करता पान।
ब्रह्मज्ञानी निःशेष कर लेता उसकी जान।।
वह धन, बल से हीन कर हरे तेज की साख।
चहुँ दिशि लागी अग्नि सम सब कुछ करता राख।।

मंत्र- य एनं हन्ति मृदुं मन्यमानो देवपीयुर्धवकामो न चित्तात्।
सं तस्येन्द्रो हृदयेऽग्निमिन्ध उभे एवं द्विष्टो नभसी चरन्तम्।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

विज्ञों का हिंसक बना धन लोभी इन्सान।
जब विचार बिन ब्राह्मण को अशक्त ले मान।।
उसको करता नष्ट जब तब प्रभु वैभववान।
अग्नि जला तत् हृदय में करता राख समान।
सूर्य तथा पृथिवी दुहु लोकों के इन्सान।
द्वेष करें उस व्यक्ति से देय नहीं सम्मान।।

मंत्र- न ब्राह्मणों हिंसितन्योऽग्निः प्रियतनोरिव।
सोमोह्यऽस्य दायाद इन्द्रो अस्याभिशस्तिपाः।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तन को लगता प्रिय सदा अग्नि सरीखा भाय।
ऐसे ब्रह्मज्ञानी को कोई नहीं सताय।।
सूर्य शाप रक्षक इसे दाय-भागी है चन्द्र।
प्रबल शक्ति है धारता रंच नहीं है रन्ध्र।।

मंत्र- शतापाष्ठां नि गिरति तां न शक्नोति निः खिदन्।
अन्नं यो ब्रह्मणां मल्वः स्वाद्वद्मीति मन्यते।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जो मलीन नर हृदय में रखता है यह चेतु।
ब्राह्मणों का अन्न है निज भोग के हेतु।।
ऐसा समझे, स्वाद से करता इसका भोग।
वह शतशः दुर्गति लभ उसे ग्रसें लख रोग।।
उसे पचाने में कभी होता नहीं समर्थ।
नष्ट करे सामर्थ्य निज सकल यत्न हैं व्यर्थ।।

मंत्र- जिह्वाज्या भवति कुल्मलं वाङ्.नाड़ीका दन्तास्तपसाभिदिग्धाः
तेभिर्ब्रह्मा विध्यति देवपयून्हृद्बलैर्धनुर्भिर्देवजूतैः।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

दुष्ट-हृदय भंजक धनुष करने अरिदल नाश।
विज्ञों ने भेजे हुए ब्राह्मणों के पास।।
जिह्वा जिनकी डोर है वाणी दण्ड अनूप।
तपः तीक्ष्ण तत् दाँत हैं उनके वाण स्वरूप।।
उन धनुषों को धारकर ब्राह्मण लोग सकाश।
करते विज्ञ विरोधी सब दुष्ट जनों का नाश।।

मंत्र- तीक्ष्णेषवो ब्राह्मण हेतिमन्तो यामस्यन्ति शख्यां३नसा मृषा।
अनुहाय तपसा मन्युना चोत दूरादव मिन्दन्त्येनम्।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तीक्ष्ण वाण अरू बरछियों वाले ब्राह्मण ब्राह्मण लोग।
वाण-झी को छोड़ते करते सार्थ प्रयोग।।
पीछा करते शत्रु का तप, क्रोध के साथ।
हन वैरी को दूर से झुकवाते हैं साथ।।

मंत्र- ये सहस्रमराजन्नासन्दशशता उत। ब्राह्मण स्य
गां जग्ध्वा वैतहव्याः पराभवन्।।१०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

बली सहस्र सैन्य दल पर जो करते राज।
तथा स्वयं दस सौ का था जिनका रहा समाज।।
वह ब्राह्मण की वाणी हन खा देवों का हव्य।
हार गये तत्काल ही यही रहा भवितव्य।।

मंत्र- गौरेव तान्हन्यमाना वैतहव्याँ अवतिरत्।
ये केसरप्राबन्धायाश्चरमाजामपेचिरन्।।११।।

काव्यार्थ- **दोहा**

आत्मा में गतिमय अबन्ध प्रभुवर की शक्ति।
व्यापक वेद विद्या के नाशक थे जो व्यक्ति।।
मर्दित वाणी ने किया उनका पूर्ण विनाश।
जो देवों का अन्न खा कर, करते थे हास।।

मंत्र- एकशतं ता जनता या भूमिर्व्यधूनुत।
प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराभवन्।।१२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

एक सौ एक वीर वह थे बल के आगार।
निज विक्रम से भूमि को हिला दिया एक बार।।
लेकिन ब्राह्मण की प्रजा को दे कष्ट अपार।
बिना किसी संभावना गये सहज में हार।।

मंत्र- देवपीयूष्वरति मर्त्येषु गरगीर्णो भवत्यभूस्थिमृयान्।
यो ब्राह्मण ं देवबन्धुं हिनस्ति स न पितृयाणमप्येति लोकम्।।१३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

विद्वानों को सताता देता उनको कष्ट।
नर समाज के बीच जो चलता फिरता भ्रष्ट।।
वह ईष्यालु व्यक्ति, तन मन से निर्बल होय।
जैसे विष को पिये, अति कृषकाय हो कोय।।
जो दूषित-व्यक्ति घिरा अज्ञान की भीर।
महात्माओं के बन्धु ब्राह्मण को देता पीर।।
वह पालक-विद्वानों का पाने योग्य लोक।
कभी न पाता है, तथा पाता अतिशय शोक।।

मंत्र- अग्निर्वे नः पदवायः सोमो दायाद उच्यते।
हन्ताभिशस्तेन्द्रस्तथा तद्वेधसो विदुः।।१४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हम सब जन का सूर्य ही पथ-दर्शक है एक।
दाय-भागी है चन्द्रमा हितकारी अरू नेक।।
शाप प्रदाता के लिये नाशक प्रभू-कृशान।
वैसा ही उस बात को जानत सब विद्वान्।।

मंत्र- इषुरिव दिग्धा नृपते पृदाकूरिव गोपते।
सा ब्राह्मणस्येषुर्घोरा तया विध्यति पीयत।।१५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे नरपते! हे भूपते! ब्राह्मण का ब्रह्मज्ञान।
भय-दा बरछी सम तथा विषमय बाण समान।।
साँपिन ज्यों फुंकारती त्यों करता फुंकार।
उसे सताता जो, उसे छेदे भली प्रकार।।

सूक्त १६

मंत्र- अति मात्रमवर्धन्त नोदिव दिवमस्पृशन्।
भृगुं हिंसित्वा सृज्जया वैतहव्याः पराभवन्।।१।।

काव्यार्थ- करके चढ़ाई शत्रुओं को जीतने वाले,
जो इतना उठे जैसे द्यु-लोक छुआ हो,
वह जिस समय देवों के लिये दत्त हव्य को,
खाने लगे जैसे कि उन्हीं हेतु हुआ हो।
परिपक्व ज्ञानियों को सताने लगे इतना,
लगने लगा उनको कि वह काँधे का जुआ हो;
इस कर्म से वह वीर पराभूत हो गये,
दुष्कर्म, खाई अग्र बनी पश्च कुँआ हो।

मंत्र- ये ब्रह्तसामानमाङ्गिरसमार्पश्यन्ब्राह्मणं जनाः।
अस्तस्ते षामुभयादमविस्तोकान्यावयत्।।२।।

काव्यार्थ- दुःख -नाश-कर्ता-ज्ञान, विज्ञान के धनी
जिन ब्रह्म-ज्ञानियों को पापियों ने सताया;
जो लेने वाले बन गये हमारी पूर्ति के,
नित-नित जिन्होंने कर्म दुराचार बनाया;
वेदज्ञ ज्ञान-वान, रक्षकों ने हमारे,
तत् बुद्धि-कर्म नाशते, यमद्वार दिखाया

मंत्र- ये ब्राह्मणं प्रत्यष्ठभ्वन्ये वास्मिन्कुल्कमीषिरे
अस्नस्ते मध्ये कुल्यायाः केशान्खादन्त आसते।।३।।

काव्यार्थ- जो दुष्ट करते ब्रह्म-ज्ञानियों का निरादर,
या उनसे कर उगाहते धन को हैं छीनते;
वह रक्त-सरित बीच अति क्लीवतम रहे,
भोज्य-पदार्थ खाते ठहरते हैं दीन से।

मंत्र- ब्रह्मगवी पच्यमाना यावसाभि विजंगहे।
तेजो राष्ट्रस्य निर्हन्ति न वीरो जायते वृषा।।४।।

काव्यार्थ- वह ब्रह्म-वाणी दुष्टों से तपी हुई, जब तक-
अति फड़फड़ाती रहती है, व्याकुल बनी हुई;
तब तक मिटाती रहती है वह तेज राज्य का,
जनता रहा करती है दुःखों में सनी हुई;
उत्पन्न नहीं होता वहाँ कोई वीर है,
नैराश्य की बदरी वहां रहती घनी हुई

मंत्र- क्रूरमस्या आशसनं तुष्टं पिशितमस्यते।
क्षीरं यदस्याः पीचे तद्वै पितृषु किल्बिषम्।।५।।

काव्यार्थ- अति क्रूर कर्म वेद-वाणी कष्ट में रखना,
खण्डन है प्यास के समान दाह का जनक;
पीड़ा समाप्त करने वाले कर्म को इसके,
करना समाप्त मात्र पागलों की है सनक;
तत् कर्म रहा पाप है कहते हैं वीर जन,
उनके लिए कल्याणी वेद-वाणी है कनक।

मंत्र- उग्रो राजा मन्थमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति। परा तत्सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते।।६।।

काव्यार्थ-- अपने को अत्यन्त बली मानता हुआ,
जो राजा वेद-वेत्ता ब्राह्मण को कष्ट दे,
अरू नष्ट करनाचाहे, वह हो जाता नष्ट है,
तत् राज्य पूर्ण नष्ट होता, कष्ट सृष्टते।

मंत्र- अष्टापदी चतुरक्षी चतुः श्रोत्रा चतुर्हनु। द्वयास्य
द्विजिह्व भूत्वा सा राष्ट्रभव धूनुतेब्रह्मज्यस्य।।६।।

काव्यार्थ-- कल्याणी वेद-वाणी चारों वर्णों में व्याप्त,
चारों ही आश्रमों में श्रवण-शक्ति धारती;
चारों पदार्थों में गति करती सदा ही,
आत्मा व ब्रह्म दोनों को मन में बिठारती;
इससे ही अंतः बाह्यद्वय सुखों की जीत है,
ऐश्वर्य आठ भक्तजनों के बीच डारती;
जो भ्रष्ट भूप ब्राह्मणों की हानि है करता,
तत् राज्य हिला डालती, सब कुछ बिगारती।

(आठ ऐश्वर्य-छोटाई, बड़ाई, हल्काई, प्राप्ति, स्वतंत्रता, ईश्वरपन, जितेन्द्रियता, सत्य संकल्प)

मंत्र- तद्वै राष्ट्रमा स्रवतिनावं भिन्नामिवोदकम्। ब्रह्मणां
यत्र हिंसान्ति तद्राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना।।८।।

काव्यार्थ-- जिस राष्ट्र बीच राजा लोग ब्रह्मज्ञानियों
का करते अनादर तथा उनको हैं सताते;
उस राज्य को विपत्ति मिटा देती शीघ्र ही,
दुष्कर्म राज्य को बहा करके हैं हटाते,
जल का प्रवाह जैसे टूटी नाव बहाता,
वैसी ही दशा होती, हमें विज्ञ बताते।

मंत्र- तं वृक्षा अप सेधन्ति च्छायां नो मोपगा इति।
यो ब्राह्मण स्य सद्मनमभि नारद मन्यते।।९।।

काव्यार्थ- नर को प्रदान करते ज्ञान, हे मनुष्य! सुन,
जो व्यक्ति ब्राह्मणें के श्रेष्ठ धन को छीनता;
उस व्यक्ति से कहते हैं वृक्ष, "रंच नहीं आ-
छाया में हमारी, नहीं तुझमें कुलीनता,"
हम उसको हटा देते हैं अपने नीचे से त्वरित,
सहता ही रहता ताप वह, अंगार बीनता।

मंत्र- विषमेतद्देवकृतं राजा वरूणोऽब्रवीत्।
न ब्राह्मणस्य गां जगध्वा राष्ट्रे जागार काश्चन।।१०।।

काव्यार्थ- उस राजा अति श्रेष्ठ प्रभु-देव ने कहा-
"यह इन्द्रियों से किया पाप विष समान है;
कोई भी ब्रह्म-वेत्ता की विद्या को हड़प,
जगता न राज्य में, नहीं भरता उठान है;
विष जैसे बनाता अचेत व्यक्ति को, वैसे,
रहता अचेत है, नहीं पाता निदान है।"

मंत्र- नवैव ता नवतयो या भूमिर्व्यधूनुत।
प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराभवन्।।११।।

काव्यार्थ- नौ बार नब्बे थे रहे अदम्य साहसी,
उन वीरों को झकझोर भूमि ने हिला दिया;
ब्राह्मण प्रजा को घोर अपमान कष्ट दे,
हारे बिना ही शक्यता, न एक भी जिया।।

मंत्र- यां मृतायानुबध्नन्ति कूद्यं पदयोपनीम्। तद्वै
ब्रह्मजन्य ते देवा उपस्तरणमब्रुवन्।।१२।।

काव्यार्थ-पद करती जो व्याकुल, जो शब्द दुःखभरा देती,
जो बेड़ी जकड़ने के लिये काम में आती;
पापी को बाँध देते जिससे, मरने के लिये,
उसको सदैव ही जो रूद्र रूप दिखाती;
हे ब्रह्म-वेत्ता को सताते हुए नर, सुन,
देवों के द्वारा, वह तेरा बिस्तर है कहाती।

मंत्र- अश्रूणि कृपमाणस्य यानि जीतस्य वावृतुः।
तं वै ब्रह्मजन्य ते देवा अपां भागमधारयन्।।१३।।

काव्यार्थ- ब्राह्मण को सताने में लगे दुष्ट व्यक्ति! सुन,
जो सत्य तव समक्ष वेद ने दिया हुआ;
दुःख पाते, पराजित हुए व्यक्ति के जो आँसू,
बहते हुए बताते कि घायल हिया हुआ;
देवों ने उसी बहती हुई अश्रु-राशि से,
तब हेतु जल का भाग सुनिश्चित किया हुआ।

मंत्र- येन मृतं स्नपयन्ति श्मश्रूणि येनोन्दते।
तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन्।।१४।।

काव्यार्थ- ब्राह्मण को सताने में लगे दुष्ट व्यक्ति! सुन,
जो जल मृतक-स्नान हेतु है दिया हुआ;
जिस जल से लोग अपने केश, अंग सींचते,
नापित ने कर्म हेतु जिसे है लिया हुआ;
जल राशि के उसी अति निकृष्ट भाग को,
देवों ने तेरे हेतु सुनिश्चित किया हआ।

मंत्र- न वर्ष मैत्रावरूणं ब्रह्मज्यमभि वर्षति। नास्मै समितिः
कल्पते न मित्रं नयते वशम्।।१५।।

काव्यार्थ- वायु व सूर्य द्वारा जनित वर्षा का शुभ जल,
ब्राह्मण के विरोधी में बरसता नहीं कभी;
इसकी सभा अनुकूल नही रहती है इसके,
मित्रों की मित्रता कभी इसने नहीं लभी।

सूक्त २०

मंत्र- उच्चैर्घोषो दुन्दुभिः सत्वनायन्वानस्पत्यः संभृत उस्त्रियाभिः।
वाचं क्षुणुवानो दमयन्त्सपत्नान्त्सिंहइव जेष्यन्नभि तंस्तनीहि।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

सेवनीयों के पालकों द्वारा होकर प्राप्त।
उच्च शब्द को बोलता बल देता पर्याप्त।।
विविध वनस्पति से बना करता शब्द अतीव।।
निज वैरी को दबाता कम्पित करता नीव।।
हे सिंह सम दुन्दुभि सदा विजय को चाह।
गरज सर्व दिशि, वैरी के मन में उपजा दाह।।

मंत्र- सिंहइवास्तानीद्भुवयो विबद्धोऽभिक्रन्दन्नृषभो
वसितामिव। वृषा त्वं वध्रयस्ते सपत्ना ऐन्द्रस्ते शुष्मो अभिमातिषाहः।।२।।

काव्यार्थ- दुन्दुभि! वृक्ष से बना बाँधा रीति विशेष।
गौ पर गर्जित साँड सा बल को लिये अशेष।।
गरज शत्रु पर सिंह सम हे अतिशय बलवान।
तेरे बैरी निबल हैं जैसे बुझी कृशान।।
अति प्रभाव युत शक्ति है दुन्दुभि तेरे बीच।
अभिमानी अरि मर्दिनी यम-पुर देती खींच।।

मंत्र- वृषेव यूथे सहसा विदानो गव्यन्नभि रव सन्धनाजित्।
शुचा विध्य हृदयं परेषां हित्वा ग्रामान्प्रच्युता यन्तु शत्रवः।

काव्यार्थ- **दोहा**

गौ समूह पर गाय के कामी साँड समान।
बाँध शत्रु-उर शोक से कर दे उसे नमान।।
बल से निज पहचान तू जग में देता भेज।
तथा जीतता यथावत् धन को, धारे तेज।।
भूमि चाहने वाले तू गर्जन कर चहुँ ओर।
शत्रु गाँव छोड़ भगें गिरतें, करें निहोर।।

मंत्र- संजयन्पृतना ऊर्ध्वमायुर्गृह्या गृह्यानोबहुल्णाधा वि चक्ष्व।
दैवीं वाचंदुन्दुभ आ गुरस्व वेधाः शत्रूणामुप भरस्व वेदः।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

संग्रामों को जीतता ऊँचा करता शब्द।
रणभूमि में वैरियों को करता स्तब्ध।
ग्रहणीय सेवाओं का लेते हुए प्रभार।
हे दुन्दुभि! तू देखता रह नाना प्रकार।।
बना विधाता दिव्य गुणि वाणी को उच्चार।
भर दे इस थल वैरियों का धन भली प्रकार।।

मंत्र- दुन्दुभेर्वाचं प्रयतां वदन्तीमाशृण्वती नाथिता घोषबुद्ध।
नारी पुत्रं धावतु हस्तगृह्यामित्री भीता समरे वधानाम्।।५।।

काव्यार्थ- स्पष्ट गूँजती हुई ध्वनि, रूद्र दुन्दुभि-
की गर्जना से जागी हुई शत्रु की नारी;
वर मारु शस्त्रों के समर में अति डरी हुई,
भागे लिये सुत साथ, रहे रंच न ठाड़ी।

मंत्र- पूर्वो दुन्दुभे प्र वदासि वाचं भूम्यांः पृष्ठे वदं रोचमानः।
अमित्रसेनामभिजन्जमानो द्युमद्वद दन्दुभे सूनृतावत्।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे दुन्दुभि! तू प्रथम कर ऊँची ध्वनि, भर रोष।
फिर भूमि के पृष्ठ पर रूचि पूर्वक कर घोष।।
हे दुन्दुभि! अरि सैन्य का करते पूर्ण विनाश।
अति स्पष्ट सत्य प्रिय वाणी बोल सकाश।।

मंत्र- अन्तरेमे नभसी घोषो अस्तु पृथक्ते ध्वनयो यन्तु शीशम्।
अभि क्रन्द स्तनयोत्पिपानः श्लोककृन्मित्रतूर्याय स्वर्धी।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

इन सूर्य अरू पृथिवी के बीच जाय तव घोष।
ध्वनियाँ चहु दिशि बढ़ करें अरि सेना पर रोष।।
यश करने वाला सतत ऊपर बढ़ता जाय।
वृहत् वृद्धि वाला सभी तुझसे बृद्धि पाय।।
मित्र जनों के वेग हित चारों दिशि कर शब्द।
गरज गड़गड़ाकर, बने दंभी अरि निस्तब्ध।।

मंत्र- धीभिः कृतः प्र वदाति वाचमुद्धर्षय सत्वनामायुधानि।
इन्द्रमेदी सत्वनो निह्यस्व मित्रैरमित्राँ अव जंघनीहि।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

शिल्प-कर्म द्वारा बने हे दुन्दुभि! शुभ बोल।
तथा गगन तक वीरों के कर आयुध अनमोल।।
बुला हमारे वीरों को सेनापति के मित्र।
तथा हमारे मित्रों से हन वैरी अपवित्र।

मंत्र- संक्रन्दनः प्रवदो घृष्णुषेणः प्रवेदकृद्वहुधा गामघोषी।
श्रेयोवन्वानो वयुनानि विद्वान्कीर्तिं बहुभ्यो वि हर द्विराजे।।९।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

शब्द करता जो अरू करता जो गर्जना है,
धारक निडर सैन्य, चेतना प्रदानता;
सैन्य-दल बीच नाना घोषणाऐं करता जो,
श्रेष्ठों का कल्याण करना जो जानता।
ऐसे दुन्दुभि! तू शुभ रीति धर्म जानता है,
दो राजाओं बीच युद्ध में सदा उफानता;
विविध प्रकार से तू कीर्ति करा प्राप्त हमें,
वीर जन हेतु तू ही उच्च स्वर तानता।।

मंत्र- श्रेयः केतो वसुजित्सहीयान्त्संग्रामजित्संशितो ब्राह्मण ासि।
अंशूनिव ग्रावाधिषवणे अद्रिर्गव्यन्दुन्दुभेऽधि नृत्य वेदः।।१०।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

अति बलवान दुन्दुभि! तू धन जीतता है,
संग्राम जीतता है, ऐसा तव कृत्य वर;
जैसे तत्व मन्थन के बीच सूक्ष्म अंशों को-
वश करता है एक तत्वदर्शी विज्ञ नर!
वेद द्वारा सूक्ष्त किया गया तू कल्याणकारी,
निश्चल स्वभाव का निवासता अमृत्य घर;
ऐसे भूमि जीतने की कामना को लिये शुभ-
दुन्दुभि! तू शत्रु-धन जीत कर नृत्य कर।।

मंत्र- शत्रूषाण्नीषाडभिमातिषाहो गवेषणः सहमान उद्वित्।
वाग्वीव मन्त्रं प्र भरस्व वाचं सांग्रामजित्यायेषमुद्वदेह।।११।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

शत्रुओं को जीत लेने वाले, सदा जयशील,
जिसका कि कर्म अभिमानियों को मोसना;
शासन के कर्ता, अरू खोजकर्ता प्रवीण,
रूचिकर कर्म है बहुत तोड़-फोड़ना।
वक्ता का उपदेश श्रोता-कर्ण भरने सा,
निज शब्दों को सर्व दिशि में परोसना;
ऐसे दुन्दुभि! तू संग्राम जीतने के लिये,
अन्न के विषय में कर एक बड़ी घोषणा।।

मंत्र- अच्युतच्युत्समदो गामिष्ठो मृधो जेता पुरएतायोध्यः।
इन्द्रेण गुप्तो विदथा निचिक्यद्धछ्योतनो द्विषता याहि शीद्दम्।।१२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

गिरने न वाले दुष्ट शत्रु को गिराने वाले,
बरसाने वाले सदा आनन्द से पूर्ण झड़;
अतिशय गति वाले, संग्रामजित रहे,
रूकते न रंच, रहते न क्षण-मात्र जड़।

अग्र-अग्र चलते जो, युद्ध-कर्म जानते जो,
सेनापति टालता है रक्षण न एक क्षण,
ऐसे शत्रु-हृदय जलाने वाले, शत्रु पर-
शीघ्र-शीघ्र करते गमन, शीघ्र टूट पड़।।

सूक्त २१

मंत्र- विहृदयं वैमनस्यं वदामित्रेषु दुन्दुभे।
विद्वेषं कश्मशं भयममित्रेषु नि दश्मस्यवैनान्दुन्दुभे जहि।।१।।

काव्यार्थ- हे दुन्दभि सुजान! शत्रुओं के हृदय की-
व्याकुलता और मन की उदासीनता बता;
नित-नित ही क्लेश, झगड़ा, बहु कशमकश तथा-
भय, त्रास, शत्रुओं के हृदय डालते सता;
हे दुन्दुभि! तू करते हुए नाद भयंकर,
सम्पूर्ण शत्रुओं को शीघ्र ही बता धता।

मंत्र- उद्वेपमाना मनसा चक्षुषा हृद्येन च।
धावन्तु बिभ्यतोऽमित्राः प्रत्रासेनाज्ये हुते।।२।।
घृत आहुति देने समान, अल्प काल में,

काव्यार्थ- शत्रु के हृदय में बढ़ा घबराहटें नभी;
अपने हृदय से, आँख से, मन और बुद्धि से,
भयभीत थरथराते भाग जाँय वह सभी।

मंत्र- वानस्पत्यः संभृत उन्नियाभिर्विश्वगोत्रयः।
प्रत्रासममित्रेभ्यो वदाज्येनाभिघारितः।।३।।

काव्यार्थ- हे दुन्दुभि! सेनापति से प्राप्त हुआ तू,
रक्खा गया रक्षक बनी सेनाओं के द्वारा;
सब ही कुलों का सर्वदा हितकार रहा तू,
घृत से तुझे सींचा गया, तुझको है सँवारा;
ऐसे हे दुन्दुभि! तू खड़े शत्रु के लिये,
बहु कष्ट की कर घोषणा संग्राम मँझारा।

मंत्र- यथा मृगाः संविजन्त आरण्याः पुरूषादधि। एवा त्वं
दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द्र प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय।।४।।

काव्यार्थ- बन बीच में जैसे कि हिरन, देख आदमी,
तेजी से भागते अतीव ही डरे डरे;
वैसे ही दुन्दुभि तू शत्रु पर गरज, डरा,
तत् चित्त हों भयभीत औ विमोह से भरे।।

मंत्र- यथा वृकादजावयो धावन्ति बहु बिभ्यतीः।
एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय।।५।।

काव्यार्थ- जैसे कि भेड़िये को देख भेड़ बकरियाँ,
तेजी से भागतीं अतीव ही डरे डरे,
वैसे ही दुन्दभि तू शत्रु पर गरज डरा,
तत् चित्त हो भयभीत औ विमोह से भरे।

मंत्र- यथा श्येनात्पतत्त्रिणः संविजन्ते अहर्दिवि सिंहस्य स्तनथोर्यथा।
एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय।।६।।

काव्यार्थ- जैसे कि पक्षी श्येन से डर कर के भागते,
अरू सिंह की गरज से रहें नित डरे डरे;
वैसे ही दुन्दुभि तू शत्रु पर गरज, डरा,
तत् चित्त हों भयभीत औ विमोह से भरे।

मंत्र- परामित्रान्दुन्दुभिना हरिणस्याजिनेन च।
सर्वे देवा अतित्रसन्ये संग्रामस्येशते।।७।।

काव्यार्थ- जो विज्ञ लोग होते हैं संग्राम के स्वामी,
वह धारते हिरण के चर्म युक्त दुन्दुभी;
उस ही से खड़े शत्रु को डरा दिया करते;
तत् रौर ध्वनि शत्रु में रहती सदा चुभी।

मंत्र- यैरिन्द्रः प्रकीडते पद्धोषैश्छायया सह।
तैरमित्रास्त्रसन्तु नोऽमी ये यन्त्यनीकशः।।८।।

काव्यार्थ- ऐश्वर्यवान सेनापति जिन पाद-घोषों से,
करता है युद्ध क्रीडा छाया रुप सेना संग;
उनसे हमारे शत्रुओं में त्रास महा हो,
जो सैन्य पंक्तियों में हमसे करने चलें जंग।

मंत्र- जयघोषा दुन्दुभयोऽभि क्रोशन्तु या दिशः।
सेनाः पराजिता यतीरमित्राणामनीकशः।।९।।

काव्यार्थ- व्यापक दिशाओं बीच श्रेणी-श्रेणी शत्रु की-
सेना जो चल रही है पराजय को लिखा कर;
हमारी प्रत्यंचा के शब्द साथ दुन्दुभी,
उस पर पुकार दे, वह भगे पीठ दिखा कर।

मंत्र- आदित्य चक्षुरा दत्स्व मरीचयोऽनु धावत।
यत्सङ्ग्निीरा सजन्तु विगते बाहुवीर्ये।।१०।।

काव्यार्थ- हे सूर्य सेनापति! तू शत्रु-दृष्टि को हर ले,
किरणों समान सैन्य, पीछे पीछे तुम भागो;
जाने पर बाहु-बल के, तुम पाँवों की बेड़ियों-
को शत्रु के पाँवों के बीच बाँधने लागो।

मंत्र- यूयमुग्रा मरूतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून्।
सोमो राजा वरूणो राजा महादेव उत मृत्युरिन्द्रः।।११।

काव्यार्थ- हे शूरवीरों! भूमि को माँ मानने वालों,
सेनापति को साथ लिये शत्रु को मारो;
सेनापति जो ज्ञानवान दूरदर्शी है,
अति ही समर्थ धारता ऐश्वर्य है चारों;
तत्वों का किया करता जो मन्थन सदैव ही,
तव साथ है प्रकाशमान राजा हमारो;
अरू मृत्यु के समान बड़ा देवता, यह सब,
तव हेतु देव, ईश न धरती पे बिठारो।

मंत्र- एता देवसेनाः सूर्यकेतवः सचेतसः। अमित्रान् नो जयन्तु स्वाहा।।१२।।

काव्यार्थ- सेनापति विजयी की ये समान चित्त की,
सेनाऐं सभी सूर्य सम ध्वजाऐं धारतीं,
जीतें हमारे बैरियों को युद्ध में यही-
सब शक्तियाँ हम पर रहें आशीष डारतीं।

सूक्त २२

मंत्र- अग्निस्तक्मानमप बाधतामितः सोमो ग्रावा वरूणः
पूतदक्षाः। वेदिर्बर्हिः समिधः शोंशुचाना अप द्वेषांस्यमुया भवन्तु।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सद् वैद्य वरणीय है सब दोषों से दूर।
मन्थनकर्ता तत्व का ज्ञानवान भरपूर।।
सूक्ष्मदर्शी सद् वैद्य है पावन देय बनाय।
वह ज्वर आदिक रोग को अति ही दूर भगाय।।
दीप्त हुई समिधा यथा निज प्रकाश दिखलाय।
वैसे दीपित वैद्य से सब अनिष्ट हट जाँय।।

मंत्र- अयं विश्वान्हरितान्कृणोष्युच्छोचयन्नग्निरिवाभिदुन्वन्।
अधा हि तक्मन्नरसो हि भूया अधा न्यङ्.ड.धराङ्.वा परेहिः।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे ज्वर! यह जो तू सभी को दुःख देता भेज।
तथा अग्नि सम तपाता कर देता निस्तेज।।
इससे हे ज्वर! बन अतुल निर्बलता की खान।
तथा निम्न से निम्न थल को कर जा प्रस्थान।।

मंत्र- यः परुषः पारुषोयोऽवध्वंसदूवारुणः।
तक्मानं विश्वधावीर्याधरान्वंपरा सुव।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

निष्ठुर ज्वर! जैसे कि हो निष्ठुर से उत्पन्न-
अधोगामी राक्षस कोई रक्त वर्ण सम्पन्न।
हे समर्थ सब भाँति से वैद्य! दुःखद ज्वर देख।
तू उसको ले जा त्वरित अधो देश में फेंक।।

मंत्र- अधरांचं प्र हिणोमि नमः कृत्वा तक्मने।
शकम्भरस्य मुष्टिहा पुनरेतु महावृषान्।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

मैं सद् वैद्य दुःखद ज्वर को कर नमस्कार।
पीड़ित के तन से त्वरित नीचे देत उतार।।
शक्ति को धारण किये जो नर अति बलवान।
वह ज्वर की निज मुष्टि से ले लेता है जान।।
वह ज्वर जाये लौट कर महावृष्टि के देश।
जिस थल रहकर यह सदा करता है उन्मेष।।

मंत्र- ओको अस्य मूजवन्त ओको अस्य महावृषाः।
थावज्जातस्तक्मंस्तावानसि बल्हिकेषु न्योचरः।।५।।

काव्यार्थ- मूँज वाले स्थान में यह ज्वर करता वास।
महा-वृष्टि का थल रहा है इसका घर खास।।
हे ज्वर! जब से तू हुआ धरती पर उत्पन्न।
मलिन थलों की संगति में तब से प्रसन्न।।

मंत्र- तक्मन् व्याल वि गद्व्यंग-भूरि यावय।
दासीं निष्टक्वरीमिच्छ तां वज्रेण समर्पय।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे अंगों के विकृतिदा विष में सर्प समान।
हे ज्वर! यहां से कर गमन बहुत दूर स्थान।।
निकृरूट, वभिचारिणी अरू स्वभाव से वक्र।
सभ्री के ऊपर चला हे ज्वर अपना वज्र।।

मंत्र- तक्मन्मूजवतो गच्छ बल्हिकान्वा परस्तराम।
शूद्रामिच्छ प्रफव्यंश्तां तक्मन्वीव धूनुहि।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे ज्वर! जहाँ मूँज हो या हिंसा की खान।
अथवा कर तू अन्य थल दूर कहीं प्रस्थान।।
उस नारी को ढूँढ जो बनी मलिनता खान।
हिंसक को विशेषकर कर काम्पायमान।।

मंत्र- महावृषान्मूजवतो बन्धवद्धि परेत्य।
प्रैतानि तक्मने ब्रूमो अन्यक्षेत्राणि वा इमा।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे ज्वर! द्रुत ही भाग जा रूक न यहाँ पर लेश।
अरू बस जो है मूँज वा अधिक वृष्टि का देश।।
इन क्षेत्रों अरू अन्य को कहते हैं तव हेतु।।
छोड़ नहीं तू, शीघ्र खा तब बन्धु हैं जेतु।।

मंत्र- अन्य क्षेत्रे न रमसे, वशी सन्मृडयासि नः।
अभूदु प्रार्थस्तक्मा स गमिष्यति बल्हिकान्।।९।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तू किंचित रमता नहीं अन्य थलों में दूर।
वशीभूत हो हमारे सुख देता भरपूर।।
प्रबल रूप धारे हुए है यह यहाँ, परन्तु।
हिंसालु देशों करे गमन शीघ्र ज्वर-जन्तु।।

मंत्र- यत्त्वं शीतोऽथो रुरः सहकासावेपयः।
भीमास्ते तक्मन्हेतयस्ताभिः स्म परिवृड्.ग्धि नः।।१०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तू सर्दी दे आता या अधिक पीर से रूक्ष।
या खाँसी से काँपता करे शांति को सुप्त।।
आने वाले ज्वर तेरे अति भयंकर शस्त्र।
उन सबसे हमको बचा रंच नहीं कर त्रस्त।।

मंत्र- या स्मैतान्त्सखीन्कुरूथा बलासं कसमुद्युगम्।
मा स्मातोऽवार्डैः पुनस्तत्वा तक्मन्नुप ब्रुवे।।११।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे ज्वर! क्षय, कफ, खाँसी को बना न अपना मित्र।
यह कर देते मनुज को दीन, क्षीण, अपवित्र।
उस थल से तू फिर कभी आ न हमारे पास।
हे ज्वर! बारम्बार मैं कहूँ बात यह खास।।

मंत्र- तक्मन्भ्रात्रा बलासेन स्वस्रा कासिकया सह।
पाप्मा भ्रातृव्येण सह गच्छामुमरणं जनम्।।१२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे ज्वर! तू जा उस मलिन दुष्कर्मी के पास।
भाई कफ, खाँसी बहन क्षय भतीजे साथ।।

मंत्र- तृतीयकं वितृतीयं सदन्दिमुत शारदम्।
तक्मानं शीतं रुरं ग्रैष्मं नाशय वार्षिकम्।।१३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

ज्वर तिजरिया चौथिया अरू अन्तरिया होय।
फूटनकर्ता, निरंतरा शरद् ऋतु का कोय।।
शीत, ग्रीष्म, वर्षादि के करते जीवन ध्वस्त।
वैद्य! इन सभी को मिटा हमें बना दे स्वस्थ।।

मंत्र- गन्धीरिभ्यो मूजवद्भ्योऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः।
प्रैव्यन्जनमिव शेवधिं तक्मानं परि दद्मासि।।१४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जो हैं अति हिंसालु या मूँज आदि के देश।
अप्रधान अरू दोष के धारक रहे विशेष।।
उन में ज्वर को यहाँ से हम है भेजे देतु।
ज्यों रक्षक नर भेजते, कोष-सुरक्षा हेतु।।

सूक्त २३

मंत्र- ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती।
ओता म इन्द्रश्चानिश्च क्रिमिं जम्भयतामिति।।१।।

काव्यार्थ- यह सूर्य औ पृथिवी जो परस्पर मिले हुए,
देवी सरस्वती जो कि बुद्धि फबी करे;
मेघ और अग्नि भी जो परस्पर मिले हुए,
विनती है कि क्रिमियों का नाश यह सभी करें।

मंत्र- अस्येन्द्र कुमारस्य क्रिमीन्धनपते जहि।
विश्वा अरातय उग्रेण वचसा मम।।३।।

काव्यार्थ- धनवान वैद्य! शीघ्र ही क्रिमियों को मिटा दे,
जो इस कुमार के शरीर बीच भए हैं;
मेरे प्रचण्ड वेद-वचन द्वारा दुःखदायी;
रोगों के जनक सभी क्रिमी मारे गये हैं।

मंत्र- यो अक्ष्यौ परिसर्पति यो नासे परिसर्पति।
दतां यो मध्यं गच्छति तं क्रिमिं जम्भयामसि।।३।।

काव्यार्थ-वह क्रिमि जो दोनो नथनों बीच रेंगता जाता,
वह क्रिमि जो आँखों बीच रेंग जाता है तरते;
वह क्रिमि जो दाँतो बीच किया करता वास है,
हम वैद्य लोग उसको नष्ट कर दिया करते।

मंत्र- सरुपौ द्वौ निरुपौ द्वौ कृष्णौ द्वौ रोहितौ द्वौ।
बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च गृध्रः कोकश्च ते हताः।।४।।

काव्यार्थ- दो रुप में समान, दो विरुद्ध रूप के,
दो काले रंग के व दो जो लाल भये हैं;
वह भूरे-भूरे रंग और भूरे कान का,
गिद्ध और भेड़िया, वह सभी मारे गये हैं।

मंत्र- ये क्रिमयः शितिकक्षा ये कृष्णाः शितिबाहवः।
ये के च विश्वरुपास्तान्क्रिमीन्जन्भयामसि।।५।।

जो श्वेत कोख वाले क्रिमि, जो काले वर्ण के,
जो काली भुजा के, जो सभी वर्ण ओढ़ते;
यह जो हमारे शत्रु कष्ट देते हैं हमें,
हम उन समस्त क्रिमियों को जीवित न छोड़ते।

मंत्र- उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा।
दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणात्क्रिमीन्।।६।।

काव्यार्थ- गतियाँ सभी अदृश्य पदार्थों में डालता,
यह विश्वदृष्टा सूर्य निकलता है प्रात को;
नित मारता, मिटाता जो अदृश्य रहते हैं,
औ' दृश्यमान रहते क्रिमिगण अरात को।

मंत्र- येवाषासः कष्कषास एजत्काः शिपवित्नुकाः।
दृष्टश्च हन्यतां क्रिमिरूतादृष्टश्च हन्यताम्।।७।।

काव्यार्थ- चलते जो शीघ्र-शीघ्र हैं, पीड़ा प्रदानते,
रखते स्वभाव तीक्ष्ण, थरथराते चमकते;
ऐसे सभी अदृश्य, दृश्य क्रिमि समाप्त हों,
वह दुष्ट हैं, हमको कभी सुख दे नहीं सकते।

मंत्र- हतो येवाषः क्रिमीणां हतो नदनिमोत।
सर्वान्नि मष्मषाकरं दृषदा खल्वाँइव।।८।।

काव्यार्थ- क्रिमियों में शीघ्रगामी क्रिमि समाप्त हो गया,
क्रिमि नाद करने वाला भी समाप्त हो गया;
पत्थर से चनों की तरह मैंने मसल सभी-
क्रिमियों को किया नष्ट है, सुख व्याप्त हो गया।

मंत्र- त्रिशीर्षाणं त्रिककुदं क्रिमिं सारंगमर्जुनम्।
शृणाम्यस्य पुष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः।।९।।

काव्यार्थ- मैं तीन सिर, तीन कुदान, रेंगने वाले,
चित्र-विचित्र, श्वेत वर्ण क्रिमि मारता;
तत् पसलियों को तोड़ता अरू सिर को कुचलता,
बचता न एक भी, समूल हूँ संहारता।

मंत्र- अत्रिवद्वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत्।
अगस्त्यस्य ब्राह्मण इं सं पिनष्म्यहं क्रिमीन्।।१०।।

काव्यार्थ- हे क्रिमियों! दोष भक्षते मुनि के समान, औ-
स्तुति के योग्य एक प्रखर बुद्धिमान-सा;
जलती हुई अग्नि समान तेजवान-सा,
मैं मारता तुम्हें हूँ प्रभु के विधान-सा;
क्रिमियों को पीसे डालने की इस क्रिया को मैं,
छेदन-समर्थ ईशु का आदेश मानता।

मंत्र- हतो राजा क्रिमीणामुतैषां सपतिर्हतः।
हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा।।११।।

काव्यार्थ- इन रोग-क्रिमियों का शीघ्र नष्ट हो राजा,
अरू द्वारपाल भी न बचे, मृत्यु को पाये;
जिस क्रिमि की माता, बहन, भ्राता नष्ट हो चुके,
उसको भी मारा जाये, वह जीवित न कहाये।

मंत्र- हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः।
अथो ये क्षुल्लकाइव सर्वे ति क्रिमयो हताः।।१२।।

काव्यार्थ- जिस क्रिमि के घर के सब सदस्य मारे गये हैं,
परिवार वाले सब के सब प्रजारे गये हैं;
अरू जो बहुत ही सूक्ष्मतम आकार लिये थे,
वह सब के सब ही मारे औ संहारे गये हैं।

मंत्र- सर्वेषां च क्रिमीणां सर्वासां च क्रिमीणाम्।
भिनद्म्यश्मना शिरोदहाम्यग्निना मुखम्।।१३।।

काव्यार्थ- जो जो भी नर-क्रिमी व जो भी मादा-क्रिमी हैं,
मैं उन सभी को मृत्यु के पथ ओर चलाता;
उनके सिरों को पत्थरों से फोड़ता हूँ मैं,
अरू उन सभी के मुख को अग्नि से हे जलाता।

सूक्त २४

मंत्र- सविता प्रसवानामधिपतिः स मावतु। अस्मिन्ब्रह्म-
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यांदेवहूत्यां स्वाहा।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वह प्रभु जनित पदार्थों का अधिपति;
रक्षक सभी का मुझे रक्षता रहा करे;
इस वेद-ज्ञान, कर्म, पौरोहित्य, प्रतिष्ठा में,
अपनी कृपा को सदा बख़्शता रहा करे।

इस चिन्तन अरू इस संकल्प बीच,
सिगरी विपत्तियों को भक्षता रहा करे;
यह आशीर्वाद होवे, विज्ञों के बुलावे बीच,
अरू अनुशासन में दक्षता रहा करे।।

मंत्र- अग्निर्वनस्पतीनामधिपतिः स मावतु। नस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामा शेष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वह अग्नि जो है वृक्ष आदि वनस्पतियों का-
अधिपति, मुझे सदा रक्षता रहा करे;
(शेष मंत्र १ की भाँति)

मंत्र- द्यावापृथिवी दातृणामधिपत्नी ते मावताम्। अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिकर्णण्यस्यां पुरोधामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशि-ष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा।।३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वह जो कि दाताओं का अधिपति सूर्य अरू-
पृथिवी, सदैव मुझे रक्षते रहा करें;
इस वेद-ज्ञान, कर्म, पौरोहित्य, प्रतिष्ठा में,
अपनी कृपा को सदा बख्शते रहा करें।
इस चिन्तन अरू इस संकल्प बीच,
सिगरी विपत्तियों को भक्षते रहा करें,
यह आशीर्वाद होवे, विज्ञों के बुलावे बीच,
अरू अनुशासन में दक्षते रहा करें।।

मंत्र- वरूणोऽपाधिपतिः स मावतु। अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्ययस्यां पुरोधायामस्यां स्यां देवहूत्यां स्वाहा।।४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वह जलधाराओं का अधिपति वरणीय-
मेघ सर्वदा ही मुझे रक्षता रहा करें;
(शेष मंत्र एक की भाँति)

मंत्र- मित्रावरूणौ वृष्ट्याधिपती तौ मावताम्। अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्तां पुरोधा यामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा।।५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वह प्राण औं अपान वायु, दोनों वृष्टि के-
अधिष्ठाता, मुझे सदा रक्षते रहा करें;
(शेष मंत्र २ की भाँति)

मंत्र- मरूतः पर्वतानामधिपतयस्ते मावन्तु। अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशि-ष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा।।६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वह ऋत्विक लोग, गिरि के अधिष्ठाता,
उत्तम पदार्थों से रक्षते रहा करें;

मंत्र- सोमो वीरूधामधिपतिः स मावतु। अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा।।७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सोमलता, उगने वाली जड़ी अरू बूटियों का-
अधिपति, मुझे सदा रक्षता करे;
(शेष मंत्र २ की भाँति)

मंत्र- वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स मावतु। अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा।।८।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वायु जो कहाता मध्य लोक का अधिष्ठाता,
रक्षक सभी का, मुझे रक्षता रहा करे;
(शेष मंत्र १ की भाँति)

मंत्र- सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स मावतु। अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा।।९।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

सूर्य जा अधिष्ठाता जन-जन नेत्रों का,
दर्शना की शक्ति द्वारा रक्षता रहा करें
(शेष मंत्र १ की भाँति)

मंत्र- चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावतु। अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा।।१०।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

आनन्द का दाता चन्द्रमा, जो है अधिष्ठाता-
नक्षत्रों का, मुझे रक्षता रहा करे,
(शेष मंत्र १ की भाँति)

मंत्र- इन्द्रो दिवोऽधिपतिः स मावतु। अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा।।११।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

विद्युत् जो व्यवहार का अधिष्ठाता, जो कि-
रक्षक सभी का, मुझे रक्षता रहा करे;
(शेष मंत्र १ की भाँति)

मंत्र- मरूतां पिता पशूनामधिपतिः स मावतु। अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा।।१२।।

काव्यार्थ- पालक सुर्वणोदिकों का औ'सकल जीव-
अधिपति मुझको सदैव रक्षता रहे;
(शेष मंत्र १ की भाँति)

मंत्र- मृत्युः प्रजानामधिपतिः स मावतु। अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा।।१३।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

उत्पन्न प्राणियों का जो कि अधिष्ठाता, वह-
मृत्यु सर्वदा ही मुझे रक्षता रहा करे;
(शेष मंत्र १ की भाँति)

मंत्र- यमः पितृणामधिपतिः स मावतु। अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा।।१४।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वह पितरों का अधिपति जो प्रसिद्ध यम,
रक्षता सभी को, मुझे रक्षता रहा करे;
(शेष मंत्र १ की भाँति)

मंत्र- पितरः परे ते मावन्तु। अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा।।१५।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

पूर्व काल में जो रहे वर्तमान अति ख्यात-
पूर्वज, सदैव मुझे रक्षते रहा करें;
(शेष मंत्र १ की भाँति)

मंत्र- तता अवरे ते मावन्तु। अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा।।१६।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

वह जो पिछले रहे थे पितामह अतिपूज्य,
रक्षक सभी के, मुझे रक्षते रहा करें;
(शेष मंत्र १ की भाँति)

मंत्र- ततस्तातामहास्ते मावन्तु। अस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां

प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा।।१७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

और भी जो पूजनीयों के भी अति पूजनीय,
प्रतिताम, मुझे सदैव रक्षते रहा करें;
(शेष मंत्र १ की भाँति)

सूक्त २५

मंत्र- पर्वताद्दिवो योनेरंगादङ्गासमाभृतम्।
शेपो गर्भस्य रेतोधाः सरौ पर्णमिवा दधत्।।१।।

काव्यार्थ-वीर्यवान् नर गिरि-औषधियों, नभ के मेघ, प्रकाश से,
अरू अंगों से प्राप्त हुई निज अतुलित शक्ति राश से;
संतति-जनन युक्त सामर्थ्य धारा करे शरीर में,
जैसे तीर छोड़ने वाले पंख लगाते तीर में।

मंत्र- यथेयं पृाविी मही भूतानां गर्भमादधे।
एवा दधामि ते गर्भं तस्मै त्वामवसे हुवे।।२।।

काव्यार्थ-अति महनीय रूप को धारे, जीवन को संचारती,
सब जीवों का गर्भ सदा ही जैसे पृथिवी धारती;
तेरे गर्भ को धारण करती हूँ मैं भी तद् रीति से,
गर्भ सुरक्षा के कारण मैं तुझे बुलाती प्रीति से।

मंत्र- गर्भं धेहि सिनीवासि गर्भं धेहि सरस्वति। गर्भं ते
अश्विनोभा धत्तां पुष्कर स्रजा।।३।।

काव्यार्थ-अन्नवती सुखदायक पत्नी! कर तू धारण गर्भ को,
श्रेष्ठ दान वाली हे पत्नी! कर तू धारण गर्भ को;
पुष्टि प्रदाता दिन-रात्रि यह, कभी न तुझको रूष्ट करें,
यह दोनो ही तेरे गर्भ को, सद्-रीति से पुष्ट करें।

मंत्र- गर्भं ते मित्रावरुणौ गर्भं देवो बृहस्पतिः। गर्भं त इन्द्रश्चाग्निश्च गर्भं
धाता दधातु मे।।४।।

काव्यार्थ-यह प्राण अरू अपना वायु तेरे गर्भ को पुष्ट करे,
अरू प्रकाशमान यह सूर्य तेरे गर्भ को पुष्ट करे;
निज में ज्योति धारता विद्युत तेरे गर्भ को पुष्ट करे,
धारण करने वाला अग्नि तेरे गर्भ को पुष्ट करे।

मंत्र- विष्णुर्योनिं कल्पयतुत्वष्टा रुपाणि पिंशतु।
आ सिन्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते।।५।।

काव्यार्थ-सब में रमा सर्वव्यापक प्रभु गर्भाशय समर्थ करे,
विश्वकर्मा वह गर्भ रूप को अवयव युक्त तदर्थ करे;
प्रजापति, सर्वपोषक वह किंचित नहीं अनर्थ करे,
सींचे, पुष्ट करे वह तेरा गर्भ, न किंचित व्यर्थ करे।

मंत्र- यद्वेद राजा वरूणो देवी सरस्वती।
यदिन्द्रो वृत्रहा वेद तद्गर्भकरणं पिब।।६।।

काव्यार्थ-जो औषधि वरणीय स्वामी पति ने जानी पहचान कर,
दिव्य गुणी ज्ञानी पत्नी पर जिसका है विज्ञान वर;
रोग विनाशे वैद्य सदा ही कहता जिसे निदान-कर,
जो कि गर्भ को स्थित करती, उस औषधि का पान कर।

मंत्र- गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम्।
गर्भो विश्वस्य भूतस्य सो अग्ने गर्भमेह धाः।।७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

औषध समस्त का प्रशंसा स्तुति के योग्य,
आश्रय तू ही है सर्वव्याप्त परमेश्वर;
सब ही वनस्पतियों का भी रहा एकमात्र,
तू ही है ग्रहीता अरू उनका विशेष घर।
तेरे ही सहारे सब दृश्य औ' अदृश्य जग,
सब पंचभूतों का आधार तू विशेष कर;
ऐसे हे समर्थ प्रभु! इसमें तू गर्भशक्ति,
धारण विशेष रीतिकर, उन्मेष कर।।

मंत्र- अधि स्कन्द वीरयस्व गर्भमा धेहि योन्याम्।
वृषासि वृष्ण्यावन्प्रजायै त्वा नयामसि।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

बैठ न, उठ कर हो खड़ा, तथा वीरता धार।
अरू संतति सामर्थ्य को गर्भाशय बैठार।।
हे नर! वीर्यवान् तू ज्वलित ओज का दीप।
केवल संतति हेतु हम लाते हुझे समीप।।

मंत्र- वि जिहीष्व बार्हत्सामे गर्भस्ते योनिमा शयाम्।
अदुष्टे देवाः पुत्रं सोमपा उभयाविनम्।।९।।

काव्यार्थ- **दोहा**

बृहत् साम की गायिका नित करती शुभ कर्म।
कर विशेष उद्योग तू पालन कर निज धर्म।।
भरपूर सामर्थ्य भर गर्भाशय के बीच।
वह संतति के जनम में रहे न किंचित पीच।।
अमृत पायी देवों ने तुम दोनों के हेतु।
दिया सुलक्षण पुत्र हैं रक्षक, सुख का सेतु।।

मंत्र- धातः श्रेष्ठेन रुपेणास्या नायी गवीन्योः।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे।।१०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

काव्यार्थ- हे पोषक परमात्मा श्रेष्ठ रूप के साथ।
इस नारी पर कर कृपा तू है सबका नाथ।।
द्वय पार्श्वस्थ नाड़ि मे रक्षक पुत्र अनीश।
दशम् मास में जन्म हित, कर स्थापित ईश।।

मंत्र- त्वष्टः श्रेष्ठेन रुपेणास्यानायी गवीन्योः।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे।।११।।

काव्यार्थ- **दोहा**

विश्वकर्मा परमात्मन्! श्रेष्ठ रूप के साथ।
(शेष मंत्र १० की भाँति)

मंत्र- सवितः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नायी गवीन्योः।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे।।१२।।

काव्यार्थ- जगत् जनक परमात्मन्! श्रेष्ठ रूप के साथ।
(शेष मंत्र १० की भाँति)

मंत्र- प्रजापते श्रेष्ठेन रूपेणास्या नायी गवीन्योः।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे।।१३।।

काव्यार्थ- जन जन पालक प्रजापति, श्रेष्ठ रूप के साथ।
(शेष मंत्र १० की भाँति)

सूक्त २६

मंत्र- यजूंषि यज्ञे समिधः स्वाहाग्निः प्रविद्वानिह वो युनक्तु।।१।।

काव्यार्थ- विज्ञ पुरूष जो ख्यात हुए हैं अग्नि-तेज को लेकर,
वह शुभ कर्म तथा विद्यादि की समिधाऐं देकर;
संगतिकरण-यज्ञ, जिससे सिगरे जन शुभता पायें,
उसको अपनी उत्तम वाणी के द्वारा फैलायें!

मंत्र- युनक्तु देवः सविता प्रजान्नस्मिन्यज्ञे महिषः स्वाहा।।२।।

काव्यार्थ-अत्यधिक व्यवहार कुशल जो रखते ज्ञान अपारा,
ऐसे प्रेरक पुरूष सर्वहितकारी वाणी द्वारा;
पावन संगतिकरण यज्ञ को नित ही करते जाऐं,
जग में पावन कर्म, सुविद्या का प्रकाश फैलाऐं।

मंत्र- इन्द्र उक्थामदान्यस्मिन्यज्ञे प्रविद्वान्युनक्तु सुयुजः स्वाहा।।३।।

काव्यार्थ-जो अति ही विद्वान्, धारते महनीय ऐश्वर्य,
वह प्रयोग करें अपनी हितकारी वाणी वर्य;
संगतिकरण यज्ञ में विद्या का प्रकाश फैलाऐं,
अपने शुभ कर्मों से जग में हितकारी कहलाऐं।

मंत्र- प्रैषा यज्ञे निविदः सवाहा शिष्टाः पत्नीभिर्वहतेह युक्ताः।।४।।

काव्यार्थ-जग का पालन करने में समर्थ शक्ति के धारक,
शिष्ट जनों! तुम प्रेषित करने योग्य ज्ञान हितकारक;
अरू वेदादि सत्य विद्याओं को नित-नित ही लाओ,
इस विधि संगतिकरण यज्ञ कल्याणी सफल बनाओ।

मंत्र- छन्दांसि यज्ञे मरूतः स्वाहा मातेव पुत्रं पितृतेह युक्ता।।५।।

काव्यार्थ-इस शुभ संगतिकरण यज्ञ में लगे हुए हे वीरों,
जग के कष्ट मिटा आनन्द बढ़ाने वाले धीरों,
शुभ कर्मो को पूर्ण करो तुम, जिनके बल धरती है,
जैसे सुत को श्रेष्ठ पूर्णता माँ प्रदान करती है।

मंत्र- एयमगन्बर्हिषा प्रोक्षणीभिर्यज्ञं तन्वानादितिः स्वाहा।।६।।

काव्यार्थ-यह अखण्ड नीति जो चलती रही वेद-विद्या की,
शुभ वाणी के साथ रही है जो नाशक मिथ्या की;
संगतिकरण यज्ञ का यह करती प्रसार आयी है।
उद्यम तथा वृद्धियों को यह अपने संग लायी है।

मंत्र- विष्णुर्युनक्तु बहुधा तपांस्यस्मिन्यज्ञे सुयुजः स्वाहा।।७।।

काव्यार्थ-इस शुभ संगतिरण यज्ञ की बहती है जो धारा,
उसमें व्यक्ति सुयोग्य उद्यमी निज शुभ वाणी द्वारा;
निज नाना विभूतियों को श्रद्वा के साथ लगाये,
अरू पर-उन्नति में ही वह अपनी उन्नति को पाये।

मंत्र- त्वष्टा युनक्तु बहुधा नु रुपा अस्मिन्यज्ञे सुयुजः स्वाहा।।८।।

काव्यार्थ-इस शुभ संगतिकरण यज्ञ में, योग्य सूक्ष्मदर्शी नर,
अपनी वाणी अपर जनों के उर की स्पर्शी कर;
अपनी नाना रुप क्रियाऐं नाना भाँति लगाये,
अरू पर उन्नति में ही वह अपनी उन्नति को पाये।

मंत्र- भगो युनक्त्वाशिषो न्व१स्माअस्मिन्यज्ञे प्रविद्वान्युनक्तु सुयुजः स्वाहाः।।९।।

काव्यार्थ-इस शुभ संगतिकरण यज्ञ में, नर ऐश्वर्यशाली,
अरू अत्यन्त योग्य धारते हुए मधुरतम वाणी;
अपनी दृष्ट प्रार्थनाओं को नाना भाँति निरन्तर,
करता रहे प्रयुक्त तथा सुख पाता रहे तदन्तर।

मंत्र- सोमो युनक्तु बहुधा पयांस्यस्मिन्यज्ञे सुयुजः स्वाहाः।।१०।।

काव्यार्थ-इस शुभ संगतिकरण यज्ञ के व्यक्ति शांत स्वभाव,
अरू अत्यन्त योग्य, अंध प्रति जिनका नहीं झुकाव;
अपनी उत्तम वाणी से, अपने नाना अन्नों को,
सदा लगाते हुए, सदा सुख देवें अवसन्नों को।

मंत्र- इन्द्रो युनक्तु बहुधा वीर्याण्यस्मिन्यज्ञे सुयुजः स्वाहा।।११।।

काव्यार्थ-इस शुभ संगतिकरण यज्ञ में, व्यक्ति बहुत प्रतापी,
अरू अत्यन्त योग्य, किये भयभीत जिन्होंने पापी;
अपनी उत्तम वाणी से निज विविध वीर धर्मों कों,
सदा लगाते हुए, मिटाते रहें अशुभ कर्मो को।

मंत्र- अश्विना ब्राह्मणा यातमर्वान्चौ वषट्कारेण यज्ञं वर्धयन्तो।
बृहस्पते ब्राह्मण याह्यर्वाङ् यज्ञो अयं स्वरिदं यजमानाय स्वाहा।।१२।।

काव्यार्थ-कर्म कुशल पुरूषों! तुम दान, वेद-ज्ञान के द्वारा,
यज्ञ बढ़ाते सम्मुख आओ, देते रहो सहारा;
बड़े-बड़े लोकों के रक्षक हे परमेश्वर! तू भी,
बुद्धि-साधनों सहित आन कर नाव बचा यह डूबी;
संगतिरकरण यज्ञ के इस कर्ता हित तव पाणी हो,
इसको वैभव सुख प्रदान कर, यह सुन्दर वाणी हो।

सूक्त २७

मंत्र- ऊर्ध्वा अस्य सामिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचींष्यग्नेः।
द्युमत्तमा सुप्रतीकः ससूनुस्तनूनपादसुरो भूरिपाणिः।।१।।

काव्यार्थ-नर अतिशय प्रकाश धारी, अतिशय प्रतीति वाला जो,
जो निज तन का पतन न करने वाला एक मोती है;
जो नाना कर्मों को अपने हाथ रखा करता है,
अरू रहता प्रधान पुरूषों संग जैसे तत् गोती है;
उस तेजस्वी की रहतीं ऊँची कर्म-समिधाऐं,
तथा शौर्य-ज्वालाऐं ऊँची बहुत तीव्र होती हैं।

मंत्र- देवो देवेषु देवः पथो अनक्ति मध्वा घृतेन।।२।।

काव्यार्थ-पुरूषारथ रत, विजय कामी, सद्व्यवहार पटु व्यक्ति,
जो व्यवहार कुशल लोगों के बीच जिया करता है;
वह सत्य-प्रतिज्ञ व्यक्ति अपने सद्-ज्ञान द्वारा,
अरू प्रकाश द्वारा मार्गों को खोल दिया करता है।

मंत्र- मध्वा यज्ञं नक्षति प्रैणानो नराशंसो अग्निः सुकृद्देवः सविता विश्ववारः।।३।।

काव्यार्थ-जो नर सबके द्वारा अंगीकार किया जाता है,
तथा प्रशंसाऐं पा सबकी जो कि फला करता है;
वह व्यवहार कुशल, ऐश्वर्यवान् ज्ञान-बल द्वारा,
नर-समाज को अग्र बढ़ाता हुआ चला करता है।

मंत्र- अच्छायमेति शवसा घृता चिदीडानो वह्निर्नमसा।।४।।

काव्यार्थ-यह व्यक्ति जो सदा शुभ गुणों की स्तुतियाँ करता,
कर जीवन निर्वाह, किसी को रंच नहीं है छलता;
यही व्यक्ति विद्वान चहुँ दिशि कीर्ति पताका लहरा,
सबका बल, जल, अन्न बढ़ाता हुआ, भली विधि चलता।

मंत्र- अग्निः स्रुचो अध्वरेषु प्रयक्षु स यक्षदस्य महिमानमग्नेः।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

वृहत् यज्ञों की कामना वह विज्ञ मन धार।।
पूजे इस प्रभुदेव की गति की महिमा अपार।

मंत्र- तरी मन्द्रासु प्रयक्षु वसवश्चातिष्ठन्वसुधातरश्च।।६।।

काव्यार्थ-जहँ मोद-दा कर्म अरू वृहत् यज्ञ का योग।
तहँ तारक विज्ञ, धनी तथा सद्-गुणी लोग।।

मंत्र- द्वारा देवीरन्वस्य विश्वे व्रतं रक्षन्ति विश्वहा।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

यह श्रेष्ठ विद्वान् है गतिमय एक निकुंज।
इसके व्रत-रक्षक बने इसके सद्-गुण पुंज।।
इसके दिव्य द्वारों की भी, गुण भली प्रकार।
लेते हैं अनुकूलता से रक्षा का भार।।

मंत्र- उरूव्यचसाग्नेर्धाम्ना पत्यमाने। आ सुष्वयन्ती यजते उपाके
उषासानक्तेमं यज्ञमवतापध्वरं नः।।८।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

तेजपूर्ण परमात्मा के सर्वव्याप्त तेज-
से जो ऐश्वर्यवान् होके खिलती रहे;
संगति के योग्य, शुभता से गतिमान हुई,
दरके हियों को जो सदैव सिलती रहे।
पास-पास रहतीं जो, ऐसी प्रातः सांय की,
बेलाऐं हमारी धरती पे झिलती रहें;
अरू निज धर्म-मार्ग पर चलते हुए-
समाज को सदैव शुभ-रीति मिलती रहें।।

मंत्र- दैवा होतार ऊर्ध्वमध्वरं नोडग्नेर्जिह्वयाभि गृणता नः स्विष्टये।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तामिडा सरस्वती मही भारतीय गृणाना।।९।।

काव्यार्थ-अपना श्रेष्ठ समागम अरू व्यवहार कुटिलता हीन,
जिससे हम अतुलित आभा अरू अतुल तेज हैं लाये;
दानशील हे दिव्य विज्ञ जन तुम उसकी, जिह्वा से-
शुभ रीति से करो प्रशंसा सदा, हृदय हर्षायें;
इड़ा, सरस्वती तथा भारती दिव्य गुणी त्रि-देवी,
आकर अपने दिव्य समागम को पवित्र कर जायें।

मंत्र- तन्नस्तुरीपमद्भुं पुरूक्षु। देव त्वष्टा रायस्पोषं वि ष्य नभिमस्य।।१०।।

काव्यार्थ-सूक्ष्यमदर्शी, व्यवहार कुशल, हे व्यक्ति! तू हम हेतु,
श्रेष्ठ त्वरा से रक्षा करने वाला अद्भुत घर दे;
अरू निवास हित अन्न अरू धन की पुष्टि देकर,
इसकी मध्य ग्रन्थि को खोल हमें सुखों से भर दे।

मंत्र- वनस्पतेऽव सृजा रराणः। त्मना देवेभ्यो
अग्निर्हव्यं शमिता स्वदयतु।।११।।

काव्यार्थ- सेवनीय शास्त्र का रक्षक, दानशील को दान,
शांति स्थापन करने वाला विज्ञ शांति जनावे;
आत्म-बली आत्म-बल वर्द्धन करे, आत्म बल द्वारा,
विद्वानों हित हवनीय हर वस्तु स्वादु बनावे।

मंत्र- अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेदः। इन्द्राय यज्ञं विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम्।।१२।।

ण्काव्यार्थ- विद्या में अति ही प्रसिद्ध, जन-जन के विद्वान्।
तेरी हितकारी वाणी से सदा फूल झरते हों;
ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये सदा तू पूज्य-कर्म करता हो,
सभी विज्ञ तब शुभ कर्मों से लाभ प्रापत करते हों।

सूक्त २८

मंत्र- नव प्राणान्नवभिः सं मिमीते दीर्घात्वाय चीणि तपसाविष्ठितानि।।१।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

प्रभु ने शरद शत-जीवन के हेतु, नर-
की नौ इन्द्रियों में प्राण नौ को रख दीन है;
उस प्रभु के हैं तीन सुख अन्न, नर, पशु,
जिनके बिना मनुष्य रहता मलीन है।
प्रभु ने सुश्रेष्ठ पुरूषारथ में तीन सुख,
अरू प्रिय प्रबन्ध बीच तीन सुखकीन है;
हितकार उत्तम कर्म बीच तीन सुख,
रखकर उसको किया अति प्रवीन है।।

**मंत्र- अग्निः सूर्यश्चन्द्रमा भूमिरापो द्यौरन्तरिक्षं प्रदिशो दिशश्च।
आर्तवा ऋतुभिः संविदाना अनेन मा त्रिवृता पारयन्तु।।२।।**

काव्यार्थ- **दोहा**

अग्नी, सूर्य, चन्द्रमा भू, जल, द्यु, आकाश।
सकल दिशा, प्रदिशा, ऋतु आदिक काल प्रकाश।।
मुझे पूर्ण यह नौ करें देकर अतुल सुगंध।
शुभ पुरूषारथ, कर्म शुभ होवे शुभ प्रबन्ध।।

**मंत्र- त्रयः पोषस्त्रिवृति श्रयन्तामनक्तु पूषा पयसा घृतेन।
अन्नस्य भूमा पुरूषस्य भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम्।।३।।**

काव्यार्थ- **कवित्त**

पुरूषार्थ औ प्रबन्ध, कर्म, तीन जीवन के-
साधनों में त्रय रूप पोषण की शक्ति हो;
पोषण का कर्ता अधिकारी हम सबको ही,
घी व दूध भरता हो, रंच नहीं त्यक्ति हो।
होवे भरपूर अन्न सबके घरों में, व्यक्ति-
होवें भरपूर, तद् बीच अनुरक्ति हो;
पशुओं की होवे बहुतायत, समस्त ही से-
उपकार प्राप्त करता हर एक व्यक्ति हो।।

**मंत्र- इममादित्या वसुना समुक्षतेममग्ने वर्धय वावधानः
इमामिन्द्र सं सृजवीर्येणास्मिन्त्रिवृच्छ्रयता पोषयिष्णु।।४।।**

काव्यार्थ- **दोहा**

आदित्यों सींचो इसे देकर द्रव्य अनूप।
तथा बढ़ा बढ़ते हुए हे प्रभू अग्नि रुप।।
इस नर को वीरत्व से हे इन्द्र प्रभु सींच।
अरू त्रिवृत्ति पुष्टि-दा ठहरा तन मन बीच।।
(त्रिवृत्ति-उत्तम पुरूषार्थ, उत्तम प्रबन्ध, उत्तम कर्म)

**मंत्र- भूमिष्ट्वा पातु हरितेन विश्वभृदग्निः पितर्त्वयसा
सजोषाः वीरूद्विष्टे अर्जुनं संविदानं दक्षं दधातु सुमनस्यमानम्।।५।।**

काव्यार्थ-सबको धारण करने वाली भूमि सदा दारिद हर-
पुरूषारथ द्वारा तुझ नर का पालन करती जाये;
प्रीति युक्त अग्नि तेरे उत्तम प्रबन्ध की प्रेरक,
प्रीति योग्य कर्म तेरे अन्तर में भरती जाये,
उगती लता रुप जनता से मिला तेरा धन संग्रह,
तेरे हृदय में शुभ ही शुभ करने की शक्ति लाये।

**मंत्र- त्रेधा जातं जन्मनेदं हिरण्यमग्नेरेकं प्रियतमं बभूव सोमस्यैकं
हिंसितस्य परापतत्। आपामेकं वेधसां रेत आहुस्तत्ते
हिरण्यं त्रिवृदस्त्वायुषे।।६।।**

काव्यार्थ- **दोहा**

ख्यात तेज कमनीय जो प्रभु रहा है धार।
वह तीनों ही लोकों में प्रकटा तीन प्रकार।।
पहला प्रियतम अग्नि का अरू द्वितीय तद् रूप।
शशि का प्रियतम सूर्य से आकर गिरा अनूप।।
गतिमय जल धाराओं का सुन्दर बीज तृतीय।
जो विधान-दा सूर्य की कथन उन्होंने दीय।।
हे नर! वह तेजःस्वरूप प्रभु नित्य नवीन।
आयु हित वर्द्धन करे जीवन साधन तीन।।
(तीन जीवन साधन-उत्तम पुरूषार्थ, उत्तम प्रबन्ध, उत्तम कर्म)

मंत्र- त्रयायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्रयायुषम्।
त्रेधामृतस्य चक्षणं त्रीण्यायूंषि तेऽकरम्।।७।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

प्रज्ज्वलित अग्नि सम व्यक्ति की तीन गुण-
आयु होती शुद्धि, बल, विक्रम से युक्त है;
प्रभु की व्यवस्था से सिद्ध तीन आश्रमों की-
आयु सुखकारक भी तीन गुण युक्त है।
विद्या, शिक्षा, परउपकार युक्त तीन गुण-
आयु मोक्ष-दर्शन कराने वाली युक्त है;
ये ही तीन जीवन के साधन हैं तब हेतु,
पालता जो, होता भव-बन्धनों से मुक्त है।।

मंत्र- त्रयः सुपर्णास्त्रिवृता यदायन्नेकाक्षरमभिसंभूय शक्राः।
प्रत्यौहन्मृत्युममृतेन साकमन्तर्दधाना दुरितानि विश्वा।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अति समर्थ त्रय शक्तियाँ वृत्ति तीन बिठाल।
एक अविनाशी ब्रह्म को प्राप्त हुईं जिस काल।।
तब त्रय जीवन साधनों की लेकर के ढाल।
दारिद आदि अनिश्ट सब मिटा दिये तत्काल।।
अरू मृत्यु से बचने के साधन का कर साथ।
मृत्यु का कारण मिटा चलीं अमरता पाथ।।

मंत्र- दिवस्त्वा पातु हरितं मध्यात्वा पात्वर्जुनम्।
भूम्या अयस्मयं पातु प्रागाद्देवपुरा अयम्।।२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

कष्ट हर पुरूषार्थ द्यु से बचाये तुझे,
द्यु करता जो सदा ज्योति से प्रहार है;
अरू अर्थ-संग्रह सुरक्षे नील अम्बर से,
जिसकाकि मध्यलोक नाम से प्रसार है।
प्राप्ति के योग्य कर्म भूमि से बचाये तुझे,
भूमि जो कि धारे तब जीवन प्रभार है;
यह व्यक्ति तीन वृत्तियों के द्वारा विज्ञों की,
अग्रगतियों को लभा उत्तम प्रकार है।।

मंत्र- इमास्तिस्रो देवपुरास्तास्त्वा रक्षन्तु सर्वतः।
तास्त्वं बिभद्वर्चस्व्युत्तरो द्विषतां भव।।१०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अग्र गतियाँ त्रय विज्ञों की धारे हुए सुगन्ध।
शुभ पुरूषारथ, कर्म शुभ शुभता भरा प्रबन्ध।।
यह समीप, वह दूर की जहाँ जहाँ हो कोय।
सब ही सकल दिशाओं में तव रक्षा को होय।।
उन गतियों को धार बन तेजस्वी शालीन।
अरू अरि-दल को दबा, हो ऊँचे पद आसीन।।

मंत्र- पुरं देवानाममृतं हिरण्यं य आबेधे प्रथमो देवो अग्रे।
तस्मै नमो दश प्राचीः कृणोभ्यनु मन्यतां त्रिवृदाबधे मे।।११।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अमर तेज जो चल रहा था विज्ञों के अग्र।
जिसमें थिरता थी नहीं चंचल रहा समग्र।।
जिस प्रख्यात ईश ने सबसे पहले काल।
विज्ञों के उस तेज में थिरताऐं दीं डाल।।

उस प्रभुवर को दस दिशा मेरा नमन शत बार।।
मुझ पर भी कर दे कृपा मेरा करे उद्धार।।
मेरा कर्म पुरूषार्थ औ‘ कर्म सुगंधित फूल।
इनको निज हित बाँधता हों मेरे अनुकूल।।

मंत्र- आ त्वा चृतर्व्यमा पूषा बृहस्पतिः।
अहर्जातस्य यन्नाम तेन त्वाति चृतामसि।।१२।।

काव्यार्थ- **कवित्त**

व्यक्ति जो कि हिंसकों को बाँध रखता है, तथा-
पोषण का काम करता न रंचमात्र कम;
रक्षक बड़ो-बड़ों का रहता सदैव ही जो,
पर उपकारियों में जो प्रसिद्ध श्रेष्ठतम।
वह तुझ परमेश्वर को हृदय में निज,
शुभ रीति धार कर तुझमें ही जाय रम;
प्रति-दिन उत्पन्न होते प्राणी का जो नाम,
उस ही से करें तेरा अत्यधिक ध्यान हम।।

मंत्र- ऋतुभिष्ट्वार्तवैरायुषे वर्चसे त्वा।
संवत्सरस्य तेजसा तेन संहनु कृष्मसि।।१३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हम सुदीर्घ जीवन तथा तेज प्राप्ति के हेतु।
हे प्रभु! सिगरी ऋतुओं संग तुझको बाँधे लेतु।।
बहु विभाग सब ऋतुओं के संवत्सर का तेज।
इनसे कर संयुक्त हम रखते तुझे सहेज।।

मंत्र- घृतादुल्लुप्तं मधुना समक्तं भूमिदृंहमच्युतं पारयिष्णु।
मिन्दन्त्सपत्नानधरांश्च कृण्वदा मा रोह महते सौभगाय।।१४।।

काव्यार्थ- अतुलनीय प्रकाश से परिपूरण भरपूर,
तथा ज्ञान दाता द्वारा भली प्रकटाता रूप;
भूमि को दृढ़ता प्रदाता अति ही बलवान,
पार लगाने वाला, ज्यों सागर नाव अनूप।
सदा अटलता धारता, करता वैरी नष्ट,
अरू नीचा करता उन्हें, रहता कभी न चूप;
महनीय सौभाग्य-धन मुझको देने हेतु,
मुझको तू ऊपर उठा, हे भूपों के भूप।

सूक्त २९

मंत्र- पुरस्ताद्युक्तो वह जातवेदोऽग्ने विद्वि क्रियमाणं यथेदम्।
त्वं भिषग्मेषजस्यासि कर्ता त्वया गामश्वं पुरूषं सनेम।।१।।

काव्यार्थ- निज ज्ञान में प्रसिद्ध विज्ञ अग्नि सरीखे,
औषध बनाने की कला में तू प्रवीण है;
पहले से सभी कार्यो में तू लगा रहे,
कर्तव्य कर्म तेरा पूजाघर है, नीड़ है;
तू रोग-नाश हेतु कर्म सूक्ष्म रुप लख;
यह देख कि किंचित कहीं भी नहीं क्षीण है;
हम गाय, घोड़े औ‘ मनुष्य रोग बिन लखें,
यह पायें कि सब रोग तूने दिया मीड़ है।

मंत्र- तथा तदग्ने कृणु जातवेदो विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः।
यो नो दिदेव यतमो जघास यथा सो अस्य परिधिष्पताति।।२।।

काव्यार्थ- हे ज्ञान में प्रसिद्ध विज्ञ, अग्नि सरीखे,
सब दिव्य जनों साथ मिल कर तू विचार कर;
अरू आचरण से रोग की वह सीमा नष्ट कर,
जो पीर हमें देता, हमारा आहार कर।

मंत्र- यथा सो अस्य परिधिष्पताति तथा तदग्ने कृणु जातवेदः।
विश्वेभिर्देवै सह संविदानः।।३।।

काव्यार्थ- हे ज्ञान में प्रसिद्ध विज्ञ, अग्नि सरीखे,
तू दिव्य जनों को सदा अनुकूल बनाकर;
करते हुए अति विज्ञता से पूर्ण आचरण,
तू रोग की परिधि को समूल हना कर।

मंत्र- अक्ष्यौऽनि विध्य हृदयं नि विध्य जिह्वं नि तृन्द्धि प्रदतो मृणीहि।
पिशाचो अस्य यतमो जघासाग्ने यविष्ठ प्रत तं शृणीहि।।४।।

काव्यार्थ- दोनो ही आँखें इसकी शीघ्र छेद डाल तू,
इसका अति कठोर हृदय भेद डाल तू;
विष स्रोत इसकी जीभ को भी काट डाल, औ-
अविलम्ब इसके दाँतों को भी तोड़ डाल तू।
अत्यन्त शक्तिशाली हे समर्थ विज्ञ! सुन-
"जो कुछ भी खाया इस मनुष्य का पिशाच ने;
उस दुष्ट के अवयव सभी को काट दे त्वरित,
तू छोड़ ना, भले ही लगे भीख बाचने।"

मंत्र- यदस्य हृदं विहृतं यत्पराभृतमात्मनो जग्धं यतमत्पिशाचैः।
तदग्ने विद्धान्पुनरा भर त्वं शरीरे मांसमसुमेरयामः।।५।।

काव्यार्थ- इसके शरीर का, जो पिशाचों ने हरा है,
जो कुछ भी हटाया व लूटा, खाया गया है;
तेजस्वी विद्धान्! तू उसको पुनः भर दे;
ला फिर से माँस, प्राण, सुना तुझमें दया है।

मंत्र- आमे सुपक्वे शबले विपक्वे यो मा पिशाचो अशने ददम्भय।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदोऽयमस्तु।।६।।

काव्यार्थ- जिस माँस के भक्षक पिशाच क्रिमि समूह ने,
कच्चे या अधपके, विविध प्रकार से पके;
चितकबरे रहे भोजय बीच में प्रविष्ट हो,
मम तन व मन व प्राण महा कष्ट में रखे;
उससे वह दुष्ट, माँस के भक्षक पिशाच निज-
संतति के साथ स्वाद महा-कष्ट का चखें;
होवें समूल नष्ट दुष्ट और व्यक्ति यह-
पाकर निरोगिता, महा आनन्द से छके।

मंत्र- क्षीरे मा मन्थे यतमो ददम्भाकृष्टपच्ये अशने धान्येऽयः।
तदात्मना प्रजयापिशाचा वियातयन्तामगदोऽमस्तु।।७।।

काव्यार्थ-- जिस भी किसी ने दूध में या जिसने मट्ठे में,
या बिन ही जूते खेत में उत्पन्न अन्न में,
अथवा यवादि धान्य में प्रविष्ट हो मुझको-
पीड़ित किया, कंटक चुभाया मन-प्रसन्न में।
उससे वह दुष्ट माँस का भक्षी पिशाच निज-
संतति के साथ स्वाद महा-कष्ट का चरने;
होवे समूल नष्ट दुष्ट, अरू मेरा तन-मन,
पाकर निरोगिता महा-आनन्द से छके।

मंत्र- अपां मा पाने यतमो ददम्भ क्रव्याद्यातूनां शयने शयानम्।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामदोऽयमस्तु।।८।।

काव्यार्थ- जिस माँस के भक्षक पिशाच क्रिमि समूह ने,
मेरे प्रयोग वाले पेय-जल के सहारे;
या यात्रियों के शयन-थल सोते हुए, मेरे-
तन में प्रवेश कर, मेरे तन, प्राण बिगारे।
उससे वह दुष्ट माँस के भक्षक पिशाच निज-
संतति के साथ स्वाद महा कष्ट का चखें;
होवें समूल नष्ट दुष्ट, अरू मेरे तन मन-
पाकर निरोगिता महा आनन्द से छकें।

मंत्र- दिवा मा नक्तं यतमो ददम्भय क्रव्याद्यातूनां शयने शयानम्।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदोऽयमस्तु।।९।।

काव्यार्थ- जिस भी किसी क्रिमी ने जो कि रक्त चूसता,
या माँस भक्षता है, उसने दिन या रात में;
पथिकों के शयन-थल मेरे विश्राम के समय,
पहुँचायी हुई हानि कर प्रवेश गात में।
उससे वह दुष्ट माँस का भक्षक पिशाच, निज-
संतति के साथ स्वाद महा-कष्ट का चखे;
होवे समूल नष्ट दुष्ट, अरू मेरा तन, मन-
पाकर निरोगिता, महा आनन्द से छके।

मंत्र- क्रव्यादमग्ने रुधिरं पिशाचं मनोहनं जहि जातवेदः
तमिन्द्रो वाजी वज्रेण हन्तु च्छिन्तु सोमः शिरो अस्य धृष्णुः।।१०।।

काव्यार्थ- निज ज्ञान में प्रसिद्ध विज्ञ अग्नि सरीखे,
द्रुत मार डालियेगा जो कि माँस को खाते;
जो रक्त को पीकर के वृद्धि करते हैं अपनी,
जो मन को विमोहित किया करते हैं, सुलाते।
महनीय ऐश्वर्यधारी अति पराक्रमी-
हैं आप, उनको निज कठोर वज्र से मारें;
निर्भय, प्रतापी आप उनके सिर को काट दे,
जीवित न छोड़े एक भी, समूल प्रजारें।

मंत्र- सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः।
सहमूराननु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः।।११।।

काव्यार्थ- हे अग्नि! तू सदैव नष्ट करता उन्हें जो-
खल दूसरों को कष्ट सदा देते रहे हैं;
संग्रामों में तुझको न कभी जीत पाये वह,
राक्षस महान् शक्तिवान् जेते रहे हैं।
उन माँस के भक्षक समस्त राक्षसों को तू,
समूल नष्ट करता हुआ मार डाल दे;
वह तेरे दिव्य गुण भरे कठोर वज्र से,
बचने न पायें, यम के लोक में बिठार दे।

मंत्र- समाहर जातवेदो यद्धतं यत्पराभृतं।
गात्राण्यस्य वर्धन्तामंशुरिवा प्यायतामयम्।।१२।।

काव्यार्थ- हे ज्ञान में प्रसिद्ध विज्ञ! अग्नि सरीखे,
इस रोगी का जो अंग-भाग हर लिया गया;
या नष्ट कर दिया गया, तू उस भाग को-
भर कर सुरीति साथ बना दे पुनः नया;
अरू वृक्ष के बढ़ते हुए अंकुर समान ही,
सब अंग पुष्ट हो बढ़ें, कर विज्ञ तू दया।

मंत्र- सोमस्येव जातवेदो अंशुरा प्यायतामयम्।
अग्ने विरश्निनं मेध्यमयक्ष्मं कृणु जीवतु।।१३।।

काव्यार्थ- हे ज्ञान में प्रसिद्ध विज्ञ! अग्नि सरीखे,
यह व्यक्ति चन्द्र की कला समान नित बढ़े;
हे अग्नि! बना दे इसे निर्दोष, निरोगी,
पाये सुदीर्घ आयु, उन्नति शिखर चढ़े।

मंत्र- एतास्ते अग्ने समिधः पिशाचजम्भनीः। तास्त्वं
जुषस्व प्रति चैना गृहाण जातवेदः।।१४।।

काव्यार्थ- हे विद्या-तेज धारी विज्ञ! अग्नि सरीखे,
तू यह जो विद्या रुप समिधाऐं लिये है;
यह माँस-भक्षकों की हैं विनाशकारिणी,
इन्होंने सभी दुष्ट दनुज नष्ट किये हैं,
सेवन इन्हें स्वीकारते कर जातवेद तू,
अरू राख कर दे शत्रु के जितने भी ठिये हैं।

मंत्र- तार्ष्टाधीरग्ने समिधः प्रति गृह्णद्दर्चिषा।
जहातु क्रव्याद्रूपं यो अस्य मांसं जिहीर्षति।।१५।।

काव्यार्थ- हे अग्नि के समान तेज धारते विद्वन!
तू यह जो विद्या रूप समिधाऐं लिये है;
ज्वालाओं साथ इनको तू स्वीकार किया कर,
यह भस्म करतीं शत्रु के जितने भी ठिये हैं।
जो माँस-भोजी इस पुरूष के तन के माँस को,
हरना है चाहता या क्षीण करना चाहता;
वह माँस-भोजी अपना रुप छोड़ता हुआ,
हो जाये पूर्ण नष्ट, रहे वह कराहता।

सूक्त ३०

मंत्र- आवतस्त आवतः परावतस्त आवतः।
इहैव भव मा नु गा मा पूर्वानु गाः पित्रृनसुं बध्नामि ते दृढम्।।१।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अति निकट अति दूर के सदुपाय कर ठाड़।
तव अंतः से बाँधता दृढ़ता से तव प्राण।।
तू इस लोक में यहीं दीर्घ काल कर वास।
वृद्धावस्था तक तेरे मृत्यु न आये पास।।
पिता आदि से पूर्व हो चलना रंच न तोय।
उनके पीछे ही सदा चलना तेरा होय।।

मंत्र- यत्त्वाभिचेरूः पुरूषः स्वो यदरणो जनः।
उन्मोचन प्रमोचने उभे वाचा वदामि ते।।२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तब अपनो ने या कि वह जो हैं अति ही भ्रष्ट।
तुझसे कटु व्यवहार कर पहुँचाया है कष्ट।।
तब इन द्वय से छूटने रहने को अति दूर।
विधि बतलाता मैं लिये वेद-वाणि का तूर।।

मंत्र- यद् दुद्रो हिथ शेपिषे स्त्रियै पुंसे अचित्या।
उन्मोचन प्रमोचने उभे वाचा वदामिते।।३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

बिन जाने तूने यदि नर या नारी साथ।
किया अनिष्ट, द्रोह, या दिया शाप को हाथ।।
तब इन द्वय से छूटने रहने को अति दूर।
विधि बतलाता मैं लिये वेद-वाणि का तूर।।

मंत्र- यदेनसो मातृकृताच्छेषे पितृकृताच्च यत्।
उन्मोचन प्रमोचने उभे वाचा वदामि ते।।४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

यदि तू पितु अपराध अरू माता कृत अपराध।
कारण तज उद्यम, शयन करता भरा विषाद।।
तब इन द्वय से छूटने रहने को अति दूर।
विधि बतलाता मैं लिये वेद-वाणि का तूर।।

मंत्र- यत्ते माता यत्ते पिता जामिर्भ्राता च सर्जतः।
प्रत्यक्सेवस्व भेषजं जरदष्टिं कृणोमि त्वा।।५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

जो औषध तब माँ, पिता ने कर गहन विचार।
तथा बहन अरू भाई ने किया हुआ तैयार।।
विधि पूर्वक तू खा उसे तोड़ रोग के दन्त।
तुझको करता स्वस्थ मैं जरा-काल पर्यन्त।।

मंत्र- इहैधि पुरूष सर्वेण मनसा सह।
दूतौ यमस्य मानु गा अधि जीवपुरा इहि।।६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे नर! तू सम्पूर्ण मन से कर यहाँ निवास।
यम दूतों पीछे न जा लिये हुए जो पाश।।
जीव-आत्मा की नगरि है यह तेरा शरीर।
दीर्घ-काल तक रह यहाँ हर दुःखियों की पीर।।

मंत्र- अनुहूतः पुनरेहि विद्वानुदयनं पथः।
आरोहणमाक्रमणं जीवतोजीवतोऽयनम्।।७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे उन्नति के मार्ग के ज्ञाता नर विद्वान्।
पुनः पुनः तू आ यहाँ तुझको है आह्वान।।
हर जीवित नर की सफलता का यही उपाय।
नित्य करे संघर्ष अरू ऊपर चढ़ता जाय।।

मंत्र- मा बिभेर्न मरिष्यसि जरदष्टिं कृणोमि त्वा।
निरवोचमहं यक्ष्मङ्गेगेभ्यो अंगज्वरं तव।।८।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तू न मरेगा, डर नहीं हो मत रंच मलीन।
जरा-काल तक आयु है मैंने तुझको दीन।।
तेरे अंगों बीच से तन का ज्वर विकराल।
अरू पनपे क्षय रोग को बाहर दिया निकाल।।

मंत्र- अंगभेदो अंगज्व रो यश्च ते हृदयामयः।
यक्ष्मः श्येनइव प्रापप्तद्वाचा साढः परस्तराम्।।९।।

काव्यार्थ- **दोहा**

तव अंगों का ज्वर तथा अवयव-पीर अपार।
हृदय-रोग अरू क्षय गये वेद-वाणि से हार।।
उड़े तीव्रता धार कर सभी दूर स्थान।
उड़ते जैसे तीव्रतम गतिमय पक्षी सचान।।

मंत्र- ऋषी बोधप्रतीबोधाव स्वप्नो यश्च जागृविः।
तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम्।।१०।।

काव्यार्थ- **दोहा**

बोध तथा प्रतिबोध ऋषि रहें तेरे उर-बाग़।
पहला निद्रा रहित है करे दूसरा जग।।
यह दोनों ही जागते रहते हैं दिन-रात।
रक्षा करते प्राण की करते हित की बात।।

मंत्र- अयमग्निरूपसद्य इह सूर्य उदेतु ते।
उदेहि मृत्योर्गम्भीरात्कृष्णाच्चित्तमसस्परि।।११।।

काव्यार्थ- **दोहा**

यह सर्वव्यापक प्रभु ही उपासना योग्य।
इसमें उन्नति-रवि उदित होकर दे आरोग्य।
तू प्रमाद-मृत्यु तथा अज्ञान में व्याप्त।
गहन अंध को नष्ट कर उन्नति को हो प्राप्त।।

मंत्र- नमो यमाय नमो अस्तु मृत्यवे नमः पितृभ्व उत ये नयन्ति।
उत्पारणस्य यो वेद तमग्निं पुरो दधेऽस्मा अरिष्टतातये।।१२।।

काव्यार्थ- **दोहा**

न्यायकारी परमात्मा! हे प्रभु! जगदाधार।
मृत्यु-नाश हित है नमन तुझको बारम्बार।।
महत् पुरूष उन रक्षकों को भी नमन हमार।
पथ-दर्शक बन ले चलें हमको जो कि सकार।।
पार लगाना जानता जो प्रभु ज्ञानवान।
उसको निज आगे रखूँ जीव हितैषी जान।।

मंत्र- ऐतु प्राण ऐतु मन ऐतु चक्षुरथो बलम्।
शरीरमस्य सं विदां तत्पद्भ्यां प्रति तिष्ठतु।।१३।।

काव्यार्थ- **दोहा**

इसके तन में प्राण अरू मन आ करें विलास।
दिव्य दृष्टि बहु शक्ति भी आकर करे निवास।
इस व्यक्ति का तन चले बुद्धि के अनुसार।
दुहु पैरों चैतन्य तन चलता हो गति धार।।

मंत्र- प्राणेनाग्ने चक्षुषा सं सृजेमं समीरय तन्वा ३सं बलेन।
वेत्थामृतस्य मा नु गान्मा नु भूमिगृहो भुवत्।।१४।।

काव्यार्थ- **दोहा**

अग्नि रूप परमेश्वर इस व्यक्ति को आप।
प्राण, चक्षु की शक्तियों से दीजेगा ढाप।
इस व्यक्ति को तन तथा बल से भली प्रकार।
आगे आप बढ़ाइये देकर दिव्य विचार।।
दें अमरत्व प्राप्ति के सदुपायों का ज्ञान।
असमय में जायें नहीं इस व्यक्ति के प्रान।।
कभी न यह व्यक्ति करे कोई काम नीच।
अरू अपमानित हो नहीं नर समाज के बीच।।

मंत्र- मा ते प्राण उप दसन्मो अपानोऽपि धायि ते।
सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरूदायच्छतु रश्मिभिः।।१५।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे नर! तव प्राण कभी नष्ट न होने पाय।
अरू अपान तेरा नहीं रूक कर के ढक जाय।
सूर्य रुप प्रभु व्याप्तियों से तुझको चमकाय।
अरू प्रमाद दारिद्रय हर ऊपर तुझे उठाय।।

मंत्र- इयमन्तर्वदति जिह्व बद्धा पनिष्पदा।
त्वया यक्ष्म निरवोचं शतं रोपीश्च तक्मनः।।१६।।

काव्यार्थ- **दोहा**

हे नर! तेरे साथ जो रहता है क्षय रोग।
अरू ज्वर की शत पीर वह जो तू रहा है भोग।।
वह तेरी पीड़ाऐं हों किस प्रकार से खार।
इसको मैं कहता तुझे निज जिह्व के द्वार।।
जिह्व जो मम मुख बँधी करती शब्द अमोल।
अरू जो नित की बोलती कल्याणी शुभ बोल।।

मंत्र- अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः। यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः पुरुष जज्ञिषे। स च त्वानु ह्यामसि मा पुरा जरसो मृथाः।।१७।।

काव्यार्थ- **दोहा**

विज्ञों का अज्ञेय अरू अन्वेषणीय अपार।
अरू उनको अति प्रिय रहा जो अनन्त संसार।।
जिसके हित जन्मा हुआ मरण शील तू व्यक्ति।
वह लोक अरू हम तुझे बुला रहे ले शक्ति।
तुझसे हम है कह रहे ''वृद्वावस्था पूर्व।
मर तू किंचित भी नहीं लभ आनन्द अपूर्व।।
परोपकार करते हुए प्यारे प्रभु को शोध।
स्वस्थ, सजग हो भोग तू पूर्ण आयु तक मोद''।।

सूक्त ३१

मंत्र- यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्मिश्रधान्ये।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्।।१।।

काव्यार्थ- जिस हिंसा का प्रयोग दुष्ट लोगों ने तेरे-
भोज्य पदार्थ में, जलों के ताल में किया;
तेरे इकट्ठे धान में, चलने में, ज्ञान में,
जिस हिंसा का प्रयोग तेरे काल में किया;
उस हिंसा को अवश्य ही मैं देता हूँ मिटा,
अरू नष्ट किया करता दुष्ट शत्रु का ठिया।

मंत्र- यां ते चक्रुः कृकवाकावजे वा यां कुरीरिणि।
अव्यां ते कृत्यां या चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्।।२।

काव्यार्थ- जिस हिंसा का प्रयोग सुघर मोर पर किया,
जिस हिंसा i मेढ़ी का हृदय चूर कर दिया;
जिस हिंसा का प्रयोग करके दुष्ट शत्रु ने,
शुभ सींग वाले मेढ़े के जीवन को हर लिया;
उस हिंसा को अवश्य ही मैं देता हूँ मिटा,
अरू नष्ट किया करता दुष्ट शत्रु का ठिया।

मंत्र- यां ते चक्रुरेकशफे पशूनामुभयादति।
गर्दभे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्।।३।।

काव्यार्थ- जिस हिंसा का प्रयोग दुष्ट शत्रु ने तेरे,
पशुओं के मध्य एक खुरी पशुओं पर किया;
दुहुँ ओर दाँत वाले पशु अश्व आदि पर,
जिस हिंसा का प्रयोग गधे आदि पर किया,
उस हिंसा को अवश्य ही मैं देता हूँ मिटा,
अरू नष्ट किया करता दुष्ट शत्रु का ठिया।

मंत्र- यां ते चक्रूरमूलायां वलगं वा नराच्याम्।
क्षेत्रे ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्।।४।।

काव्यार्थ- जिस हिंसा को, कर गुप्त कम्र, तेरे शत्रु ने,
सत्कार करने योग्य औषधियों में दिया;
अरू तीव्र हिंसा का प्रयोग करते शत्रु ने,
तेरे उपज प्रदाता रहे खेत को पिया;
उस हिंसा को अवश्य ही मैं देता हूँ मिटा,
अरू नष्ट किया करता दुष्ट शत्रु का ठिया।

मंत्र- यां ते चक्रुर्गार्हपत्ये पूर्वाग्नावुत दुश्चितः।
शालायां कृत्यां या चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्।।५।।

काव्यार्थ- तेरे अनिष्ट इच्छुकों ने तव निवास की-
हेतु अग्नि आदि में जिस हिंसा को दिया;
एवं गृहस्थ कार्यों में भी प्रयोग कर,
जिस हिंसा को शाला के बीच शत्रु ने किया;
उस हिंसा को अवश्य ही मैं देता हूँ मिटा,
अरू नष्ट किया करता दुष्ट शत्रु का ठिया है।

मंत्र- यां ते चक्रुः सभायां चां चक्रुरधिदेवने। अक्षेषु कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्।।६।।

काव्यार्थ-- जिन शत्रुओं ने तेरी सभा में रची हिंसा,
तेरे विविध व्यवहारों बीच जिसको किया है;
जिसको किया है क्रीड़ा के स्थानों बीच में,
तव शांति थल बाग़-बगीचों में किया है,
उस हिंसा को अवश्य ही मैं देता हूँ मिटा,
अरु नष्ट किया करता जो शत्रु का दिया है।

मंत्र- यां ते चक्रुः सेनायां या चक्रुरिष्वायुधो दुन्दु भौ हुत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामिताम्।।७।।

काव्यार्थ-- जिस हिंसा का प्रयोग अति, पाप से भरे-
उस हिंस्र शत्रु ने तेरी सेना में यिका है;
अरु तेरे विविध अस्त्र-शस्त्र वाण आदि में,
तव दुन्दुभि व शंख के बेना में किया है;
उस हिंसा को अवश्य ही मैं दूता हूँ मिटा,
अरु नष्ट किया करता जो शत्रु का ठिया है।

मंत्र- यां ते कृत्यां कूपेऽवदधुः श्मशाने वा निचख्नुः सद्मनि कृत्यां या चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्।।८।।

काव्यार्थ- जिस हिंसा का प्रयोग तेरे दुष्ट शत्रु ने,
तेरे कुँओं में विष पदार्थ डाल कर किया;
शमशान बीच रोग-दा पदार्थ गाड़ कर,
तेरे घरों विष-गंध आदि पाल कर किया;
उस हिंसा को अवश्य ही मैं देता हूँ मिटा,
अरू नष्ट किया करता दुष्ट शत्रु का ठिया।

मंत्र- यां ते चक्रुः पुरूषास्थे अग्नौ संकसुके च याम्। म्रोकं निर्दाहं क्रव्यांद पुनः प्रति हरामि ताम्।।९।।

काव्यार्थ- जिस हिंसा को तेरे जनों की अस्थि में, तथा-
जिस हिंसा को भभकती हुई आग में किया;
चोरी से जलती, माँस को जलाती अग्नि में,
हिंसा का कर्म जिस भी शत्रु घाघ ने किया;
उस हिंसा को अवश्य ही मैं देता हूँ मिटा,
अरू नष्ट किया करता दुष्ट शत्रु का ठिया।

मंत्र- अपथेना जभारैणां तां पथेतः प्र हिण्मसि। अधीरो मर्याधीरेभ्यः सं जमाराचित्त्या।।१०।।

काव्यार्थ- वह व्यक्ति जल कुमार्ग पर हिंसा को था लाया,
हम उसकी वह हिंसा सुमार्ग से निकालते;
वह मूढ़ता से लाया उसे उनके नाश को,
मर्यादा पुरूष जो कि रहे उसको सालते।

मंत्र- यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमंङ्गुरिम्। चकार भद्रमस्मभ्यमभगो भगवद्भ्यः।।११।।

काव्यार्थ- हिंसा को किया, जिसमें नहीं वह समर्थ था,
निज अंगुलि को तोड़ा, तोड़ पैर भी लिया;
दयनीय, भाग्यहीन रहे आदमी ने, हम-
सौभाग्यशालियों का था कल्याण ही किया।

मंत्र- कृत्याकृतं वलगिनं मूलिनं शपथेय्यम्। इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेनाग्निर्विध्यत्वस्तया।।१२।।

काव्यार्थ- जो शत्रु गुप्त काम किया करता है छिपकर;
अरू जड़ को सर्वदा ही महा दुःख है देता;
जो दुर्वचन को बोलते जन का प्रधान है,
हिंसा से भरे कर्म का जो रहता प्रणेता;
उसको प्रतापी राजा अपने वज्र से मारे,
अस्त्रों से बेध डाले उसे राजा विजेता।

दानदाताओं की सूची

श्री जगदीश चन्द्र पन्त, देहरादून।	रू0	10000.00
श्री डा0 तरूण अग्रवाल, मुरादाबाद।	रू0	21000.00
गुप्त दान, देहरादून।	रू0	21000.00
श्री आर्य समाज, लक्ष्मण चौक, देहरादून	रू0	11000.00
श्री आर्य समाज, मण्डी काँस, मुरादाबाद।	रू0	11000.00
श्री आनन्द प्रकाश चावला, देहरादून।	रू0	11000.00
स्त्री आर्य समाज, देहरादून।	रू0	5000.00
श्री स्व0 कवीन्द्र नाथ सक्सेना,देहरादून	रू0	5000.00
श्रीमती रतन सक्सेना, मुरादाबाद।	रू0	5000.00
गुप्त दान, देहरादून।	रू0	5000.00
गुप्त दान, मुरादाबाद।	रू0	5000.00
श्री डा0 विनय कुमार, देहरादून।	रू0	251.00